RNI Number : MPHIN/2016/70609

Dhingra Family Foundation
USA

ISSN NUMBER : 2455-9814

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 3, अंक : 11
अक्टूबर-दिसम्बर 2018
मूल्य 50 रुपये

शिवना प्रकाशन - नई पुस्तकें

विमर्श - नक़्क़ाशीदार केबिनेट
संपादक : पंकज सुबीर

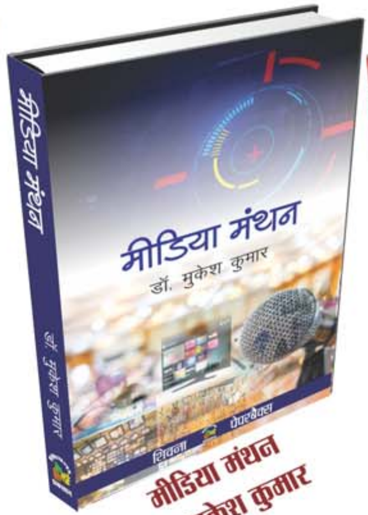

मीडिया मंथन
डॉ. मुकेश कुमार

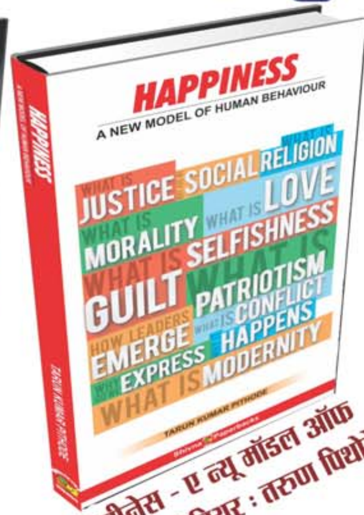

हैप्पीनेस - ए न्यू मॉडल ऑफ
ह्यूमन बिहेवियर : तरुण पिथोड़े

दृष्टिकोण
डॉ. प्रीति समकित सुराना

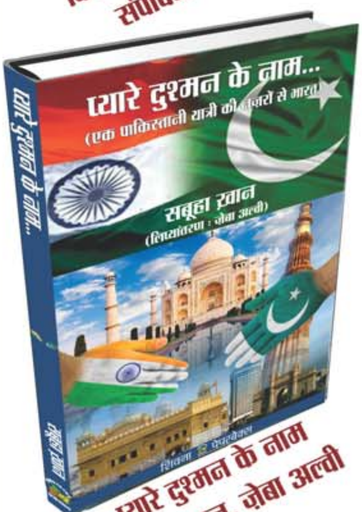

प्यारे दुश्मन के नाम
सबूहा ख़ान, ज़ेबा अल्वी

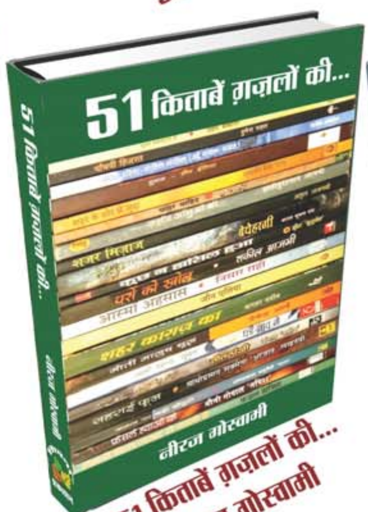

51 किताबें ग़ज़लों की...
नीरज गोस्वामी

तुम्हारे जाने के बाद
कृष्णकांत निलोसे

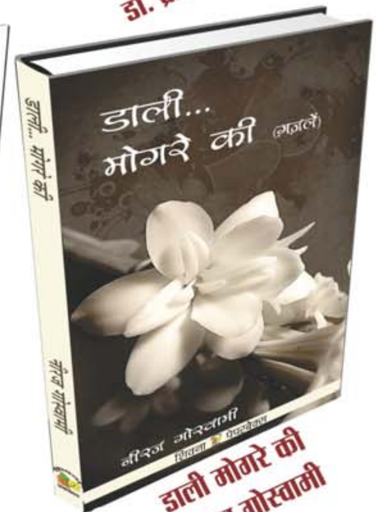

डाली मोगरे की
नीरज गोस्वामी

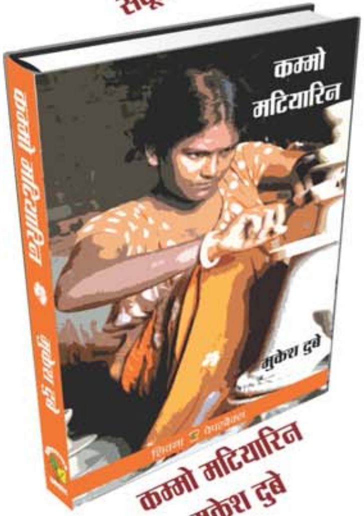

कम्मो मटियारिन
मुकेश दुबे

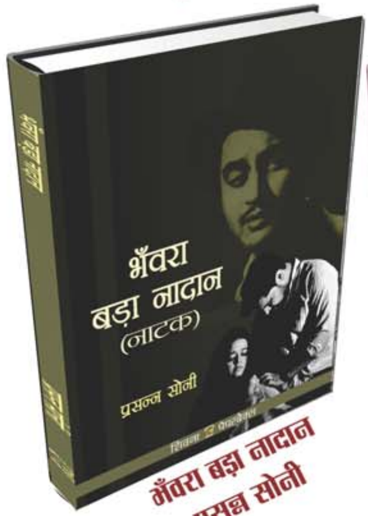

भँवरा बड़ा नादान
प्रसन्न सोनी

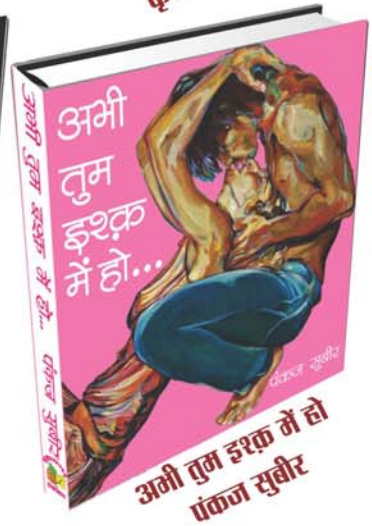

अभी तुम इश्क़ में हो
पंकज सुबीर

पार्थ! तुम्हें जीना होगा (पेपरबैक)
ज्योति जैन

शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart http://www.flipkart.com
Paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : 07562405545, 07562695918
मोबाइल : 09806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर' :
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html
http://vibhomswar.blogspot.in
फेसबुक पर 'विभोम स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar
एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु ५ डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष)
1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)
विदेश प्रतिनिधि
अनिता शर्मा (शंघाई, चीन)
रेखा राजवंशी (सिडनी, आस्ट्रेलिया)
शिखा वार्ष्णेय (लंदन, यू के)
नीरा त्यागी (लीड्स, यू के)
अनिल शर्मा (बैंगकॉक)
क़ानूनी सलाहकार
शहरयार अमजद ख़ान (एडवोकेट)
डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील सूर्यवंशी
तकनीकी सहयोग
पारुल सिंह
संपादन, प्रकाशन, संचालन एवं सभी सदस्य पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक।
पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर में प्रकाशित होगी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर मध्यप्रदेश रहेगा।

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 3, अंक : 11, त्रैमासिक : अक्टूबर-दिसम्बर 2018
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

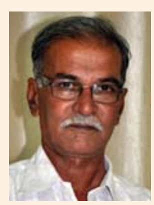

आवरण चित्र
राजेंद्र शर्मा बब्बल गुरु

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-801-0672
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

वर्ष : 3, अंक : 11

संपादकीय 5

मित्रनामा 7

साक्षात्कार

रेखा राजवंशी के साथ सुधा ओम ढींगरा की बातचीत 10

कथा कहानी

नाच-गान
उर्मिला शिरीष 13
बर्फ के आँसू
डॉ.पुष्पा सक्सेना 17
गहरे तक गड़ा कुछ
डॉ. रमाकांत शर्मा 21
तुरपाई
वीणा विज 'उदित' 26
आहटें
सुदर्शन प्रियदर्शिनी 29
अब मैं सो जाऊँ...
डॉ. गरिमा संजय दुबे 32
बस एक अजूबा
नीलम कुलश्रेष्ठ 35
मजनू का टीला
नीरज नीर 39

लघुकथाएँ

ममता
डॉ. आर बी भण्डारकर 28
अनन्य भक्त
गौरैया प्रेम
सुभाष चंद्र लखेड़ा 31
पश्चाताप
मुर्दों के सम्प्रदाय
डॉ. चंद्रेश कुमार छतलानी 38
करेले की बेल
किशोर दिवसे 44
रक्षा-बंधन
विश्वम्भर पाण्डेय 'व्यग्र' 44
और वह लौट गया
मुरलीधर वैश्णव 55

भाषांतर

संतरा
पोलिश कहानी - वलेरियन डोमेंस्की
अनुवादक- मलय जैन 45
जे. तेकुरा मेसन
अनुवादक- डॉ. अमित सारवाल 69

व्यंग्य

भाया बजाते रहो
स्वाति श्वेता 47

दृष्टिकोण

चिन्तन के पल
शशि पाधा 51

व्यक्ति विशेष

मुंशी हीरालाल जी जालोरी
मंजु 'महिमा' 53

शहरों की रूह

चिनार ने कहा था
मुरारी गुप्ता 56

ग़ज़लें

अनिरुद्ध सिन्हा 50
शिज्जु शकूर 51
नुसरत मेहदी 60

दोहे

डॉ. गोपाल राजगोपाल 59

कविताएँ

जालाराम चौधरी 61
गीता घिलोरिया 61
रोहित ठाकुर 62
पंखुरी सिन्हा 63
प्रीती पांडे 64
केशव शरण 65

नवगीत

शिवानन्द सिंह 'सहयोगी' 67
गरिमा सक्सेना 68
सोनरूपा विशाल 68

समाचार सार

बिलासपुर में राष्ट्रीय व्यंग्य महोत्सव 70
'चारों ओर कुहासा है', का लोकार्पण 70
'नए समय का कोरस' पर चर्चा 70
मदारीपुर जंक्शन पर चर्चा आयोजित 71
व्यंग्य की कलम से आयोजन 71
मुंबई में साहित्य समारोह 71
अनिल शर्मा की पुस्तक का लोकार्पण 71
चलो, रेत निचोड़ी जाए 72
आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा शताब्दी समारोह 72
'सृजन संवाद' की हीरक जयंति 72
'नव अर्श के पांखी' का विमोचन 72
हिंदी कार्यशाला 72
'अभिनव प्रयास' काव्य समारोह 72
अर्चना नायडू सम्मानित 73
अशोक मिज़ाज की चुनिंदा ग़ज़लें 73
सुँदर काण्ड : भावनुवाद 73
'ओम फट फटाक' का लोकार्पण 73
पूरन सिंह को दलित अस्मिता सम्मान 73
डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी को लमही सम्मान 73
शांतिलाल जैन को सम्मान 73

आख़िरी पन्ना 74

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है : 200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष), 1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण इस प्रकार है : Name of Account : **Vibhom Swar**, Account Number : **30010200000312**, Type : **Current Account**, Bank : **Bank Of Baroda**, Branch : **Sehore (M.P.)**, IFSC Code : **BARB0SEHORE** (Fifth Character is "Zero") (विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके:

नाम : ________________ **डाक का पता :** ________________

________________ **सदस्यता शुल्क :** ________ **चैक / ड्राफ़्ट नंबर :** ________

ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांसफ़र किया है) : ________ **दिनांक :** ________

(यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

संपादकीय

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोर्रिस्विल्ल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल : +1-919-801-0672
ईमेल sudhadrishti@gmail.com

प्रकृति अतिक्रमण और संतुलन बिगड़ने की चेतावनी दे रही है!

भूमण्डल इस समय प्राकृतिक प्रकोप का शिकार है। अमेरिका में एक के बाद एक हरिकेन और टॉरनेडो आ रहे हैं। जापान और इण्डेनेशिया में साईक्लोन आए हैं। कहीं भूकंप के झटके लगते हैं और कहीं बेहद बारिश। भारत के कई राज्यों में वर्षा का भयानक रूप देखने को मिला। केरल में बाढ़ की तबाही से लोग पता नहीं कब उभर पाएँगे।

सरकार द्वारा बताए गए आँकड़ों से कहीं अधिक इन स्थानों पर जान-माल की क्षति हुई होती है। कल ही यूनाइटिड नेशन्ज़ ने बिगड़ते वातावरण पर एक रिपोर्ट निकाली है; जिसमें लिखा है कि 2040 तक विश्व का तापमान 1.5 डिग्री सेल्सियस से ज़्यादा बढ़ने पर समुद्र के किनारे के इलाके पूरी तरह पानी में डूब जाएँगे। इससे करोड़ों लोग प्रभावित होंगे।

क्या कभी सोचा है प्रकृति का क्रोध और विरोध शायद मानव जाति को सचेत कर रहा है! प्रकृति अतिक्रमण और संतुलन बिगड़ने की चेतावनी दे रही है!

जीवन एक तराज़ू की तरह है। एक पग भी असंतुलित होता है तो ज़िन्दगी का समीकरण बिगड़ जाता है। हमें इसका बोध है। फिर पता नहीं पूरे विश्व की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था का समीकरण क्यों बिगड़ता जा रहा है?

जीवन में आगे बढ़ने की दौड़ और समृद्धि ने वाहनों और बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं की बाढ़ तो ला दी पर प्रदूषण ने प्रकृति और पर्यावरण का संतुलन बिगाड़ दिया।

पिछले दस वर्षों में प्रौद्योगिकी से संपन्न औद्योगिकी समाज ने जो क्रांतिकारी परिवर्तन किए हैं, वे पिछले सौ सालों में नहीं हुए। प्रौद्योगिकी की प्रगति ने प्रदूषण हटाने में पहल की है। बैटरी से चलने वाली कार और सूर्य तथा हवा से बिजली का उत्पादन करने की क्षमता बढ़ाई है ताकि प्रदूषण को कम किया जा सके। पर्यावरण को बचाने के लिए पूरे विश्व को एकजुट होने की ज़रूरत है।

पर दु:ख इसी बात का है कि पूरा भूमण्डल इस समय एक दूसरे से टूट रहा है और कोष्ठकों में बँट रहा है। हर देश में नई सरकार आ गई है और वह अपने देश को कम अपनी नस्ल को बचाने में अधिक लगी है। हैरानी की बात है कि एक जैसी मानसिकता ही पूरे विश्व में अधिकतर पनप रही है। ऐसा महसूस हो रहा है, जैसे इक्कीसवीं सदी पुराने युग में लौट रही है। एक तरफ औद्योगिक और प्रौद्योगिकी तरक़्क़ी, दूसरी तरफ पुरातनपंथी सोच। धर्म और नस्ल को बचाते-बचाते लोग सहिष्णुता,सद्‌भावना और मानवता को ही भूल रहे हैं।

अमेरिका की सरकार ने तो स्वयं को पर्यावरण के वैश्विक गुट से अलग कर लिया है

संपादकीय

और कोयले को महत्त्व देने लगे हैं; जो प्रदूषण फैलाता है। ऐसी सोच से क्या उम्मीद की जा सकती है ! पर जनता इसका विरोध कर रही है।

मित्रो, पर्यावरण के साथ और मोर्चों का तराज़ू भी अपना संतुलन खो रहा है। सोशल साइट्स ने अजनबी लोगों को तो एक दूसरे से जोड़ा है पर परिवारों में, रिश्तों में संवाद कम कर दिया। लोग समाज से विमुख हो अंतर्मुखी हो रहे हैं। देश-विदेश में एक ऐसा माहौल बन रहा है, जिसमें 'हम' समाप्त हो रहा है , बस 'मैं' रह रहा है। वही 'मैं' जिसने सदियों विश्व को बाँटे रखा। जिस प्रौद्योगिकी की खोज मानव ने स्वयं की सुविधा के लिए की थी वही प्रौद्योगिकी मानव का संतुलन खो रही है; क्योंकि मानव इस सुविधा में इतना लिप्त हो गया है कि वह प्रकृति की पुकार को अनसुना कर रहा है। पर्यावरण की समस्या से मुँह फेर रहा है। यहाँ तक की उसे कई व्याधियाँ घेर रही हैं, जिसका कारण खान-पान, रहन-सहन, अकेलापन और वातावरण है। इस समस्या की गंभीरता को पहचाने।

विनम्र निवेदन है, आप अपने लिए नहीं तो आने वाली पीढ़ी के लिए किसी सरकार की ओर मत देखें। बस आप पर्यावरण बचाने और प्रदूषण हटाने के लिए अपनी ओर से जो कदम उठा सकते हैं, उठाएँ; जो कार्य कर सकते हैं करें। बूँद-बूँद से तालाब भरता है, ऐसे ही नहीं कहा गया।

साथी हाथ बढ़ाना
एक अकेला थक जाए तो
मिल कर बोझ उठाना.......

साथियो, नव वर्ष के आगमन से पूर्व का समय त्योहारों का समय है। क्यों न प्रदूषण को रोकने की शुरूआत दीपावली से ही करें। यह खुशियों का, उल्लास का, भाईचारे का त्योहार है। पटाखों को दूर रख कर पारिवारिक मिलन से इसे मनाएँ। दीपावली के बाद पूरे विश्व में थैंक्सगिविंग और क्रिसमिस के उत्सव होंगें। मिलियन्ज़ परिवार यात्राएँ करके इकट्ठे होकर इन्हें मनाएँगे। चहुँ ओर सुखद वातावरण होगा, बस प्रदूषण के प्रति अपनी सचेतता बरतते हुए इस वातवरण को और सुखमय बनाएँ!!! इन्हीं कामनाओं के साथ......

विभोम-स्वर और शिवना साहित्यिकी की टीम सभी पाठकों को दीपावली, थैंक्सगिविंग और क्रिसमिस के लिए शुभकामनाएँ देती है.....

गोपालदास नीरज, विष्णु खरे को विभोम-स्वर और शिवना साहित्यिकी परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि..

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

तमसो मा ज्योतिर्गमय.... अँधेरे से प्रकाश की ओर जाने की कल्पना और कामना मानव मन आदिकाल से करता आ रहा है। एक वह अंधकार जो भौतिक है और दूसरा वह जो हमारे अंदर का है, अज्ञान का अंधकार... भौतिक अंधकार से भी कहीं ज़्यादा गहरा यह होता है। आइए अज्ञान से लड़ने का संकल्प लें हम सब।

मित्रनामा

शुभास्ते सन्तु पन्थानः

दोनों पत्रिकाओं के मुखपृष्ठ प्राकृतिक विरोधाभास का ज्वलंत उदाहरण ! एक ओर पानी का भयावह तांडव और इसी के बरक्स पानी के लिए जद्दोजहद करती हुई भावी पीढ़ी ! महाभारत का सटीक उद्धरण और हक़ीक़त से आँख मिलाता हुआ 'विभोम-स्वर' का सम्पादकीय! 'बत्तीस कलाओं के लीलाधारी' अद्भुत कहानी लेखक की शब्दशक्ति की मज़बूत गवाही है। 'मास्साब' कहानी में कविता विकास बेहद संवेदनशील मसअले को कहानी में अद्भुत तरीक़े से पेश करती नज़र आती हैं ! डॉ. विभा खरे ने कहानी में स्त्री के स्वयम् को परिस्थिति के अनुसार ढालने की मानसिकता को शब्दों से बख़ूबी में पिरोया है। 'एक मुक़द्दमा और एक तलाक़' में लेखक की क़िस्सागोई का अंदाज़ ग़ज़ब का है ! सुशांत सुप्रिय को भी इस कहानी का अनुवाद हेतु चयन करने करने के लिए साधुवाद !

प्रेम जनमेजय बहुत सिद्धहस्त व्यंग्य लेखक हैं और मेरे प्रिय भी, प्रस्तुत व्यंग्य में भी वो प्रखर रूप से चुटीले नज़र आते हैं ! कृष्ण कान्त पण्ड्या के अनुसार काश हम भारतीय अपना दृष्टिकोण बदलें तो देश की काया पलट हो जाए। सूर्यभानु गुप्त मेरे अत्यधिक प्रिय कवि हैं - वीरेन्द्र जैन का यह लेख सूर्यभानु गुप्त के व्यक्तित्व के समक्ष बेहद बौना नज़र आता है ! काश लेखक ने कवि के रचनाकर्म का और अध्ययन किया होता !

उषा राजे सक्सेना का आलेख स्वर्गीय श्री प्राण शर्मा के प्रति संवेदनशील श्रद्धांजलि है। प्राण शर्मा अद्भुत व्यक्तित्व के स्वामी थे और बेहद अच्छे ग़ज़लगो भी ! मैं जब-जब भी इंग्लैंड गया उनसे अवश्य मिला। बहुत मिलनसार और विनम्र थे प्राण शर्मा ! Internet पर मेरी उनसे ख़ूब बातें होती थीं ! कविताएँ सब ठीक-ठाक ही लगीं। अमरेन्द्र मिश्र, सुरेश सौरभ, राहुल शिवाय और ज्योत्सना सिंह की लघु कथाएँ प्रभावित करती हैं ! शुभास्ते सन्तु पन्थानः !

-विज्ञान व्रत
ईमेल:vigyanvrat@gmail.com

***

झकझोरने वाला संपादकीय

'विभोम-स्वर' का जुलाई-सितंबर का अंक मिला। धन्यवाद।

सुधा जी का संपादकीय 'पूरे विश्व की जनता महाभारत युग में पहुँच गई है' सभी को झकझोरने वाला है। कनाडा के हिन्दी साहित्यकार पत्रकार श्री सुमन भाई का साक्षात्कार कनाडा की हिन्दी गतिविधियों और प्रवासी साहित्य के कई अनछुए पहलुओं को उजागर करता है।

इसके अलावा कथा-कहानी, व्यंग्य, दृष्टिकोण, व्यक्ति विशेष, संस्मरण, कविताएँ सभी ने पत्रिका के इस अंक को विशिष्ट बना दिया है। इंडोनेशिया का रंगमंच / रामलीला में डॉक्टर अफ़रोज़ ताज ने बेहद सटीक विवरण प्रस्तुत किया है।

आख़िरी पन्ना में पंकज जी ने हिन्दी के लेखकों की मनोवृत्ति पर प्रहार करते हुए उनकी अच्छी खबर ली है। इस बेहतरीन अंक के लिए आपको बधाई!

-डॉ. जवाहर कर्नावट, सम्पादक 'अक्षय्यम', बैंक ऑफ बड़ौदा, कॉर्पोरेट कार्यालय, मुम्बई।
ईमेल: jkarnavat@gmail.com
मोबाइल:75063 78525

***

'इंडोनेशिया' की नई तस्वीर

'विभोम-स्वर' के इस अंक में प्रकाशित डॉ. अफ़रोज़ ताज का यात्रावृत्त पूरे अंक में सर्वाधिक पठनीय और विचारणीय रचना है। अपने देश में गंगाजमुनी संस्कृति की बात होती है; लेकिन पता नहीं चलता कि एक संस्कृति ने दूसरे से क्या लिया, कहाँ मेलजोल हुआ ? एक दूसरे के इतिहास, धर्म और मिथकों से कोई तालमेल नहीं। इंडोनेशिया में सचमुच सांस्कृतिक समन्वय हुआ लगता है। सीता फातिमा जैसे नाम, तीर्थगंगा नाम की कंपनी, गरुड़ा एयरलाइंस, नमाज़ पढ़ते रामलीला के पात्र, सबसे बड़े मुस्लिम देश 'इंडोनेशिया' की नई तस्वीर पेश करते हैं। लेखक को इस नेत्रोन्मीलक रचना के लिए बधाई!!

-डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ, डी-131, रमेश बिहार, अलीगढ़-202001
ईमेल: 1972rajeev.sharma@gmail.com

***

'दो लोग' की समीक्षा ने बाँध लिया

दोनो पत्रिकाओं 'विभोम-स्वर' एवं 'शिवना साहित्यिकी' के जुलाई-सितम्बर अंक प्राप्त हुए तो सब से पहले कविताएँ पढ़नी आरम्भ की। हर रचना एक से बढ़ कर एक लगी तो मन में यही धारण कर लिया कि इस बार पद्य गद्य पर हावी हो गया है। छंद मुक्त कविता के साथ-साथ नवगीत की प्रस्तुति एक सुखद अहसास था। पन्ने पलटते अचानक एक आलेख पर दृष्टि ठहर गई- इंडोनेशिया का रंगमंच / रामलीला। यह तो पता था कि इंडोनेशिया में भारतीय संस्कृति की धरोहर को संभाल के रखने का प्रयत्न किया गया है; लेकिन संस्कृति के प्रसार-प्रचार और उसके बचाव में वहाँ की सरकार और आम जनता कितनी उत्साहित और कटिबद्ध है, इसका ज्ञान इस आलेख के द्वारा ही हुआ। डॉ. अफ़रोज़ ताज ने इस आलेख में वहाँ की गंगा-यमुनी संस्कृति की जो तस्वीर खींची है, उसके लिए अफ़रोज़ जी को बधाई। सचमुच पूरा विवरण इतना अच्छा कि सच न लगे।

लघुकथाएँ मुझे सदा ही आकर्षित करती हैं अतः सभी लघुकथाएँ पढ़ते हुए विषय की विविधता के साथ कथ्य को कम से कम शब्दों में बाँधने की कुशलता का अहसास हुआ। कहानियाँ तो धीरे-धीरे पढ़ने वाली सामग्री है, वैसा ही किया। मास्साब, कुलसूम मर गई, गुलशन कौर मार्मिक कहानियाँ थीं और कहीं -कहीं कोरों को आर्द्र कर गईं। 'बतीस कलाओं के लीला धारी' और 'नम्बर प्लेट' आज की सामाजिक वातावरण पर गहरी चोट करने में सफल हुईं। सदा की तरह प्रेम जनमजेय जी का व्यंग्य गुदगुदा ही देता है। सभी रचनाकारों को - बहुत बधाई!

सुधा जी का सम्पादकीय फिर से ढंके की चोट के साथ चुनौती देता है कि विश्व एक बार फिर से महाभारत युद्ध के कगार पर खड़ा है, यह चाहे राजनैतिक उथल-पुथल हो, चाहे समाज में स्त्री के प्रति बढ़ते हुए निंदनीय कृत्य।

शिवना साहित्यिकी पूरी तो नहीं पढ़ पाई किन्तु पंकज सुबीर जी के द्वारा गुलज़ार के उपन्यास 'दो लोग' की समीक्षा ने जैसे बाँध ही लिया। समझ नहीं आ रहा था कि उपन्यास के अंश पढ़ रहे हैं, चलचित्र देख

रहे हैं या केवल समीक्षा। लगता है जिस प्रकार गुलज़ार शब्दों के साथ खिलवाड़ करते हैं, पंकज जी ने ठीक उसी प्रकार उपन्यास के भाव और कला पक्ष को पाठकों तक पहुँचाया है। अब बस उपन्यास पढ़ने की तीव्र इच्छा है।

इस अंक के सभी रचनाकारों को हृदय से बधाई और एक सफल अंक के लिए सम्पादक मंडल को साधुवाद।

-शशि पाधा
10804, Sunset hills Rd, Reston Virginia 20190
ईमेल: shashipadha@gmail.com

***

संपादकीय विचारोत्तेजक

राजनीति और इतिहास में मेरी गहरी रुचि रही है सो पूरे विश्व के संदर्भ में सुधा ओम ढींगरा क्यों कह रही हैं अपने संपादकीय में कि 'पूरे विश्व की जनता महाभारत युग में पहुँच चुकी है' यह जानने को मैं व्यग्र हो उठा। मानव इतिहास की सबसे बड़ी त्रासदी है युद्ध, क्योंकि इसकी वजह से हमेशा ही तबाही होती रही है और 'महाभारत' भी ऐसी ही तबाहियों का महाख्यान है। एक ऐसी महागाथा जो अन्याय, शोषण और नृशंस नरसंहार की रक्तरंजित गवाह है। मानव - इतिहास विनाशकारी युद्धों को झेलते हुए ही निर्मित हुआ है और आज भी युद्ध की विभिषिका किसी दु:स्वप्न की तरह पूरे विश्व पर मंडरा रही है,क्योंकि हमने अतीत की ग़लतियों से सीखा कुछ भी नहीं है। वैश्विक स्तर पर जो राजनीतिक निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता व्याप्त है, वो चिन्तित करता है कि पता नहीं मानवता को इस अराजकता के चलते कितनी बड़ी क़ीमत चुकानी पड़ जाए।

आज सहिष्णुता,सद्भावना और मानवता समाप्त हो रही है और यह एक विकट परिस्थिति है,क्योंकि इस तीन के अभाव में मानव दानव बनते जा रहे हैं ! कहीं अप्रवासियों को देश निकाला दिए जाने की साज़िश चल रही है, तो कहीं शरणार्थियों को सताया जा रहा है। अप्रवासियों की समस्या के संदर्भ में सुधा ओम ढींगरा ने जो कुछ कहा है वो चिन्तनीय है। चाहे कोई भी देश हो राजनेताओं की स्थिति एक सी ही है। भावी पीढ़ी की किसी को कोई फ़िक्र नहीं है। देश में अल्पसंख्यकों, दलितों और स्त्रियों की असुरक्षा बढ़ती ही जा रही है और सब चुप हैं और कुर्सी के अन्धों को सिर्फ़ कुर्सी और सत्ता ही दिखती है। लगता है कि सारे नेता धृतराष्ट्र और स्वार्थी द्रोणाचार्य हो गए हैं। आपने सही कहा है कि अब किसी भी नेता की ओर देखने से बेहतर है कि जनता स्वयं ही कमान सँभाले, पर अधिकांश जनता भी तो भ्रष्टाचार में ही लिप्त है। जनता अगर ईमानदार और सजग हो जाए तो बेलीक हो गई राजनीति लीक पर आ जाए। संपादकीय विचारोत्तेजक लगा।

कैनाडा के सुमन घई से सुधा जी की बातचीत को पढ़ना ज़रूरी हो गया, क्योंकि साहित्यकारों की बातचीत को पढ़ना मुझे बेहद पसंद है और फिर मामला हो साहित्य में व्याप्त गुटबाज़ी का तो लाजिमी है कि मैं ध्यानपूर्वक पढूँगा। अंतरजाल की हिन्दी पत्रकारिता से इसके आरंभिक दिनों से ही जुड़े रहने वाले सुमन घई के अनुभव ने इतना अभिभूत किया। इंटरनेट एक शक्तिशाली माध्यम है जिसके कारण साहित्य और साहित्यकारों को वैश्विक फलक मिलता है,पर मुद्रित पत्रिकाओं पर इस माध्यम का प्रतिकूल असर पड़ता है, लेकिन सुमन जी के संदर्भ में इसे एक वरदान ही कहा जा सकता है, क्योंकि इंटरनेट पर फैले साहित्यिक पत्रिकाओं नें भाषा और साहित्य के साथ इनके संबंध को पुनर्जीवित कर दिया। आज ऐसे कई लेखक हैं जो स्मृति के आधार पर ही साहित्य रचते हैं,क्योंकि महानगर में जीते हुए गाँवों की बात लिखते हैं जो उनका भोगा हुआ यथार्थ नहीं होता। जो संवेदनशील रचनाकार हैं वे हमेशा भोगे हुए यथार्थ में से ही साहित्य खंगाल लेते हैं। आज दुनियाँ बहुत तेज़ी से बदल रही है और साहित्य भी बाज़ारवाद के दवाब के कारण वह नहीं रहा जो हुआ करता था। मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि सुमन घई मानते हैं कि बाज़ारवाद साहित्य को विस्तृत पटल देता है, क्योंकि बाज़ारवाद साहित्य की गुणवत्ता को बुरी तरह से प्रभावित कर रहा है।

राजेश झरपुरे के 'नम्बर प्लेट' को पढ़ते वक़्त लगा, जैसे कि मैं अपने ही शहर दरभंगा की कहानी पढ़ रहा हूँ। तेज़ रफ़्तार में मोटरसाइकिल भगाने में नवयुवक - नवयुवतियों को कैसा आनन्द आता है पता नहीं। आए दिन सड़क - दुर्घटनाएँ घटती हैं, फिर भी इनकी रफ़्तार में कोई फ़र्क नहीं पड़ता है। माँ - बाप भी कितने अज़ीब हैं जो अपने कम उम्र के बच्चों को भी मोटरसाइकिल और स्कूटी चलाने की इजाज़त दे देते हैं ! ख़ैर, झरपुरे जी ने आतंकित और सहमे रामभरोसे के बहाने आज की तेज़ रफ़्तार पीढ़ी का बखूबी वर्णन किया है जो किसी एक शहर में नहीं, बल्कि हर शहर में मिल जाएँगे। पता नहीं यह क्या समय आ गया है, कि युवा होती यह पीढ़ी न अपने जान की परवाह करती है न दूसरों की। पुरानी पीढ़ी हतप्रभ है, इस बेलिहाज़ और इनडिसिप्लीन्ड पीढ़ी पर कुपित है, जो यह तक नहीं देख सकती है, कि कौन छोटा है और कौन बड़ा, लेकिन पुरानी पीढ़ी लाचार है, क्योंकि वह इनका कुछ कर नहीं सकती।

रामभरोसे के द्वारा एकदम वाज़िब सवाल किया गया है कि, 'आख़िर क्या सोचकर पैदा किया होगा इनके माँ-बाप ने ?' बिना किसी मेहनत- मशक्कत के मिली सुविधाओं का जमकर दुरूपयोग करने वाली पीढ़ी की क्या ख़ूब आलोचना की है कथाकार ने और ऐसे माँ - बाप को भी लताड़ लगाई है जो अपने टीन एज़र्स बच्चों को गाड़ी की चाबी थमा कर क़ानून का मज़ाक उड़ाते हैं। इस बेहतरीन कहानी के लिए कथाकार को धन्यवाद।

-नवनीत कुमार झा
वारा श्री प्रदीप पुर्वे, सुन्दरपुर, दरभंगा
ईमेल: 2rambharos@gmail.com

***

दिल बाग-बाग हो गया

विभोम-स्वर का नया अंक मिला। हमेशा की तरह आनंदित हो पढ़ना आरम्भ किया। कुछ पढ़ा, कुछ बाकी है। अफ़रोज़ ताज का इंडोनेशिया यात्रा का सचित्र विवरण पढ़ कर दिल बाग-बाग हो गया और वहाँ के ऐसे अविश्वसनीय सत्य की जानकारी हुई जो सच्ची न लगे। अत: आज मैं उसी की चर्चा करूँगी। इंडोनेशिया विश्व का सबसे बड़ा मुस्लिम देश है। उनकी संस्कृति और

परम्परा इस्लाम के आने से भी बहुत पुरानी है, जिसे वहाँ के निवासियों ने बड़े गौरव और स्नेह से संजोए रक्खा है। उनकी राष्ट्रीय भाषा बहासा इंडोनेशिया कहलाती है। यह संस्कृत और अरबी के मिश्रण से बनी है, जो रोमन अब लिपि में लिखी जाती है। सीता फ़ातिमा, राम हुसैन आदि नामों से ही अनुमान लगाया जा सकता है कि इंडोनेशिया में रिलिजन और कल्चर एक दूसरे के साथ इस खूबसूरती से पिरोए हुए हैं कि न उन्हें अलग किया जा सकता है, न करने की कोई आवश्यकता है। शहर में पानी सप्लाई की ट्रक का नाम (तीर्त) तीर्थ गंगा और आधुनिक मौल रामायण मौल के नाम से जाना जाता है।

कला की एक विधा, थियेटर जो आज टी वी और सिनेमा के प्रचलन से प्रायः मरणासन्न स्थिति में है, वहाँ खूब प्रचलित है। महाभारत के मंचन के पहले कुरान की कुछ पंक्तियाँ पढ़ी गईं, ठीक जैसे कार्यक्रम की सफलता के लिए हिन्दू श्लोक व् ईश्वर वंदना से प्रारंभ करते हैं। अभिनय देखते हुए दर्शक मूल कथा की गम्भीरता का अनुभव करते हैं और भीगी आँखों से हनुमान का अशोक-वाटिका में सीता के लिए श्री राम की अँगूठी लाने का दृश्य देखते हैं। उनके लिए यह मात्र नाटक नहीं है। हम सब का जाना पहचाना दृश्य, रण भूमि पर अर्जुन और श्री कृष्ण का रथ जकार्ता में चौराहे पर स्थित अपने गौरवपूर्ण इतिहास और परम्परा का प्रतिनिधित्व कर रहा है। गाइड सीता फ़ातिमा ने अफरोज़ जी को बड़े गर्व और स्नेह से राम की बानर सेना का भित्ति चित्र दिखाया। संस्कृति और लोक कथाएँ उनके दैनंदिन जीवन और व्यवहार में प्रस्तुत हैं।

मनुष्यता के बुनियादी सिद्धांत पर बने 'पंचशील' को केंद्र में रखते हुआ जीवन यापन करना इस देश वासियों का लक्ष है। इंडोनेशिया में सब का धर्म और संस्कृति एक है, कहीं कोई conflict या विरोधाभास नहीं है, सब इस विषय में सहमत है। अफ़रोज़ जी का मानना है कि यही इनकी सफलता का राज़ है। अब तो प्रोफ़ेसर अफरोज़ का सम्पूर्ण आलेख पढ़ने के उपरांत इंडोनेशिया जा कर स्वयं देखना अनिवार्य सा लगने लगा है, क्योंकि पढ़कर तो इंडोनेशिया पृथ्वी पर स्वर्ग सा अच्छा लगा जो सच्चा न लगे।

-मीरा गोयल, 211 Landreth Ct., Durham, NC-27617

ईमेल: madeera.goyal@gmail.com

***

आनंद दूना हो गया

'विभोम-स्वर'और शिवना साहित्यिकी के अप्रैल 2018 के नए अंक प्राप्त हुए। गर्मी की दोपहरियों में लेटकर पढ़ने का आनंद दूना हो गया। संपादकीय में सुधा ओम ढींगरा द्वारा उठाए गए जलते विषयों में दर्द और शर्म तथा अपने ही देश की संपत्ति एवं जनजीवन की हानि करने वालों के प्रति हृदय छलनी हुआ। काश! मनुष्य इसके प्रति गंभीरता से विचार कर पाए।

अनीता शर्मा की कहानी 'शुवे' हृदय के तारों को झकझोर गई। सचमुच व्यक्ति इतना दोगला हो चुका है कि उसके भीतर की तह पाना आसान काम नहीं है। कैसे बेचारी शुवे क्रिस की बात का विश्वास करके सुनहरे सपने संजोने लगी। उस पर किए विश्वास ने उसके आत्मविश्वास को भी जगा दिया था। उसे आभास तक नहीं हुआ कि इस सबका अंत इतना कष्टदायक होने वाला है। परन्तु लेखिका ने अंत में शुवे के मज़बूत चरित्र का सार बताया 'मल्टीनेशनल कंपनी में मैनेजर हूँ, अब इतना तो मैनेज कर सकती हूँ।' इस एक वाक्य ने उसे टूटने से बचा लिया। ऐसी ही शक्ति को नारी जाति ने अपने भीतर जागृत करना है।

अमृत वधवा हमारे जाने माने मित्रों में से एक हैं। आपकी पत्रिका से पता चला कि वे कवि भी हैं। एक अच्छे कवि। उनकी कविता 'दिल्ली मेरी दोस्त, तूँ कहाँ गई' हम सबकी कविता है। दिल्ली में लम्बा समय व्यतीत करने के कारण मेरी भी उस कविता में साझीदारी है। हम सभी दिल्ली वासी उस दिल्ली की खोज में लगे हैं। बधाई अमृत जी और बधाई विभोम-स्वर जो अपनों से भी नई जानकारी करवाती है।

अनगिनत शुभकामनाएँ!!

-उषा देव

614 Cheselden Drive, Durham, NC-27713, USA

ईमेल: devmahendra1@yahoo.com

***

आख़िरी पन्ना खास

'विभोम-स्वर' का अंक अभी मिला। आपको पढ़कर अजीब लगेगा पर यह सत्य है कि मैं पत्रिका अन्तिम पृष्ठ से पढ़ना शुरू करती हूँ। विभोम स्वर का आख़िरी पन्ना खास होता है और उसी की प्रतिक्रिया स्वरूप ये पत्र आपकी सेवा मे है।

आपकी बात लाख टके की, कोई शक शुबहा नहीं कि आप किसी को नहीं पढ़ते बल्कि आपको सब पढ़ते हैं। मैं भी। मुझे भी आपने नहीं पढ़ा होगा। पढ़ेंगे भी कैसे जब तक चाहेगे नहीं। फिर मैं कोई नामी गिरामी लेखक नहीं हूँ। लेखक तो आप हैं।

एकबार किसी ने सलाह दी कि सुधा जी खूब लिख लिया खूब छपा लिया, अब एक मैगज़ीन निकाल लो। तब लोग आपको सम्पादक -प्रकाशक के रुप मे जानेगे। आपका क्या ख्याल है? लोग मुझे पढ़ें -ये ख्वाहिश जाती ही नहीं।

-सुधा गोयल,290-ए,कृष्णा नगर, डा.दत्ता लेन, बुलन्दशहर-203001

ईमेल: sudhagoyal0404@gmail.com

***

नई जानकारी से भरपूर लेख

'विभोम-स्वर' में लेख इंडोनेशिया के रंगमंच/रामलीला पढ़ा। दिलचस्प के साथ-साथ नई जानकारी से भरपूर लगा। लेखक ने ठीक ही कहा है कि उस देश की बातें हमारे यहाँ लोगों को नाराज़ कर सकती हैं।

कितनी ग्रहणीय बात है कि उन लोगों ने इस्लाम स्वीकार करने के बाद भी अपनी संस्कृति का दामन नहीं छोडा है। मूल हिन्दू संस्कृति के नामों, प्रतीक चिह्नों, शास्त्रों में उनकी व्यवहारिकता उसी रुप में बनी हुई है। पढ़कर बहुत आनंद आया। लेख पढ़ कर मन करता है एक बार इंडोनेशिया जाया जाए।

कितना अच्छा हो हमारे देश में भी ये तस्वीर उभरे।

सादर

-मुरारी गुप्ता

जयपुर, राजस्थान

9414061219

ईमेल: murli4you@gmail.com

***

साक्षात्कार

भारत में बहुत विरोधाभास है

(रेखा राजवंशी से सुधा ओम ढींगरा की बातचीत)

रेखा राजवंशी
संप्रति: अध्यापक, शिक्षा विभाग, सिडनी। प्रौढ़ शिक्षा के अंतर्गत सिडनी विश्वविद्यालय में हिन्दी अध्यापक।
शिक्षा: स्नातक -हिन्दी व अंग्रेज़ी साहित्य, स्नातकोत्तर-मनोविज्ञान और शिक्षा शास्त्र, बी.एड.तथा स्पेशल एडुकेशन में मक्वारी यूनिवर्सिटी सिडनी से पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा। भारत में बी.एड. तथा टीचर ट्रेनिंग में अध्यापन।
प्रकाशित कृतियाँ:
कंगारुओं के देश में -काव्य संग्रह, छोटे-छोटे पंख-बाल कविताएँ, अनुभूति के गुलमोहर -दिल्ली हिन्दी अकादमी से अनुमोदित काव्य संग्रह, ये गलियों के बच्चे- स्ट्रीट चिल्ड्रन पर पुस्तक, मुट्ठी भर चाँदनी -ग़ज़ल संग्रह
संपादन: बूमरैंग- ऑस्ट्रेलिया से कविताएँ, सह-संपादन - एकता का संकल्प
अनुवाद: ऑस्ट्रेलिया की नैशनल एक्रेडिटेशन अथॉरिटी फॉर ट्रान्सलेटर्स एंड इंटरप्रेटर्स से अनुमोदित अनुवादक; जिसके अन्तर्गत सरकारी विभागों व वेबसाइटों के लिए अनुवाद के अलावा ऑस्ट्रेलिया में एबोरीजनल एनीमेशन फिल्म की कहानियों का अनुवाद किया।
रचनात्मक सहयोग:
'गुलदस्ता', 'जूझते हुए', 'इक्कीसवीं सदी की ओर' तथा अनुभूति, कविता कोष और अन्य इ पत्रिकाओं में कविताएँ सम्मिलित। अब वेबदुनिया के लिए लिख रही हैं। दिल्ली निवास के दौरान विविध साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त दिल्ली प्रैस की गृहशोभा, सरिता में करीब एक दशक तक लेखन किया।
उल्लेखनीय गतिविधियाँ/ उपलब्धियाँ/ प्रतिभागिता:
आपने अनेकानेक सम्मेलनों/कार्यशालाओं में सक्रिय रूप से भाग लिया है। दिल्ली के ऑल इंडिया रेडियो के नाटक, महिला और बाल विभाग तथा दिल्ली दूरदर्शन के लिए भी स्क्रिप्ट लेखन और वॉइस ओवर किया। सिडनी के एस बी एस रेडियो में भी कार्यक्रम योगदान दिया। इसके अतिरिक्त सिडनी, मेलबर्न, कैनबरा आदि शहरों में काव्य पाठ किया। मार्च 2014 में साहित्य अकादमी द्वारा आयोजित IORA Poetry Festival Waves उत्सव में काव्यपाठ के लिए दिल्ली में ऑस्ट्रेलिया का प्रतिनिधित्व किया। ऑस्ट्रेलिया में इंडियन लिटरेरी एंड आर्ट सोसाइटी ऑफ़ ऑस्ट्रेलिया की संस्थापना कर अनेक साहित्यिक कार्यक्रमों का आयोजन किया। एशिया पैसिफिक हिन्दी कांफ्रेंस, ऑस्ट्रेलिया इंडिया इंस्टिट्यूट द्वारा आयोजित 'गोंडवानालैंडिंग्स,' इंटरनेशनल लैंगवेज सम्मेलन कैनबरा व मेलबोर्न तथा अन्य भाषा सम्मेलनों में स्पीकर के रूप में आमंत्रित।
मान्यता/ पुरस्कार/ सम्मान:
ऑस्ट्रेलियन इंस्टिट्यूट ऑफ़ इंटरप्रेटर्स एंड ट्रांसलेटर्स से राष्ट्रीय सम्मान। भारतीय विद्या भवन, तथा ऑस्ट्रेलिया की अनेक स्थानीय संस्थाओं द्वारा हिन्दी और शिक्षा के प्रति योगदान के लिए सम्मानित। ऑस्ट्रेलिया में हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए परिकल्पना सार्क सम्मान 2015। 1996 में काव्य पाठ के लिए राष्ट्रपति शंकर दयाल शर्मा जी द्वारा राष्ट्रपति भवन में सम्मानित किया गया।
संपर्क:
ईमेल: rekhalok@hotmail.com

विदेशों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार का हवन अत्यधिक उत्साह और आस्था से किया जाता है। भिन्न-भिन्न देशों के विभिन्न शहरों में हिन्दी के हवन कुंड हैं। ऑस्ट्रेलिया में रेखा राजवंशी इस दिशा में समर्पित नाम हैं। कवयित्री, कहानीकार एवं कई कलाओं में पारंगत रेखा जी से गत दिनों जो बातचीत हुई, प्रस्तुत है-

प्रश्न : रेखा जी, जैसे पहला प्यार और पहला क्रश जीवन में बहुत महत्त्व रखता है उसी तरह लेखक का पहले-पहल कलम पकड़ना भी सुधियों के संदूक में सुरक्षित पड़ा रहता है। उन क्षणों के बारे में हम सुनना चाहेंगे।

उत्तर : सुधा जी, शायद मैंने पहली कविता सात-आठ साल उम्र में लिखी होगी। घर में पढ़ने-पढ़ाने का माहौल था। वैसे तो पापा रेलवे इंजिनियर थे पर कविता लिखते थे, हर तरह की हिन्दी-अंग्रेज़ी पत्रिकाएँ घर में आती थीं, जैसे नंदन, चंदामामा, पराग, धर्मयुग, दिनमान, साप्ताहिक हिंदुस्तान, रीडर्स डाइजेस्ट, इलस्ट्रेटेड वीकली आदि-2। स्कूल के पाठ्यक्रम में कविता पढ़ने-समझने का अवसर मिलता था। मुझे याद है कि कक्षा दस के बाद मैं अपनी कविताएँ सुनाती थी। जब मैंने विद्यालय की पत्रिका के लिए कविताएँ भेजीं तो मेरी हिन्दी की अध्यापिका को विश्वास ही नहीं हुआ कि ये कविताएँ मैंनेलिखी हैं। उन्होंने मुझे बुलाया, बातचीत की और बहुत खुश हुईं। परंतु मेरी पहली कविता कादम्बिनी में छपी थी, उसका शीर्षक था 'मित्र'; जिसकी पंक्तियाँ थीं 'मित्र मात्र शब्द नहीं, अर्थ है और अर्थ भी नहीं भावार्थ है' और बाद में साप्ताहिक हिंदुस्तान मे छपीं। शादी के बाद कुछ वर्षों तक मैं लिख नहीं पाई, फिर संगत मिली,

माहौल मिला, दिल्ली में साहित्यिक मित्रों से जुड़ना हुआ और साहित्यिक यात्रा चल निकली।

दिल्ली के कुछ अख़बारों के अलावा गृहशोभा, सरिता, समाज कल्याण, साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं के लिए लिखा और दो हज़ार में ऑस्ट्रेलिया आने के पहले तक तीन पुस्तकें प्रकाशित हुईं। पहली काव्य पुस्तिका 'अनुभूति के गुलमोहर' दिल्ली हिन्दी अकादमी के अनुदान से प्रकाशित हुई।

प्रश्न : रेखा जी, आप कविता, कहानी, लेख आदि लिखती हैं। किस विधा में लिखना सहज लगता है।

उत्तर : यूँ तो मैंने सभी विधाओं में लिखा है पर लोग मुझे कवयित्री के रूप में ज़्यादा जानते हैं। कुछ कहानियाँ मैंने ऑल इण्डिया रेडियो दिल्ली के महिला विभाग के लिए रिकॉर्ड की थीं और मुझे याद है कि मेरी एक कहानी 'मंगलयम' बहुत पसंद की गई, उसका प्रसारण कई बार हुआ।। कुछ कहानी संग्रहों में मेरी कहानियाँ प्रकाशित हुईं। पिछले साल दसवें हिन्दी सम्मलेन में प्रकाशित पुस्तिका में मेरी कहानी 'गोरी डायन' प्रकाशित हुई। नासिरा शर्मा जी द्वारा सम्पादित पुस्तिका में एक अन्य कहानी 'श्यामली जीजी' छपी। लोगों की ईमेल मिलने से लगा कि ये कहानियाँ पसंद की गईं। अब अगली किताब प्रवासी कहानियों की ही प्रकाशित होगी। कुछ नाटकों का लेखन, अनुवाद और निर्देशन भी किया, अभिनय भी करने का मौका मिला। कविता तो मेरे जीवन से जुड़ ही गई है, मुक्त छंद, गीत और ग़ज़ल की पुस्तकें प्रकाशित हुईं हैं। ये गलियों के बच्चे, अनुभूति के गुलमोहर, छोटे-छोटे पंख, कंगारुओं के देश में, बूमरैंग-ऑस्ट्रेलिया से कविताएँ (संपादन) के अतिरिक्त ग़ज़ल संग्रह 'मुट्ठी भर चाँदनी' इस वर्ष प्रकाशित हुआ। मैंने ऑस्ट्रेलिया के एबोरीजल (आदिवासी) जीवन से जुड़ीं ड्रीमटाइम कहानियों का अनुवाद किया और उसके लिए ऑस्ट्रेलिया में मुझे राष्ट्रीय स्टार प्रतियोगिता में सम्मानित किया गया। वरिष्ठ साहित्यकारों ने बहुत स्नेह और प्रेरणा दी और यही मेरी उपलब्धि है।

प्रश्न : क्या विदेश की चुनौतियों ने

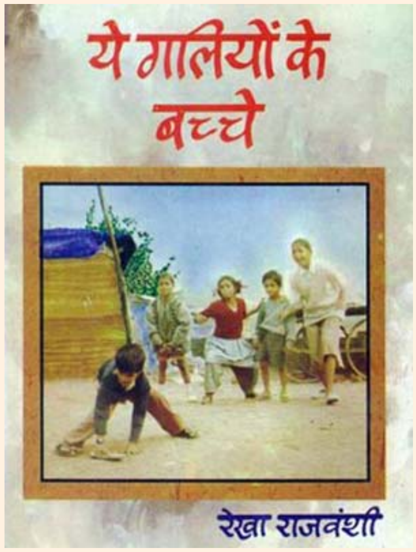

आपकी रचनाशीलता पर प्रभाव डाला?

उत्तर : विदेश में आना अपने आप में एक बड़ी चुनौती थी, वो भी दो बच्चों के साथ। वैसे तो भारत में सब कुछ था, अच्छा खाना-पीना, मित्र-परिवार, लेखन चल रहा था परंतु मैं और मेरे पति, जो कि मर्चेंट नेवी में थे, साथ नहीं रह पा रहे थे और अकेले दो बच्चे पालना मुश्किल लगने लगा था। जब तक बच्चे घर न आ जाते असुरक्षा महसूस होती। तो हम ऑस्ट्रेलिया आ गए। अब तो यहाँ सोलह साल हो गए। बच्चे बड़े हो गए, और मैं भी शिक्षण में लगी रही। हिन्दी के प्रति लगाव था, तो सोलह साल से यहाँ हिन्दी का शिक्षण कर रही हूँ। पहले सामुदायिक विद्यालय में रविवार को पढ़ाना शुरू किया फिर शनिवार को भाषा शिक्षा विभाग में ग्यारह, बारह कक्षाओं को विषय के रूप में हिन्दी पढ़ाई, पैरामैटा कम्युनिटी कॉलेज में प्रौढ़ शिक्षा के अन्तर्गत हिन्दी पाठ्यक्रम बनाया और शिक्षण किया। पिछले कुछ वर्षों से सिडनी यूनिवर्सिटी में प्रौढ़ शिक्षा के अन्तर्गत पढ़ा रही हूँ। पूर्णकालिक नौकरी में मैं उन बच्चों को पढ़ाती हूँ; जिनको ऑटिज़्म, डिस्लेक्सिया, अटेंशन डेफिसिट, इमोशनल, बिहेवियर, या सोशल डिसॉर्डर है।

साहित्य के क्षेत्र में देखें तो यहाँ हिन्दी काव्य प्रेमी कम हैं, वो भी एक चुनौती है। परंतु फिर भी कैनबरा, वूलूनगोंग और मेलबोर्न शहरों में काव्य पाठ का आमंत्रण मिला। सिडनी में कवि सम्मलेन का आयोजन करती रही हूँ, जितने भी कवि भारत से आते हैं उनको सुनने का कार्यक्रम आयोजित करने का प्रयास करती हूँ। साहित्यिक माहौल के अभाव और काम की अधिकता के कारण लेखन उतना नहीं हो पाता। ऐसे में अंतर्जाल पर पढ़ना-लिखना और यू ट्यूब के सहारे से विश्व भर में हो रही साहित्यिक गतिविधियों का पता चलता रहता है, ये सांत्वना है। मैं कर्म करने में विश्वास करती हूँ और हिन्दी तथा साहित्य की जितनी सेवा हो पा रही है, कर रही हूँ। इसके लिए 2010 में इंडियन लिटरेरी एन्ड आर्ट सोसाइटी ऑफ़ ऑस्ट्रेलिया (इलासा) का गठन किया और इसके अन्तर्गत सभी कवियों और लेखकों को जोड़ा। हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के कवियों लेखकों, कलाकारों को प्रतिभा प्रदर्शन का अवसर मिल रहा है।

प्रश्न : वैश्विक परिदृश्य में भारतीय स्त्रियों की तुलना किस स्तर पर करेंगी?

उत्तर : यह एक कठिन प्रश्न है; क्योंकि भारत बहुत बड़ा देश है, वहाँ शहरों में महिलाएँ शिक्षित हैं, आत्मनिर्भर हैं। परंतु गाँव में महिलाओं का जीवन कठिन है। मध्यवर्गीय शहरों में स्त्रियों के अलग मुद्दे हैं। ऑस्ट्रेलिया एक विकसित और शिक्षित देश है, यहाँ महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति सजग हैं। पर यदि दोनों देशों की तुलना करें तो सबसे बड़ा अंतर है कि यहाँ महिलाएँ 'सुरक्षित' हैं। नियम कड़े हैं और न्याय प्रणाली मज़बूत है; जिससे महिलाओं के प्रति अपराध काफी कम हैं। पर्यटक यहाँ आते हुए दो बार सोचते नहीं, स्त्रियाँ अकेले रहते हुए डरतीं नहीं। अच्छा ये लगता है कि सब एक बराबर हैं और सबकी इज़्ज़त है।

भारत में बहुत विरोधाभास है। एक तरफ महिलाओं की उन्नति हो रही है, वे विश्व के फलक पर अपना नाम स्थापित कर रही हैं और दूसरी तरफ पुरुष प्रधान समाज में स्त्री आज भी उपेक्षित है। बलात्कार की शर्मनाक घटनाएँ आए दिन पढ़ने को मिलती हैं। सेक्स को लेकर टैबूज हैं। बालिका की भ्रूण हत्या की समस्या है। बेटी-बहू पर अत्याचार आम बात है। लड़कियों के साथ छेड़-छाड़ रुकी नहीं। उसे मात्र उपभोग की वस्तु समझने वाले लोगों ने महिलाओं की प्रतिष्ठा कम कर दी है। वैसे कहना तो नहीं चाहती पर जब मैं साहित्य अकादमी के आमंत्रण पर IORA कविता उत्सव में दिल्ली

गई तो सब कुछ बहुत अच्छा रहा, कार्यक्रम में बहुत सी कवयित्रियों ने भी भाग लिया। पर जब ग्रुप फ़ोटो की बात आई तो सारे पुरुष कवि आगे खड़े हो गए, महिलाएँ बेचारी कोने में सिमटी रह गईं। यह देखकर लगा कि ऑस्ट्रेलिया होता तो महिलाओं को आगे खड़ा किया जाता, एक तो वे कद में छोटी होती हैं, दूसरे उनकी इज़्ज़त करने में अपनी इज़्ज़त ही बढ़ती है। यहाँ स्त्रियों को अवसर की समानता मिलती है, और बच्चों को बचपन से यही सिखाया जाता है कि हर किसी का सम्मान करें।

प्रश्न : रेखा जी, क्या स्त्री 'लेखन' से स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ सकती है।

उत्तर : स्त्री स्वतंत्रता की लड़ाई बहुत पुरानी है। राजा राम मोहन राय ने वर्षों पहले ये लड़ाई शुरू की थी। मेरे विचार में लोगों को स्त्री स्वतंत्रता से अधिक स्त्री सम्मान की शिक्षा दी जानी चाहिए। इसमें संदेह नहीं कि लेखन में बहुत शक्ति है, जब मैं नब्बे के दशक में दिल्ली में लेखन कर रही थी तब भी भूतपूर्व उपराष्ट्रपति की पत्नी श्रीमती सुमन कृष्णकांत की एक पुस्तिका में स्त्री जीवन के विविध आयाम पर लेख प्रकाशित हुए थे, मैंने भी लिखा था। लेखन तो प्रभावी है ही, पर अधिक ज़रूरत है लोगों की मानसिकता बदलने की।

आजकल लोगों के पास वक्त कम है, वे किताबें पढ़ नहीं पाते हैं परंतु सोशल और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया बहुत प्रभावी हो गया है। बस, कार में आते-जाते वे मोबाइल फ़ोन में पढ़ते हैं। यू ट्यूब पर देखते हैं। लेखकों को तकनीक का सहारा लेना चाहिए, और वे ले भी रहे हैं। ऐसे धारावाहिक बने जिसमे स्त्री की उपलब्धियों को दिखाया जाए, उन महिलाओं के जीवन पर फिल्में बनें; जिन्होंने देश का सिर ऊँचा कर दिया। और सबसे अधिक आवश्यकता है न्याय प्रणाली को मज़बूत बनाने की, जिससे नियमों का कढ़ाई से पालन करवाया जा सके।

प्रश्न : ऑस्ट्रेलिया में आप ने हिन्दी का खूब प्रचार-प्रसार किया है। विदेश की धरती पर साहित्य से इतर आपने किस तरह से अपनी भाषा को पहुँचाया। जानना चाहती हूँ।

उत्तर : साहित्य के अतिरिक्त मैंने ऑस्ट्रेलिया में हिन्दी शिक्षण किया, सामुदायिक विद्यालय में बच्चों और युवाओं को हिन्दी पढ़ा कर उन्हें भारतीय संस्कृति और भाषा का ज्ञान दिया। मैं यहाँ बारहवीं की परीक्षा में परीक्षक भी रही। विश्वविद्यालय में अहिन्दी भाषी लोगों को हिन्दी सिखाने में एक अलग तरह का संतोष मिलता है। लोग अलग-अलग कारणों से हिन्दी की शिक्षा लेते हैं जैसे भारत भ्रमण, भारतीय पृष्ठभूमि के व्यक्ति से शादी, व्यवसाय और बॉलीवुड फिल्में समझने का चाव। उनको इसमें मदद कर पाना अपने आपमें एक उपलब्धि है। न्यू साउथ वेल्स की संसद में हिन्दी कविता प्रतियोगिता और इस वर्ष हिन्दी दिवस पर सिडनी यूनिवर्सिटी में एक दिवसीय सम्मलेन का आयोजन मुख्य धारा में हिन्दी की उपस्थिति दर्ज कराता है। यहाँ हिन्दी रेडियो एस बी एस के कार्यक्रम में अनेकों विषयों पर योगदान दिया।

इच्छा है कि कभी समय व पूँजी हो तो हिन्दी की कुछ अच्छी शिक्षण सामग्री विकसित कर सकूँ। पिछले दो वर्षों से ऑस्ट्रेलियन नेशनल यनिवर्सिटी के लेक्चरार डॉ. पीटर फ्रीडलैंडर के नेतृत्व में आयोजित नेशनल हिन्दी वर्कशॉप में हिन्दी पर अपना योगदान दे रही हूँ। इस वर्ष 'कविता के माध्यम से भाषा शिक्षण' विषय पर विविध गतिविधियों के माध्यम से व्याख्यान दिया।

प्रश्न : आपकी उपलब्धियाँ क्या हैं?

उत्तर : माँ के रूप में मेरी सबसे बड़ी उपलब्धि है अपने बच्चों को पाल कर सही दिशा दे पाना। मेरे दोनों बच्चों ने हिन्दी सीखी और एच एस सी तक हिन्दी की परीक्षा दी। हिन्दी के क्षेत्र में मैंने कुछ उपलब्ध किया, कुछ काम चल रहा है कुछ करने की इच्छा है। पुरस्कारों के पीछे भागना मेरा काम नहीं है। बस छोटी सी कोशिश है कि युवा पीढ़ी हिन्दी से जुड़े, सीखे और अपनी सभ्यता और संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए रखे। कुछ संस्थाओं ने मुझे सम्मानित किया उनकी आभारी हूँ।

रेखा राजवंशी की विनम्रता की कायल हूँ; जब भी फ़ोन किया बेहद आत्मीयता से बात करती हैं। रेखा जी की उपलब्धियाँ पाठक इनके परिचय में पढ़ सकते हैं।

***

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीएफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अतः कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

vibhom.swar@gmail.com

नाच-गान

उर्मिला शिरीष

लड़कियाँ नाच रही हैं।

लड़के गा रहे हैं।

लड़कियों के पाँवों में थिरकन, उनकी आंगिक मुद्राएँ, चेहरे पर मुस्कान, देह के अंग-प्रत्यंग में संचालन, आँखों में अभिनय, चेहरे पर हाव-भाव, कमर और वक्षों में लचक-नज़ाकत... सब कुछ लय और ताल में है। वे नृत्य की समझ रखती हैं और नृत्य करती आ रही हैं, यह देखकर ही अहसास हो रहा है। लड़कों के स्वर में आवारगी है, उनकी भुजाओं में बल, प्रदर्शन है। छाती पर पुरुषार्थी लक्षण यानी उतार-चढ़ाव, गढ़ाव हैं। आवाज़ में मस्ती है, मदहोशी है, मज़ाक है, शब्दों में कलाबाजियाँ हैं...।

लड़कियाँ कमर में हाथ डालकर, आँखों में आँखें डालकर नाचती हुई नाच में डूबती जा रही हैं। गुज़रते वक्त के साथ नाच-गान हवाओं के साथ गूँज पैदा कर रहा है। धीरे-धीरे नर्तक/गायक और नृत्य-गान... एकाकार होते जा रहे हैं। संगीत और नृत्य ने जीवन की गति को यौवन में, यौवन की आभा में ढाल दिया है।

लड़के पल-पल उनके प्रति आकर्षित होते, ललचाती निगाहों से, चकित भाव से, लड़कियों की तरफ निर्निमेष देख रहे हैं। यह पल उनके जीवन के सबसे यादगार और जीवन्त पक्ष हैं। नए भावों का प्रस्फुटन होता जा रहा है। उनके हृदय में, मन में संगीत और नृत्य ने अनकहा नशा पैदा कर दिया है।

नाच-गाना, मज़ाक-मस्ती, गीत-संगीत जब अपनी चरम अवस्था में था, ढलती दोपहर की धूप चारों तरफ चमक फैला रही थी, लोग घरों को लौट रहे थे, सारा वातावरण आनन्दमय और रागमय होता जा रहा था, तभी अचानक एक आवाज़ ने वहाँ ख़ौफ़ का माहौल बना दिया- ''क्या हो रहा है यह सब! बंद करो। बेशर्मों! ये क्या तरीका है? कैम्प में कुछ सीखने और करने आए हो या रासलीला रचाने।''

मदमाते, थिरकते, नृत्याभिभूत पाँव एकदम थम गए। भौंचक चेहरे, विस्मय में डूबी आँखें, सहमती हुई लड़कियाँ ... दीवार की ओट में सरकने लगीं।

''आखिर बात क्या है?'' एक लड़के ने आगे बढ़कर कहा।

धूप में लम्बी होती परछाइयों पर भारी कदमों की धमक को अपने भीतर महसूसते हुए, उनकी तरफ लुक-छुपकर देखती लड़कियाँ धीरे-धीरे एक दूसरे का हाथ पकड़ने लगीं। उनके बाल बिखर रहे हैं, पसीने से चिपक रहे हैं। अन्दर बहता पसीना कपड़ों में समाता जा रहा है। दिल की धड़कनें तेज़ होती जा रही हैं। भय के मारे पूरी देह काँप रही है। वे मदद के लिए भीतर बाहर निगाहें दौड़ाती हैं पर बिल्डिंग में फिलहाल कोई नहीं है... जो थे... जितने थे... वे सब यहीं आ गए थे... तमाशा देखने।

''कल भी मना किया था या नहीं कि किसी प्रकार का धमाल नहीं होगा। तुम लोगों के माँ-बाप को पता है या नहीं! कैम्प के नाम पर अय्याशी चल रही है। रात-रात भर सड़कों पर घूमती हो, आवारागर्दी करती हो, कल रात हमने... उन दोनों को पकड़ा था, इतनी पिटाई और धमकी के बाद भी नहीं माने। माँ-बाप की आँखों में धूल झोंक रहे हो।'' उसकी आवाज़ डरावनी और भारी होती जा रही थी।

''जी, हम लोग परमीशन लेकर आए हैं।'' एक लड़की ने डरते हुए कहा।

मुख्य कृतियाँ
कहानी संग्रह : केंचुली, शहर में अकेली लड़की, रंगमंच, निर्वासन, पुनरागमन
सम्मान : समर स्मृति साहित्य पुरस्कार, रत्न भारती पुरस्कार, शब्द शिल्पी सम्मान, काशी बाई मेहता पुरस्कार
संपर्क: ई-115/12, शिवाजी नगर, भोपाल-462003,
मोबाइल : 093031-32118
ई-मेल : urmilashirish@hotmail.com

दीवार के किनारे खड़े वृक्ष की घनी शाखों पर असंख्य परिन्दे शोर मचा रहे थे। उन्हें नहीं पता था कि अपनी आज़ादी खोकर इंसान कैसे अपनी चहचहाहट भूल जाता है।

काश वो समझ पाते कि मासूम चिड़ियों की चहचहाहट बंद करके वे गिद्ध कितने क्रूर होते जा रहे थे।

बाहर इक्का-दुक्का गाड़ियों का आना-जाना लगा था। नीचे कुछ लड़के समूह बनाकर बैठे थे, वे इन्हीं के ग्रुप के थे और इनकी पहरेदारी कर रहे थे।

''लीना कौन है?'' दाढ़ी वाला लड़का जो देखने में हट्टा-कट्टा था। उसकी आँखों में क्रूरता थी और पूरा बदन ही जैसे क्रूरता की थाप पर फड़क रहा था। सफेद रंग के कुरते-पायजामे पर उसने एक मफलर डाला हुआ था। उसने अपने चौड़े-चपटे माथे पर तिलक लगाया हुआ था और गले में कई तरह की मालाएँ आपस में गुँथी हुई थीं।

''मैं।'' लड़की कतार से बाहर निकलते हुए बोली।

''आपसे बात करनी है अभी।''

''मैं आपसे कोई बात नहीं करना चाहती हूँ।'' लड़की ने ख़ौफ़ की दीवार फाँदते हुए तटस्थ भाव से कहा। लड़की के चेहरे पर किसी प्रकार का भय, हैरानी या संकोच नहीं था।

''बात तो आपको करनी ही होगी। वरना आपके माता-पिता के पास जाएँगे हम।'' फिर वही धमकी भरी आवाज़।

''जाइए। किसने रोका आपको!'' फिर वही बेरुखी।

''इमरान को जानती हो?''

''हाँ।''

''कौन है?''

''मेरा दोस्त है।''

'सिर्फ़ दोस्त।''

''हाँ दोस्त!''

''कब से जानती हो?''

''पाँच साल से।''

''उसके अब्बा आए थे मेरे पास।''

''तो!''

''तुम दोनों शादी करने जा रहे हो?''

''यह मेरा पर्सनल मैटर है! आपको कोई हक नहीं बनता मुझसे इस बारे में सवाल पूछने का।'' सारी लड़कियाँ लीना का चेहरा देखे जा रही थीं। सवाल-जवाब उससे किए जा रहे थे, लेकिन रूह... उनकी काँप रही थीं।

''ये पर्सनल मैटर नहीं है... कॉमन मैटर है। समझी! कोई और लड़का नहीं मिला आपको?''

''आप मेरी और इमरान की बेइज्जती कर रहे हैं।'' लीना ने सख्ती से कहा। अब वह लड़कों के ठीक सामने खड़ी थी- ''मैं आपकी, आप सबकी पुलिस में कम्पलेन्ट करूँगी। प्रताड़ित करने, बदतमीजी करने और मेरी पर्सनल लाईफ़ में हस्तक्षेप करने की।'' लीना ने मोबाइल ऑन करते हुए कहा। चारों तरफ सन्नाटा छा गया।

लड़कों का ग्रुप एक दूसरे का चेहरा देखने लगा। पासा पलटता नज़र आ रहा था उन्हें!

फिर भी वे हार नहीं मानना चाहते थे। फिर भी वे धमकाना-डराना चाहते थे। फिर भी वे अपनी तरफ से समाज की ठेकेदारी करना चाहते थे। फिर भी वे लीना को 'लड़की' होकर उनसे टकराने का क्या नतीजा निकलेगा, ये संदेश देना चाहते थे।

''आप कितना जानती हैं इमरान को?''

''आपसे ज़्यादा।''

''आपकी ज़िन्दगी बर्बाद हो जाएगी।''

''आपको फिक्र करने की ज़रूरत नहीं।''

''आप नहीं मानेगी।''

''नहीं।''

''चाहे जो हो।''

''जो भी हो।''

गाते हुए लड़के एक तरफ खड़े सबका चेहरा ताक रहे थे और नाचती हुई लड़कियाँ धीरे-धीरे अपना मेकअप,गज़रा, चूड़ियाँ उतारने लगी थीं... उनका सारा उत्साह, उल्लास... समाप्त हो गया।

''क्या लफड़ा है?'' एक लड़के ने दूसरे लड़के से पूछा।

''ये लोग यहाँ क्यों और कैसे आ गए?''

''क्या ये वही लड़का है?'' एक लड़की ने लीना के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा।

''प्लीज़, इस समय मुझसे कोई बात मत करो।'' लीना ने मोबाइल उठाया और दूर एकान्त में जाकर बात करने लगी।

''यह आपने करवाया? मुझसे बात मत करो समझी! आप इतनी घटिया हरकत करोगी, वो भी यहाँ... जहाँ कैम्प लगा है, क्या इज्ज़त रह गई मेरी। मैं उन सबके ख़िलाफ़ पुलिस में कम्पलेन्ट करने जा रही हूँ। देखती हूँ कौन रोकता है मुझे! यह मेरी लाईफ है। मेरी पर्सनल लाईफ! मैं आपकी तरह धक्के खाकर नहीं रह सकती। वो मेरा दोस्त है। मुझे समझता है। मैं उससे प्यार करती हूँ, यह कितनी बार जता चुकी हूँ आपको! मैं उसी से शादी करूँगी। मैं उनके रिलीजन, उनके कस्टम्स, उनकी तहजीब को समझती हूँ। एडजस्ट कर लूँगी। आप तो पागल हो चुकी हो टी.वी. के बहस शो देखकर। आपको वही सच लगता है, हमारी रिलेशनशिप नहीं! हमारा प्यार नहीं!''

''उसके अब्बा का फ़ोन आया था कि मैं तुम्हें रोकूँ... उन्हें अपने समाज की लड़की चाहिए, जो पाँच वक्तनमाज़ पढ़े, बुरका पहने। उनके परिवार की देखभाल करे। वे नौकरी नहीं करने देंगे, न ही आगे की पढ़ाई।'' उधर से आती आवाज़ में गहरी चिन्ता थी। दर्द था। आँसू थे।

''इन बातों की चिन्ता आप छोड़ दें। वे क्या करने देंगे, क्या नहीं, यह मुझे सोचना है आपको नहीं। अगर वो ऐसा चाहते हैं तो मैं वैसा ही करूँगी।'' लीना चिल्ला रही थी।

''आज तक ये भी नहीं बताया कि वह करता क्या है?'' उधर की आवाज़ तेज़ होती जा रही थी। उस आवाज़ में अब रुलाई थी।

''उसके काम के बारे में कितनी बार तो बता चुकी हूँ मैं। वह पासपोर्ट बनवाने का काम करता है।''

''यानी दलाली करता है। फर्ज़ी पासपोर्ट बनवाता है।''

''आप हमेशा ग़लत ही सोचोगी। आपने उसके बारे में अपनी धारणा बना ली है।''

''हमें तो सब सोचना पड़ेगा।''

''नहीं। कहा न कि आपको कोई मतलब नहीं रखना है।''

''वह कट्टर मुसलमान है... यह जानते हुए भी हमें कोई एतराज नहीं। यह उसका मज़हबी मामला है...। हमें उसके धर्म और जाति से भी परहेज़ नहीं है, पर तुम्हारे साथ एडजस्ट करना उसके लिए कितना मुश्किल

होगा। तुम्हारा सारा कैरियर चौपट हो जाएगा।''

''हो जाने दो। मैं उसको और उसकी फैमिली को ज़्यादा जानती हूँ या आप! आपने ज़्यादा इंटरफ़ियर किया तो मैं आपको ब्लॉक कर दूँगी। पता नहीं चलेगा कि कहाँ हूँ मैं। फिर रोती रहना! और अचार डालना अपने धर्म-कर्म और परम्पराओं का! ढोल बजाना अपनी फ़ैमिली और सोसायटी का।'' कहकर उसने मोबाइल बंद कर दिया और नीचे उतर कर सड़क के किनारे पैदल चलने लगी। गुस्से से थरथर काँपती वह चुपचाप रोती जा रही थी। उसका हृदय आने वाले तूफ़ान की धमक से भरा हुआ था। वह इस समय दुनिया की उन तमाम दीवारों को गिराने के लिए तड़प रही थी, बल्कि प्रतिरोध के लिए बलबला रही थी, जो उसके और इमरान के बीच खड़ी थी।

''यार लीना तो बड़ी छुपी रुस्तम निकली। दोनों के परिवार वाले नहीं चाहते हैं... पर... हिम्मम तो देखो उसकी!''

तभी सबने अपने मोबाइल के व्हॉट्सअप पर देखा, इमरान और लीना की सैंकड़ों तस्वीरें, जिसमें वे दोनों अलग-अलग मुद्राओं में मस्ती कर रहे थे। घूम रहे थे। पानी की लहरों पर तैर रहे थे। एक-दूसरे से सटे चेहरे उनके परस्पर चुम्बनों से भीग रहे थे। यह सब उसने माँ को बताने के लिए, जताने के लिए, चिढ़ाने के लिए किया था। माँ देखें और समझें कि वह इमरान के साथ कितनी आगे निकल आई है। माँ सदियों पुरानी दकियानूसी सोच को लेकर खड़ी हैं और वह... वह मानती ही नहीं है कि जाति और धर्म आज के समाज में कोई मायने रखते हैं। वह धर्म की नहीं पर्यावरण की चिन्ता करती है, वह परम्पराओं की नहीं परिन्दों के बारे में सोचती है... वह जाति नहीं... नदियों और पहाड़ों के बारे में बात करती है।

इस समय उसे इमरान की चिन्ता सता रही थी। पता नहीं वो लड़के उसे परेशान न कर रहे हों या उस पर कोई इल्ज़ाम न लगा दें। स्साले, कमीने! घटिया! कुत्तों को छोड़ूँगी नहीं। अभी शिकायत करती हूँ और उसने एक लम्बी-चौड़ी शिकायत भेज दी। मेरी आज़ादी पर, मेरी लाईफ पर, मेरी ज़िन्दगी पर, मेरी सोच पर, मेरे दिल-दिमाग पर वो लोग कण्ट्रोल करना चाहते हैं, जिनका दूर-दूर तक मुझसे कोई वास्ता नहीं है। जान-पहचान तक नहीं है। आ गए मेरे जीवन के ठेकेदार बनकर। फ्रॉड कहीं के।

उसने देखा, लड़के-लड़कियाँ गोल घेरा बनाकर दबे स्वर में बातें कर रहे हैं। जाहिर है, उसी के बारे में मनगढ़न्त या मसालेदार बातें कर रहे होंगे। वह दूर से देखती रही। शाम होने को थी। इस इलाके में परिन्दों का जमावड़ा कुछ ज़्यादा ही है। रेलवे स्टेशन के आसपास हज़ारों की संख्या में पक्षी लौटकर अपने स्थानों पर अदृश्य होते जा रहे थे। डूबती शाम की चादर फैलती जा रही थी। हल्की-सी रोशनी में वह खड़ी अपनी ही परछाईं को छोटी होती देख रही थी। किसी भी लड़की ने आज उसे पुकारा नहीं। खाने के लिए भी नहीं रहा। अचानक कहीं लीना उन सबके लिए पराई, चरित्रहीन और खराब लड़की हो गई थी, जो अपने परिवार की प्रतिष्ठा को धूल-धूसरित करने में लगी है। जो इमरान से प्रेम नहीं, प्रेम का नाटक कर रही है। जो शादी से पहले साथ में रहकर अय्याशी कर रही है। उनकी धारणा के अनुसार जो अपने माता-पिता की नहीं हो सकती वो किसी की भी नहीं हो सकती! वे सब अपने-अपने रूम में जा चुकी थीं। डाइनिंग टेबल पर मिलेंगी तब बताऊँगी सबको। घुन्नी, सबकी सब डरपोक, शादी के बाद पिटेंगी। गालियाँ खाएँगी। पर अपनी ही जाति में शादी करेंगी। इनके तथाकथित शराबी, कमीने पति, जिनके आगे ये नंगी होकर अपने आपको पतिव्रता और सती होने का ढोंग करेंगी। हमारे समाज का कुछ नहीं हो सकता, न यहाँ की लड़कियों का। वह स्वयं की पीठ थपथपाए जा रही थी, क्योंकि अभी-अभी उसने लड़कों के एक ग्रुप को डाँटकर भगा दिया था, उनकी शिकायत कर दी थी। पूना में भी उसने अपने मकान मालिक के ख़िलाफ़ शिकायत दर्ज करवा दी थी और वैलेनटाइन डे पर सिर्फ़ इसलिए पूरे दिन पार्कों में घूमती रही थी कि कोई आकर उसे रोके, मना करे, तब वह पूरे मीडिया को बुलाकर इनकी भद्द खोलेगी।

धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़ती हुई लीना के मन में अजीब-सा उन्माद हिलोरें ले रहा था।

सबका विरोध करने का उन्माद। सबको मज़ा चखाने का उन्माद। स्वयं को सच बताने का उन्माद। दुनिया भर के साहित्य के महानायक और नायिकाएँ उसके सामने सीना ताने, सिर उठाए आलोक की पगडण्डी पर चल रहे थे। वह उन पात्रों की मानसपुत्री, हमदर्द, हमराज़ बनकर आगे बढ़े जा रही थी। आगे का रास्ता काँटों भरा था पर उसे काँटों पर चलना मज़ेदार लगता है। वह काँटों की चादर पर प्रेम के घुँघरू बाँधकर जीवन भर नृत्य करने को तैयार थी।

इमरान का मोबाइल बंद आ रहा था। मैसेज कर दिया था। कई मैसेज। अन्ततः थककर वह वहीं सीढ़ी पर बैठ गई इमरान के फ़ोन के इन्तज़ार में।

अब तक वह बाईस बार मोबाइल पर कॉल कर चुकी थी, एक-एक पल भारी होता जा रहा था, समय की अनन्तता और उसमें घिर जाने की पीड़ा से वह छटपटा रही थी। अन्ततः एक घंटे के बाद इमरान का फ़ोन आ ही गया- ''मैंने कहा था न कि मेरे परिवार वाले राज़ी नहीं होंगे। आज अब्बू ने आपकी ममा को फ़ोन पर बहुत बुरा-भला कह दिया। उनको धमकाया है।''

''ओह, मुझे लगा ममा ने मेरी शिकायत की होगी!''

''आपकी ममा ने कुछ नहीं किया।''

''उन्हें राज़ी करो न इम्मु! प्लीज़।''

''किस-किसको राज़ी करूँ लीना। मैं अपने परिवार को, अपने धर्म को, अपनी तहजीब को, अपने उसूलों को नहीं छोड़ सकता। यह हमारे बीच पहले से ही तय था कि हम एक दूसरे के परिवार का, धर्म का, तहजीब का सम्मान करेंगे। तुमने भी इस बात को कबूला है। पर मेरे अब्बा बिल्कुल भी मानने को तैयार नहीं हैं। वे मस्जिद में जाकर बड़ी-बड़ी बातें करते हैं। टी.वी. चैनल पर अलग बातें करते हैं, लेकिन परिवार में आकर एकदम बदल जाते हैं। उनके तीन चेहरे हैं, तीन ज़बानें हैं।''

''मेरे साथ इतने साल की रिलेशनशिप है, उसका क्या... बोलो इमरान।''

''क्यों हमें फ़िल्मी सिचुएशन में आना पड़ रहा है? क्यों इतना सीन क्रिएट किया जा रहा है? क्या तुम्हें अच्छा लग रहा है कि गुण्डे आकर मुझे यहाँ कैम्प में धमका रहे हैं! इनको किसने कहा यहाँ आने के लिए! ये हमारे ख़िलाफ़ घिनौनी हरकत है।

आश्चर्य कि हमारे पेरेन्ट्स ही हमारे ख़िलाफ़ गुण्डों का इस्तेमाल कर रहे हैं। कम्युनल मैटर बनाकर हमें अलग करना चाहते हैं। क्या तुम पूछोगे अपने अब्बू से कि उन्हें ऐसा करने की क्या ज़रूरत है!''

''मैं सब समझता हूँ, पर मैं अब्बू से कैसे कहूँ? कैस लड़ूँ?''

''वैसे ही जैसे मैं अपनी ममा से लड़ रही हूँ। मैं तुम्हारे लिए अकेले ही लड़ रही हूँ अपने पूरे खानदान से। पापा से, मामाओं से, मौसियों से। सबसे लड़ते हुए मैं उनकी नज़रों में गिर चुकी हूँ। चलताऊ भाषा में कहूँ तो मैं परिवार में बदनाम हो चुकी हूँ। मेरे परिवार वाले सोचते हैं कि मैं कभी भी भाग सकती हूँ। ममा तंत्र-मंत्र करवा रही हैं, बाबाओं और पंडितों के पास जा रही हैं कि मुझे तुमसे कैसे मुक्त किया जाए...। ममा तो गहरे सदमे में हैं, पर तुम... इमरान डिसाइड करो। डिसीज़न लो... हमारे पास वक्त नहीं है।'' लीना लगातार बोले जा रही थी और उधर इमरान हाँ-हाँ ना-ना किए जा रहा था।

''आज भी हम सौ साल पहले के समाज में जी रहे हैं। बचपन से ही मैं इन बातों को नहीं मानती थी, बल्कि मैं मज़ाक उड़ाती थी पर आज मेरे सामने ही ये बातें आ रही हैं... दोनों तरफ से। तुम्हारे लिए मैं जितना चेंज होना चाहती हूँ, बल्कि हो रही हूँ... कुरान पढ़ना... तुम्हारी एक-एक बात को समझना... उसे एक्सेप्ट करना... तुम्हें भी तो मेरे लिए चेंज होना पड़ेगा... इमरान।'' लीना की आवाज़ में याचना का भाव घुलने लगा।

''मैंने कब कहा कि मैं चेंज नहीं होऊँगा। वक्त दो लीना... थोड़ा-सा वक्त!''

''लो न वक्त। पर कब तक? कितना लम्बा? क्या यूँ ही उम्र निकल जाएगी! मुझे डिसाइड करना होगा कि मैं तुम्हारे साथ रहूँगी या नहीं या फिर अकेले ही लड़ती रहूँगी। यदि ऐसा ही चलता रहा तो मैं पढ़ने के लिए निकल जाऊँगी। मैं खुद को डिप्रेशन से बचाना चाहती हूँ।''

''मैं नमाज़ के बाद फ़ोन करता हूँ।''

इमरान ने फ़ोन काट दिया था।

वह एकदम अकेली सीढ़ी पर बैठी थी। दीवार पर दो मोटी छिपकलियाँ चिपकी थीं। मच्छर भिनभिना रहे थे। उसे लग रहा था जैसे उसकी देह छिल गई हो। चिनचिनाता दर्द पूरी देह में दौड़ रहा था। मन संताप, शंका और बेबसी के कारण अस्थिर था। अनिर्णय की स्थिति ने उसकी सारी सोच को, खरे सपनों को, सारी ताकत को छिन्न-भिन्न कर दिया था। उसका निर्णय सटाक से बॉल की तरह उसी की तरफ फेंका जा रहा था। सामनेवाला बॉल को उछाल रहा है, पर पकड़ नहीं रहा है। ऊपर रूम में लड़कियों के खिलखिलाने की आवाज़ गूँज रही थी... इधर लड़के ठहाके लगा रहे थे। कैम्प का कल आख़िरी दिन होगा। सब अपने-अपने घर लौट जाएँगे। यहाँ की यादें लेकर। यहाँ की हँसी लेकर। यहाँ की बातें... गप्पें लेकर। लेकिन मैं... मैं क्या लेकर जाऊँगी... जलालत! कटाक्ष। मज़ाक उड़ाती निगाहें! घृणा से भरी आँखें!

लीना को लगा निबिड़ अंधकार के बीच वह एक तारिका की तरह है... जिसकी अपनी चमक तो है, पर उसकी चमक से कोई दूसरा नहीं चमक रहा है। अनन्त आकाश में एकाकी उपेक्षित तारिका! ममा को बिना बात के कितनी बातें सुना दी, जबकि इमरान अपने अब्बू को एक शब्द नहीं बोलता है। क्या मैं ही मूर्ख हूँ या गँवार या नादान। जबकि इमरान हमेशा शान्त, स्थिर और अडिग रहता है। ऐसा क्यों! क्या सचमुच हमारा मन हमारे शरीर में कैद होकर भी कहीं दूर, अलग... बहुत अलग होता है पिछली पीढ़ियों के अंश से बना! यानी इमरान में उसके अब्बू हैं पर मेरे भीतर मेरी ममा तो नहीं है! तो फिर मेरे भीतर कौन है...? कौन... किसका अंश है मेरे भीतर। ''लीना ऊपर आओ'', मैडम की आवाज़ से वह चौंकी। सीढ़ियाँ चढ़ते हुए वह एकाएक गिरते हुए बची... उसके मोबाइल पर मैसेज था- आज के बाद मेरे बेटे से मिलने की कोशिश मत करना। आप अपना जीवन देखें और परिवार के साथ रहें। आपका और इमरान का निकाह कभी नहीं हो सकता। हर बात में धर्म और सम्प्रदाय की बात करना ठीक नहीं है। बात पसन्द-नापसन्द की भी हो सकती है। सदियों से चली आ रही रवायतों को आपकी ज़िदों के कारण हम नहीं छोड़ सकते। आप बेवजह हमारे परिवार को सड़क पर ला रही हैं। अपनी हदें पहचानिए और उसी में रहिए। खुदा आपको बरक्कत दे। ख़ुदा हाफ़िज़। इमरान का अब्बू। उसे लगा वह आकाश से गिर कर... किसी पेड़ पर आ टपकी है। पेड़ हवा में झूल रहा है। उसकी शाखाएँ आपस में ज़ोर-ज़ोर से टकरा रही हैं... रात और दिन... प्रकाश और अंधकार, अच्छा और बुरा... किसी का भी उसे एहसास क्यों नहीं हो रहा है!

दूसरी सुबह सामान पैक करते हुए उसके हाथ-पाँव काँप रहे थे। छाती में हवा का गोला अटक गया था। साँस लेने में उसे तकलीफ हो रही थी। ज़बान चिपक रही थी। उसने आसपास देखा कि कोई उसे पानी पिला दे, पर सब एक-दूसरे की फ़ोटो निकालने, सेल्फ़ी लेने में मस्त थे। साथ में पिक्चर देखने, पिकनिक पर जाने और पुनः-पुनः मिलने की कसमें खा रहे थे। परस्पर बिछुड़ने का ग़म उनकी आँखों को नम बना रहा था। बाहर से आवाज़ें लगाई जा रही थीं, क्योंकि बस आ चुकी थी। सामान रखा जा रहा था। लेकिन वह... मोबाइल की स्क्रीन पर निगाहें जमाए बैठी थी। नितान्त अकेली। उपेक्षित!

लीना ने एक बार नहीं, दस बार उस मैसेज को पढ़ा। क्या इमरान ने लिखा है या सचमुच उसके अब्बू ने। इमरान इतना तो बता ही सकता है कि यदि शादी नहीं करनी थी तो रिलेशनशिप क्यों आगे बढ़ाई ! क्यों उसकी भावनाओं के साथ खेलता रहा! क्यों उसको अपने प्रेम की तपिश में तपाता रहा! क्यों! क्यों! उसका मन हाहाकार कर रहा था! हृदय चीख-चीख कर उस पर लानत बरसा रहा था। उसे लग रहा था, काश वह चिड़िया बनकर दूर आकाश में उड़ जाए। वह मछली बनकर पानी में गहरी चली जाए। वह कहीं भी... धरती-आकाश में अदृश्य हो जाए। एक ज़ोर का उबाल उसके भीतर उठा। उस उबाल से उसकी देह थरथराने लगी। वह गिरती, रोती, फड़फड़ाती, सड़क पर भागती या इमरान से फ़ोन पर बात करने के लिए तड़पती, इसके पहले ही दो मजबूत बाँहों ने उसे अपनी छाती से लगा लिया। आँसू भरी आँखों से उसने देखा... यह कोई और नहीं, इमरान था... जो उसे अपने अब्बू का फैसला सुनाने आया था।

***

बर्फ के आँसू

डॉ.पुष्पा सक्सेना

अमेरिका निवासी, कई सम्मानों से सम्मनित डॉ. पुष्पा सक्सेना की 31 पुस्तकें, 5 उपन्यास, 15 कहानी संकलन, 8 बाल-साहित्य, 2 हास्य नाटक, 1 शोध-ग्रन्थ, 250 से अधिक कहानियाँ, यात्रा वृत्तांत, परिचर्चाएँ, समीक्षात्मक लेख आदि भारत, एवं विदेशों की स्तरीय पत्रिकाओं में प्रकाशित। रचनाओं का बारह भारतीय भाषाओं तथा रूसी, चीनी, अंग्रेज़ी भाषाओं में अनुवाद।
एन एॅफ़ डी सी तथा फिल्म डिवीज़न ऑफ़ इंडिया मुम्बई, द्वारा टेली फिल्मों का निर्माण और प्रसारण। फीचर फिल्म 'प्यार के रंग हज़ार' नाम से भोजपुरी में फीचर फिल्म 2017 में प्रसारित।
संपर्क :
13819 NE 37 TH PL, Bellevue, WA 98005,SA
ईमेल: pushpasaxena@hotmail.com

लेक एवेन्यू के सामने वाले पेड़ बर्फ से ढँके खड़े थे। कुछ देर पहले रात में आने वाले तूफ़ान की चेतावनी दी जा चुकी थी। नीरज को बाहर निकलता देख साथी चौंक उठे। अशोक ने कहा था-पागल हो गया है क्या? आज हैवी स्ट्रॉम आने वाला है ।बाहर बर्फ में दफ़न हो जाएगा ।शेखर ने व्यंग्य किया था- अरे भई इसे पैसा जान से ज़्यादा प्यारा है, जानते नहीं?

नीरज उदास हँसी हँस दिया था- 'कुछ नहीं जानते हो मेरे दोस्त! तुम सबको तो 'फाइनेन्शियल एड' मिली है न, मेरी बात नहीं समझोगे।'

'अरे एक दिन काम नहीं करेगा तो कोई कहर तो टूट नहीं पड़ेगा। आज मत जा, वरना पछताएगा।' अशोक ने समझाना चाहा था।

'नहीं जाऊँगा तो कल से मेरी जगह कोई और रख लिया जाएगा।' सपाट स्वर में नीरज ने जवाब दिया था।

'अरे तो कौन-सा बड़ा जॉब है? कोई और असाइनमेंट मिल ही जाएगा। शेखर ने समझाना चाहा था।

'इतने पैसे और एक टाइम का मुफ्त खाना मेरे लिए तूफान से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है।' नीरज दरवाज़ा खोल चला गया था।

'आज पता लगेगा बच्चू को! सेंट्रली हीटेड रूम में आराम से थे, बाहर निकलो तो आटे-दाल का भाव पता लग जाएगा। पहनने को यही घिसा कोट बर्फीले तूफ़ान को भला झेल पाएगा?'अशोक खीझ उठा था।

'अपने यहाँ आने के पागलपन की सज़ा ही तो भुगत रहा है बेचारा।' अब तक शान्त बैठे

गौरव ने बस इतना ही कहा था।

'क्या यहाँ आना पागलपन है? यार तुम भी कमाल करते हो।' शेखर हँस पड़ा था।

'बिना आर्थिक सहायता के एक मामूली घर के लड़के का यहाँ आ जाना निरा पागलपन ही तो है। जानते हो न, एक सेमेस्टर का कितना खर्च आता है?' गौरव ने प्रश्न किया था।

'यह नीरज की कमज़ोरी है, ज़रा भी डैशिंग नहीं है वरना यू एस आकर किसी को छात्रवृत्ति न मिले ताज्जुब की बात है।' अशोक ने अपनी सम्मति दी थी।

'जानते हो नीरज अपने परिवार का पहला इंजीनियर है। ग्रामीण बैकग्राउंड के कारण तुम उसे भले ही स्मार्ट या डैशिंग न कहो, पर बुद्धि या प्रतिभा में क्या हमसे कम है?' गौरव नीरज के प्रति पूर्णतः सहानुभूतिशील था।

'हाँ-हाँ, तभी तो डिश वाशिंग का काम मिला है जनाब को। अशोक ने सीधा कटाक्ष किया था।

'और उपाय भी क्या है? घर से किसी तरह टिकट और एक सेमेस्टर की फीस जुटा लाया था। यहाँ रहने के लिए कोई स्थायी साधन भी तो चाहिए न?' गौरव ने स्पष्टीकरण दिया था।

'तुम तो उसकी ऐसी वकालत कर रहे हो मानों वह तुम्हारा क्लाएंट हो।' शेखर चिढ़ उठा था।

फिर हमने भी तो उसकी कितनी मदद की है! रहने को इतनी सस्ती जगह दी............'

अशोक का वाक्य काट गौरव ने कहा था- 'हाँ, उस सीलन-भरे स्टोर में जहाँ इन्सान तो क्या कीड़े भी मुश्किल से साँस ले पाते हैं, दिन में भी रात का अँधेरा रहता है, क्या वह किसी इन्सान के रहने की जगह है?' गौरव का स्वर आवेशपूर्ण था।

'तो तुम उसे अपने कमरे में क्यों नहीं रख लेते?' अशोक ने सीधा प्रश्न उछाला था।

'अगर उसका स्वाभिमान आड़े न आता तो मैं यह प्रस्ताव बहुत पहले रख चुका हूँ, पर मुफ्त में वह किसी का एहसान नहीं लेना चाहता। गौरव के उत्तर पर दोनों विस्मित रह गए थे। एक माह पहले कॉलेज के एक साथी ने नीरज के विषय में गौरव को बताया था।ऑफिस के बड़े बाबू के पुत्र नीरज ने कैमिकल इंजीनियरिंग की डिग्री प्राप्त कर उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका के सपने देखे थे। नीरज को एडमीशन तो मिल गया, पर आर्थिक सहायता नहीं मिल सकी थी।

साथ के कुछ लड़को ने ही सलाह दी थी-'तुम तेज़, प्रतिभाशाली छात्र रहे हो, अगर पहले सेमेस्टर में छात्रवृत्ति न भी मिली तो वहाँ पहुँचने पर दूसरे सेमेस्टर मे छात्रवृत्ति ज़रूर मिल जाएगी।' स्वंय नीरज को अपनी योग्यता में विश्वास था। माता-पिता की इच्छा के विरूद्ध उसने यहाँ आने का निर्णय ले लिया था। पिता ने अपनी विवशता बताई थी- बड़ी बेटी के विवाह का ऋण पहले ही सिर पर सवार था, दूसरी बेटी विवाह योग्य थी। अब तो पुत्र की नौकरी पर ही भरोसा था।

एकमात्र पुत्र के हठ आगे माता-पिता को झुकना ही पड़ा था। किसी तरह टिकट का प्रबन्ध तो पिता ने कर दिया था, पर सेमेस्टर की भारी फीस का हल निकालना कठिन था। रास्ता माँ ने निकाला था। लाड़ले पुत्र की इच्छापूर्ति के लिए ज़ेवरों का मोह त्याग एसेमेस्टर की फीस पूरी कर दी गई थी। माता-पिता के त्याग ने पुत्र को विचलित तो किया, पर सात समुद्र पार के चमत्कारी देश का आकर्षण प्रबल था-छात्रवृत्ति मिली नहीं कि सब कमी पूरी कर दूँगा। पढ़ाई पूरी होते ही नौकरी-भर मिलने की देर है- संसार का हर सुख आपके चरणों में धर दूँगा। चरण छू, आते-आते वह माता-पिता को सान्त्वना देता आया था। छोटी बहन के विवाह की समस्या भी उसकी यू एस ए की नौकरी करते ही दूर हो जाएगी- इसी विश्वास के साथ छाती पर पत्थर रख माता-पिता ने विदा किया था।

यहाँ आकर ट्यूशन-फ़ीस के अलावा हॉस्टल पर आने वाले खर्च को सुन नीरज को अपने सपने टूटते नज़र आए थे। एक भारतीय छात्र ने ही सलाह दी थी कि भारतीय लड़कों के साथ रहे तो खर्च कम आएगा। यू एस ए आए अधिकांश छात्र या तो छात्रवृत्ति पर आए थे अन्यथा अमीर बापों के बेटे थे। उन दोनों ही श्रेणियों में नीरज खप नहीं सकता था। गौरव और उसके साथियों ने यह अपार्टमेंट जब लिया तो सीलन-भरे स्टोर को व्यर्थ की जगह कहकर छोड़ दिया था। उसी स्टोर में रहने के बीस डॉलर प्रतिमाह के प्रस्ताव के साथ जब नीरज आ पहुँचा तो सब स्तब्ध रह गए थे।

'इस दरबे में रह सकोगे?' गौरव ने स्पष्ट प्रश्न किया था।सहास्य नीरज ने कहा था- 'रहना होगा ही कितनी देर का? सिर छिपाने को जगह-भर चाहिए।'

गौरव ने कम पैसे लेने की बात कहनी चाही थी, पर शेखर और अशोक नाराज़ हो गए थे-

'अरे बीस डॉलर होते क्या हैं? मुफ्त में रहेगा यहाँ...फिर जब वह खुद ऑफर दे रहा है तो हम क्यों पैसे कम करें?'

जगह मिल जाने पर नीरज का मुख कृतज्ञता से चमक उठा था। सुबह सब अपना ब्रेकफास्ट ले कॉलेज निकल जाते। एक चाय का डिब्बा और एक पाउडर मिल्क का टिन नीरज भारत से लाया था। सुबह एक कप चाय ले जब वह कॉलेज जाने लगा तो गौरव ने कहा था- 'अगर तुम चाहो तो हमारे साथ ब्रेकफास्ट शेयर कर सकते हो।'

'नहीं- थैंक्स। मेरी सुबह खाने की आदत नहीं है। वहीं कॉलेज -कैंटीन में कुछ ले लूँगा।'

उसके जाने पर अशोक ने पीछे से कहा था, 'ऐसे-ऐसे नमूने अमेरिका आ जाते हैं। अरे इसे तो वहीं इण्डिया में कहीं लग जाना था, शादी में एकाध लाख माँग लेता, ज़िन्दगी बन जाती।' यहाँ बेकार झख मारने आया है।

'अरे तुम नहीं जानते- टिपिकल मक्खीचूस इण्डियन है। बाप की तिजोरी भरी होगी। यह उन लोगों में से है चमड़ी जाए दमड़ी न जाए।' शेखर ने भी अशोक की बात का समर्थन किया था।

पूरे दिन कॉलेज के बाद सब थककर चूर हो जाते थे। शेखर तो आते ही पलँग पर पसर जाता था। उस समय नीरज पैदल न जाने कहाँ जाता था। पूछने पर हमेशा यही कहकर टाल देता शाम को देर तक घूमने की मेरी आदत है- गाँव का लड़का ठहरा न? अजीब उदास-सी हँसी हँस देता था नीरज। और उसकी सन्ध्या को घूमने की आदत का रहस्य खोला था अशोक ने। हँसते-हँसते पूछा था -'गैस, अपने नीरज दि ग्रेट शाम को कहाँ घूमने जाते हैं।?' शेखर ने अटकल

लगाई थी, 'लगता है किसी लड़की से इश्क फर्मा रहे हैं जनाब। वह मुँह की खाएँगे कि छठी याद आ जाएगी। जानते नहीं लड़कियों से दोस्ती करना कितना महँगा शौक है।'

'कमाल करता है तू भी यार! अरे इस बुद्धू के आगे कौन लड़की घास डालेगी? अरे भई वह रोज़ 'होटल ट्राय' जाता है, समझे?'

'क्या?' विस्मय से शेखर के नयन फैल गए थे–

'वहाँ तो खाना बहुत महँगा है, कैसे एफोर्ड करता है?'

गौरव ने भी पुस्तक से दृष्टि उठा अशोक की ओर ताका था।

'हाँ भई, जनाब वहाँ काम करते हैं।'

'हाँ-हाँ, बहुत इम्पोर्टेन्ट काम है उसका। अगर एक दिन न जाए तो होटल बन्द हो जाएगा।' पहेली बुझाने में अशोक को मज़ा आ रहा था–

'कुड यू गैस गौरव? आपके धीर-गम्भीर नीरज, कैमिकल इंजीनियर फ्रॉम इण्डिया वहाँ क्या काम करते हैं?'

'कोई भी काम करना यहाँ अपमानजनक तो नहीं है, अशोक! उसे हमारी तरह कोई सुविधा-सहायता भी तो प्राप्त नहीं है। कुछ भी करे अपना खर्चा स्वयं निकाल रहा है, हमारे-तुम्हारे आगे हाथ तो फैलाता नहीं।' गौरव को अशोक का यूँ हँसी उड़ाना खल रहा था।

'अरे अगर उसे डिश वाशिंग ही करनी थी तो भारत ही क्या बुरा था? वहाँ कम-से-कम इंजीनियर तो रहता! यहाँ तो दूसरों के जूठे...............।

उसी समय नीरज के प्रवेश ने अशोक को अपनी बात अधूरी छोड़ने को विवश कर दिया था।

उस दिन के बाद से गौरव, नीरज के प्रति और भी अधिक सदय और सहानुभूतिपूर्ण हो उठा था। रात देर गए जब सब सोते थे, नीरज पुस्तकों में सिर झुकाए अपना भविष्य संजोता था। घर से आने वाले पत्रों की नीरज को बहुत प्रतीक्षा रहती थी। पत्रों को भी वह बहुत सहेजकर रखता था। एक दिन अशोक ने कहा भी था–'यार, सच बता ये चिट्ठियाँ तेरे घर से आती है या कोई गर्ल फ्रेंड है? चिट्ठियों को यूँ छिपाता क्यों है?'

नीरज बस मुस्करा-भर दिया था, पर सचमुच घर से आई चिट्ठियाँ वह सबकी दृष्टि से मानों बचाए रखना चाहता था।

उस दिन शेखर कॉलेज से जल्दी आ गया था। लेटरबॉक्स में बस नीरज के लिए एक पत्र था। पत्रों प्रति नीरज की उत्सुक प्रतीक्षा ने शेखर को वह पत्र पढ़ने को बाध्य-सा कर दिया। पत्र नीरज के पिता का था– पुत्र को अच्छी फर्म में नौकरी पाने के लिए बधाई के साथ ही घर की समस्याओं का विस्तृत ब्यौरा था। माँ को डॉक्टर ने कैंसर का संदेह बताया था, छोटी बहन माँ की बीमारी के कारण कॉलेज नहीं जा सकती। पिता के रिटायरमेंट को आठ माह शेष थे। नौकर रख पाने की सुविधा के अभाव में छोटी बहन पर घर का सारा दायित्व आ पड़ा है। भगवान् से प्रार्थना है नीरज दिन-दूनी, रात-चौगुनी तरक्की करे ताकि घर की समस्याएँ हल हो सकें। नीरज की फर्म के स्वामी को पिता ने आशीष भेजी थी, साथ ही नीरज को लिखा था यदि

सम्भव हो कुछ पैसे एडवांस ले भेज दे– माँ की स्थिति चिन्ताजनक है। पुत्र के लिए आशीर्वाद के साथ पिता के हस्ताक्षर थे।

पत्र को ज्यों का त्यों लेटर बॉक्स में डाल शेखर ने हँसते हुए रहस्योद्घाटन किया था– तो दोस्तो, हमारे नीरज जी केमिकल मैन्यूफैक्चरिंग फैक्ट्री में मैनेजर हैं– सूचना बकौल नीरज। अरे भाई झूठ की भी हद होती है! ये तो अपने ही बाप को बना रहा है!

'तुमने उसका पत्र क्यों खोला शेखर? यही तुम्हारी सभ्यता है?' गम्भीर स्वर में गौरव ने प्रतिवाद किया था। प्रतिवाद की शेखर को आशा नहीं थी; सोचा था नीरज के झूठ पर आज के मनोरंजन का मसाला मिल जाएगा। बौखलाकर सफाई दी थी– 'पत्र तो पहले ही खुला, मेरी निगाह पड़ गई।'

'दूसरों की विवशता की हँसी उड़ाना कितना आसान है! काश, तुम उसकी स्थिति समझ पाते!' गौरव ने शान्त स्वर में कहा था।

'जो भी हो, जो अपने माँ-बाप से इतना झूठ बोल सकता है उसपर हम रिलाय नहीं कर सकते। मैं तो कहता हूँ हमें उसके पिता को सच्ची बात लिख भेजनी चाहिए। कभी अचानक उन्हें सचाई पता लगेगी तो कितना बड़ा शॉक लगेगा उन्हें!' अशोक ने कंसर्न शो किया था।

'अगर तुम दोनों में से किसी ने भी ऐसा कुछ किया तो मुझसे बुरा कोई नहीं होगा, समझे?' व्हाइट आई से, आई मीन इट। हमेशा शान्त रहने वाले गौरव को उत्तेजित देख दोनों डर-से गए थे।

एक क्षण बाद गौरव ने फिर सधे-संयत स्वर में कहा था, 'किसी झूठ से अगर किसी का लाभ हो तो उसे मैं झूठ नहीं मानता। किसी के सपनों की निर्ममता पूर्वक हत्या का हमें क्या अधिकार है? नीरज के स्वाभिमान को तोड़ तुम्हें क्या मिलेगा?' शेखर और अशोक ने उसके बाद बात आगे नहीं बढ़ाई थी। नीरज के प्रति उनके हृदय में जो हीन भावना थी वह गौरव के सामने कभी प्रकट न होने दी।

पिछले एक सप्ताह से शीत लहरी आई हुई थी। रात में भयंकर तूफान की चेतावनी के बावजूद नीरज चला गया था। चाहकर भी गौरव उसे रोकने की ज़िद नहीं कर सका। नीरज के लिए अब इस कार्य का दुगुना महत्त्व था– 'यह बात उसने गौरव के सामने स्पष्ट रूप में स्वीकार की थी। माँ का कैंसर से ग़लता शरीर, पिता की विवशता, बहन का कच्ची उम्र में पूरे घर का बोझ उठाना, सबके लिए वह अपने-आपको दोषी ठहराता था। अपने यहाँ आने के अपराध के प्रायश्चित-स्वरूप वह कुछ भी करने को तत्पर था। किसी तरह उसे रुपए कमाकर घर भेजने ही थे। घर वापस लौटने से उसका स्वाभिमान आहत होता था। किस मुँह से वापस जाए? क्या कहेगा वह उनसे?

बाहर बादल की गरज और हवा की तूफानी साँय -साँय बढ़ती जा रही थी। बर्फ गिरना शुरू हो गई थी। कैसे इस तूफान में नीरज पैदल आ सकेगा? गौरव उद्विग्न था। अशोक और शेखर भी अब चिन्तित नज़र आ रहे थे।

'अच्छा हो नीरज आज होटल में ही रुक जाए। इस बर्फीले तूफान में इतनी दूर पैदल कैसे जाएगा?' शेखर ने कमरे का मौन तोड़ा था।

'कितना मना किया था कि आज काम पर मत जाओ, पर उसे तो बस रुपया कमाने की धुन सवार है, 'ईडियट' कहीं का!' अशोक भी परेशानी में झुँझला रहा था।

'और उपाय भी क्या है उसके पास? उसकी स्थिति हमसे छिपी तो है नहीं। उसका स्वाभिमान हमारी सहायता भी तो स्वीकार नहीं करता! गाड़ी भी नहीं है हमारे पास, वर्ना ले आते उसे। भगवान् ही रक्षा करें।' गौरव मानों अपनी व्यग्रता छिपा रहा था।

नीरज की प्रतीक्षा करते तीनों न जाने कब सो गए थे। तूफान शान्त होता जा रहा था। रात के सन्नाटे को तोड़ती टेलीफ़ोन की घण्टी बजी थी। शेखर नींद से जागता बड़बड़ाया था- 'लो आ गई मुसीबत, भला वापस आने का ये वक्त है।'

टेलीफ़ोन की घंटी फिर बजी थी। रिसीवर उठा शेखर ने हलो कहा था-- 'हलो' उसके प्रत्युत्तर में एक अजनबी नारी-स्वर ने पूछा था -'इज इट ट्वेण्टी सेवन लेक एवेन्यू?' शेखर के यस पर उसी आवाज़ ने गौरव को बुलाया था-'आपके एक फ्रेंड कार से हिट हो गए हैं, आपसे मिलना चाहते हैं। जल्दी से क्वीन मेरी हॉस्पिटल में आ जाइए।......जी हाँ, वह इमरजेंसी वार्ड में हैं।'

'ओह गॉड !' कह गौरव ने रिसीवर रख दिया था। कुछ देर में ओवरकोट, मफलर से शरीर ढक तीनों टैक्सी में क्वीन मेरी हॉस्पिटल की ओर चल दिए थे।

डॉक्टर ने सूचना दी थी, 'ही इज इन कोमा।.......' बहुत ब्रेव लड़का है! बुरी तरह हिट होने पर भी सेन्सेज में था। होश रहते गौरव को याद किया था।

कार का स्वामी कोई अमेरिकन वृद्ध था। तीनों लड़कों के साथ नीरज के लिए प्रार्थना कर रहा था- 'पुअर चाइल्ड, इतने तूफान में विजिविलिटी तो शून्य थी। 'डोंट वाक' पर सड़क पार कर रहा था। मैं तो उसे देख नहीं पाया। गॉड सेव हिम!' तीनों मित्र स्तब्ध ताक रहे थे।

नर्स ने आकर उन्हें दु:खद सूचना दी थी- उनका मित्र उन्हें छोड़ गया है। नीरज की जेब से मिला पत्र गौरव को थमा नर्स चली गई थी। डॉक्टर ने भी सहानुभूति प्रकट की थी- 'ऐक्च्युली स्पीकिंग, तुम्हारे फ्रेंड में स्टेमिना था ही नहीं, वरना यंग लड़के इतनी चोट झेल जाते हैं। आई थिंक ही वाज अण्डर-नरिश्ड।'

पत्र नीरज ने अपने पिता को लिखा था- 'मुझे अच्छी नौकरी मिल गई है, पिताजी! माँ के इलाज के लिए शीघ्र ही व्यवस्था कर रहा हूँ। आप व्यर्थ चिन्ता न करें। अलका पर काम का बहुत बोझ पड़ गया है, उसे मेरा प्यार दीजिएगा। वेतन मिलते ही पैसे भेजूँगा, फिलहाल अभी दो सौ डॉलर भेज रहा हूँ। माँ को अच्छे डॉक्टर को दिखाइएगा। आपके आशीर्वाद से मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ, अपना ध्यान रखिएगा। माँ को चरण स्पर्श।

-नीरज

अशोक फफक उठा था, 'चलते समय मैंने ही कहा था वह बर्फ में दफ़न हो जाएगा। मैं क्या जानता था मेरी बात सच हो जाएगी!'

गौरव ने अपना सांत्वनापूर्ण हाथ उसके कन्धे पर रख दिया था। शेखर के नयन अश्रुपूर्ण थे। तीनों ने एक-दूसरे को देखा। जिसने उन पर अपना कोई दायित्व कभी नहीं डाला, जिसके स्वाभिमान ने भूखे रहकर भी उनके सामने कभी हाथ नहीं फैलाने दिया, आज वह अपना सम्पूर्ण दायित्व उन पर कैसे छोड़ गया? डॉक्टर ने दो सो डॉलर गौरव को दिए थे-'तुम्हारे फ्रेंड ने तुम्हें देने को कहा था।'

'कितने ग़लत थे वे! अपने अन्तिम संस्कार का खर्च भी नीरज स्वंय दे गया था। भला वह स्वाभिमानी जाते-जाते ऐसी ग़लती कर सकता था?'

'गौरव, मैं अपनी बचत के सारे पैसे देता हूँ, तुम नीरज के पिता को भेज दो।' शेखर की भावुकता फूट पड़ी थी।

'हाँ गौरव, हम सब मिलकर उसकी बॉडी इण्डिया भेज दें और बाकी अपने सारे पैसे उसके घर भेज देंगे, पुअर फेलो! अब उसके घर वाले क्या करेंगे गौरव?' अशोक का गला रुँध गया था।

शायद यही ठीक होगा। उसके पिता को यहाँ बुलाकर उनका भ्रम तोड़ना ग़लत होगा। कम-से-कम उन्हें यही सन्तोष रहेगा कि बेटा बहुत बड़ी नौकरी कर रहा था, सुखी-सन्तुष्ट था। आज पहली बार गौरव उनके विचारों से सहमत था।

पुलिस अपनी कार्रवाई कर चुकी थी। ग़लती नीरज की ही थी- यह स्पष्ट था। इन्स्पेक्टर ने भी यही कहा था- 'पहले तो हमने सोचा वह कोई ड्रंकर्ड होगा, पर डॉक्टरों ने बताया वह नॉन -अलकोहलिक था। इतने तूफान में वह क्यों निकला? कहीं कोई लव एफेयर तो नहीं था?'

शान्त गौरव ने यही कहा था, 'वह काम पर जाने के लिए विवश था, हम उसे रोक नहीं सके इन्स्पेक्टर, दैट्स ऑल।'

कार का स्वामी बार-बार अपने को कर्स कर रहा था, 'क्यों आज गाड़ी बाहर निकाली? विश्वास कीजिए ग़लती मेरी नहीं थी- स्पीड इतनी तेज़ थी कि ब्रेक लगाते-लगाते एक्सीडेंट हो गया। मैं तो ग्रीन लाईट पर ही जा रहा था।'

हम जानते हैं ग़लती आपकी नहीं थी, यह उसका दुर्भाग्य था। आप दु:खी न हों।

जेब से चेकबुक निकाल पाँच हज़ार डॉलर का चेक लिख वृद्ध कार स्वामी ने पूछा था, यह मेरी ओर से इस युवक के लिए है......... किस नाम का चेक काटना होगा?

गौरव ने कहा था- 'हम सब व्यवस्था कर लेंगे, आप चिन्ता न करें। हम उसके मित्र हैं।'

'लेकिन यह मेरा दायित्व हैं। कृपया इसे अस्वीकार कर मेरी आत्मा का अपराध-बोध और न बढ़ाइए। मेरी विनती है यह स्वीकार कर लीजिए।' वृद्ध अत्यधिक दयनीय हो उठे थे।

'अगर आपको इससे शान्ति मिलेगी तो हम ये चेक उसके पिता के पास भेज देंगे। गौरव ने काँपते हाथों से चेक थाम लिया था।

'आज सुबह नीरज के नश्वर शरीर के साथ उसके पिता को सहानुभूति का पत्र भेजते तीनों रो पड़े थे। पत्र में जोड़ दिया गया था,-नीरज के कार्यालय के समस्त अधिकारी एवं कर्मचारी शोक-संतप्त परिवार के दु:ख में भागीदार हैं। नीरज जैसे कुशल अधिकारी के न रहने से कार्यालय की क्षतिपूर्ति कठिन है। साथ में नीरज की नौकरी का शेष वेतन चेक-रूप में भेजा जा रहा है। गॉड ब्लेस हिज सोल!'

तीनों के बैंक अकाउंट में अब कुछ भी शेष नहीं रह गया था। आपर्टमेंट में सन्नाटा गहराता जा रहा था।

उस सीलन-भरे स्टोर की ओर ताकने का भी साहस खो, वे सामने मेपल से झरते बर्फ के आँसुओं पर दृष्टि निबद्ध किए स्तब्ध बैठे थे।

***

गहरे तक गड़ा कुछ

डॉ. रमाकांत शर्मा

डॉ. रमाकांत शर्मा के तीन कहानी संग्रह - 'नया लिहाफ', 'अचानक कुछ नहीं होता', 'भीतर दबा सच' तथा अनूदित कहानी संग्रह 'सूरत का कॉफी हाउस' और व्यंग्य संग्रह 'कबूतर और कौए' प्रकाशित हो चुके हैं। मुंबई रेडियो से उनकी कहानियाँ नियमित रूप से प्रसारित होती रही हैं। महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी से सम्मानित डॉ. शर्मा की कई कहानियाँ अखिल भारतीय स्तर पर पुरस्कृत हुई हैं, जिनमें कमलेश्वर स्मृति कहानी प्रतियोगिता शामिल है। यू.के. कथा कासा कहानी प्रतियोगिता में उन्हें प्रथम स्थान मिला है। बैंकिंग और उससे संबद्ध विषयों पर उनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। ''कार्ड बैंकिंग'' को महामहिम राष्ट्रपति जी के हाथों पुरस्कृत किया गया है। उनकी पुस्तक ''व्यावसायिक-संप्रेषण'' सीएआइआइबी जैसे प्रोफेशनल इंस्टिट्यूट में पाठ्य-सामग्री के रूप में शामिल की गई है।

संप्रति भारतीय रिज़र्व बैंक से जनरल मैनेजर के रूप में सेवानिवृत्ति के बाद पढ़ने-पढ़ाने और स्वतंत्र लेखन कार्य में जुटे हैं।

संपर्क: डॉ. रमाकांत शर्मा, 402 श्रीराम निवास, टट्टा निवासी हाउसिंग सोसायटी, पेस्तम सागर रोड नं. 3, चेम्बूर, मुंबई -89

ईमेल : rks.mun@gmail.com

मोबाइल: 09833443274

मुझे सुबह-सुबह घूमने की आदत है। मेरी नज़रों के सामने नारंगी रंग का सूरज पहाड़ियों के पीछे से धीरे-धीरे बाहर आ रहा था। कुछ पक्षी पहाड़ी की तरफ तेज़ी से उड़े जा रहे थे, मानों उस बड़ी नारंगी को अपनी चोंच में दबा कर ही दम लेंगे। उस समय मेरा मन और मस्तिष्क रूहानी शांति से भरा था। मैं सबकुछ भूल कर सुबह की उस ताज़गी का आनंद लेता हुआ पेड़ों के बीच बनी उस पगडंडी पर बढ़ा चला जा रहा था जिसके छोर पर वह मंदिर था, जहाँ पहुँच कर मैं थोड़ी देर बैठता था, और फिर उसी आनंद में भीगा वापस लौट आता था।

थोड़ी देर में ही मुझे मंदिर दिखाई देने लगा। इतनी सुबह वहाँ कोई नहीं होता था। सिर्फ मैं और मेरी तन्हाई। सच, कुछ देर के लिए अपने-आप में डूबना कितना अच्छा लगता है। अभी मैं कुछ कदम और चला होऊँगा कि चौंक कर रुक गया। मंदिर की सीढ़ियों पर जहाँ मैं जाकर बैठा करता था, वहाँ कोई बैठा हुआ था। अपनी जगह बैठे उस आदमी को देख कर मुझे अच्छा नहीं लगा। मेरे और मेरी तन्हाई के बीच यह कौन उग आया था? यह सोचते हुए मैं तेज़-तेज़ कदम उठाता हुआ वहाँ शीघ्र ही जा पहुँचा।

मुझे वहाँ देखकर वह भी चौंक गया। उसने शायद कल्पना भी नहीं की होगी कि इस समय वहाँ कोई आ सकता है। वह हड़बड़ा कर उठ खड़ा हुआ। उसका चेहरा मुझे कुछ जाना-पहचाना लग रहा था। पर, कहाँ देखा है यह याद नहीं आ रहा था। उसे बैठने का इशारा कर मैं भी पास वाली सीढ़ी पर बैठ गया। वह भी कुछ झिझकते हुए फिर से वहीं बैठ गया। हम दोनों ही शांत बैठे थे। उसने अपनी आँखें मूँद ली थीं और मेरी उपस्थिति से बेखबर अपने-आप में कहीं खो गया था।

अचानक मुझे याद आया - अरे, यह तो वही लड़का है जो कुछ ही दिन पहले हमारे हॉस्टल में आया है। मैंने उसे मैस में अकेले बैठ कर खाना खाते देखा है। शायद अभी तक उसका कोई मित्र नहीं बना था। इस ख़याल के साथ ही मैंने उसकी बंद आँखों को लक्ष्य करके कहा - ''आप रामदास होस्टल में रहने के लिए हाल ही में आए हो ना?''

उसने आँखें खोल कर मुझे देखा, पर कोई जवाब नहीं दिया।

''मैं भी उसी हॉस्टल में रहता हूँ, वहाँ देखा है मैंने आपको'' - मैंने अपनी आवाज़ को यथासंभव सहज बनाते हुए कहा।

जवाब में उसने सिर्फ गर्दन हिलाई और मुँह दूसरी तरफ करके बैठ गया।

मुझे उसका व्यवहार थोड़ा अजीब लगा। फिर भी मैंने कहना जारी रखा - ''आपने इस वीराने में यह जगह कैसे ढूँढ़ ली। यहाँ शायद ही कोई आता है, इस समय तो यहाँ कोई नहीं होता।'

इस बार वह उठ कर खड़ा हो गया। उसने नज़रें चुराते हुए कहा - ''यूँ ही घूमते-घामते यहाँ निकल आया, घने जंगल में पहाड़ियों के बीच यह मंदिर देखा तो बैठ गया। यहाँ की शांति मन में उतरने लगी तो अच्छा लगा, बस।'

''अरे, तुम तो बोलते भी हो।'' मैंने हँसते हुए कहा।

''चुप रहना पसंद है, मुझे'' - उसने एक उड़ती सी दृष्टि मुझ पर डाली। उन नज़रों में खालीपन और बेचैनी दोनों एक साथ देख कर मैं हैरानी से भर उठा। मेरा परिहास गायब हो गया और मुँह से कोई बोल नहीं निकल पाया। जब तक मैं सँभलता, वह काफी दूर निकल

चुका था।

कैसा आदमी है यह! मैंने मन ही मन सोचा। फिर सोचा मुझे क्या, हर तरह के आदमी होते हैं दुनिया में। मैंने उसे अपने दिमाग से हटाने की काफी कोशिश की, पर उसकी शक्ल और अजीब से व्यवहार ने मन की और उस शांत जगह की सहजता छीन ली थी। मुझसे ज़्यादा देर नहीं बैठा गया और मैं वहाँ से वापस हॉस्टल की ओर चल दिया।

ऑफिस में अपने काम के बीच मैं उसे बिलकुल भूल चुका था, पर हॉस्टल में आने के बाद अनजाने में मेरी आँखें उसे ढूँढ़ने लगीं। वह कहीं नज़र नहीं आया। मैं क्यों उसके बारे में सोच रहा था। मैंने सिर को झटका दिया और अपने काम में लग गया।

दूसरे दिन सुबह घूमने निकलते समय उसकी शक्ल फिर आँखों के सामने उभर आई। उसकी आँखों का वह खालीपन और बेचैनी रह-रह कर आँखों के सामने नाचने लगते। मुझे पक्का विश्वास था, आज भी वह वहाँ बैठा मिलेगा। उस जगह का आकर्षण ही ऐसा था। लेकिन, मंदिर की सीढ़ियाँ दूर से ही खाली नज़र आईं तो मन एक खालीपन से भर गया। मुझे अपने-आप से ही परेशानी होने लगी, मैं खामख़्वाह उस अजनबी के बारे में क्यों सोचे जा रहा था!

उस दिन वह मुझे मैस में फिर नज़र आ गया। सबसे कोने वाली मेज़ पर सिर झुकाए खाना खा रहा था। मैं भी अपनी प्लेट लेकर उसी मेज़ पर जाकर बैठ गया। उसने एक बार नज़र उठा कर देखा और फिर खाना खाने में लग गया। वह जिस तरह मुझे नज़रअंदाज़ कर रहा था, उससे मुझे खासी कोफ्त हो रही थी। फिर भी, मैंने पूछ लिया-

''आपने सुबह वहाँ मंदिर में आना बंद कर दिया है?''

उसने कोई जवाब नहीं दिया और खाना खाता रहा।

मैंने कहा - ''आपने जवाब नहीं दिया।''

''क्यों, आपने मेरा इंतज़ार किया था क्या वहाँ?'' - उसने रुखाई से कहा।

''हाँ किया था'' - मैंने कहा।

''क्यों? आप अपने काम से काम क्यों नहीं रखते?''

''तुम सही कह रहे हो, मुझे अपने काम से काम रखना चाहिए। पर, उस दिन वहाँ तुम्हें देख कर ऐसा लगा, कोई है जो मेरी तरह प्रकृति से प्रेम करता है और शांति खोजने और उसे अपने भीतर उतारने के लिए उस वीराने तक पहुँच सकता है।''

इस बार उसने सिर उठा कर मुझे देखा। मैंने संवाद के उस पतले धागे को पकड़ते हुए कहा था - ''मेरा नाम हरिप्रसाद है, मैं यहाँ एक मल्टीनेशनल कंपनी में अकाउंटेंट का काम करता हूँ, और आप?''

मेरी आशा के विपरीत उसने जवाब दिया था - ''अमर, अमर नाम है मेरा। मैं हाल ही में यहाँ एक प्राइवेट कंपनी में नौकरी करने आया हूँ।''

मैं उससे और कुछ पूछता, उससे पहले ही वह अपनी प्लेट उठा कर चला गया। उसका खाना खत्म हो चुका था।

दूसरे दिन सुबह की सैर करने नहीं जा पाया। रात को जाड़ा लग कर बुखार आ गया था। अगले दिन बुखार तो उतर गया, पर डॉक्टर की स्पष्ट हिदायत थी कि मैं हॉस्टल से बाहर न निकलूँ और कम से कम दो दिन तक सिर्फ आराम करूँ। पता नहीं कौन सा बुखार था, एक दिन के बुखार ने ही पूरा शरीर तोड़ कर रख दिया था। बहुत ज़्यादा कमज़ोरी महसूस हो रही थी। हॉस्टल के मैनेजर ने दोनों वक्त कमरे में ही खिचड़ी पहुँचाने का प्रबंध कर दिया था, इसलिए मैस में भी नहीं जा पाया।

तबीयत ठीक हुई तो अपना रूटीन फिर से शुरू करते हुए मैं सुबह सैर के लिए निकल पड़ा। इस समय मैं कुछ भी नहीं सोच रहा था, बस पहले की तरह सुबह के उस मनमोहक वातावरण का लुत्फ उठाता चला जा रहा था। मंदिर दूर से नज़र आने लगा था। मेरी आशा के विपरीत अमर वहाँ बैठा दिखाई दे रहा था। सच कहूँ तो उसे वहाँ देखकर मुझे बेहद आश्चर्य हुआ। मुझे लगा था वह रूखा आदमी कम से कम उस समय तो वहाँ नहीं आएगा जिस समय उसे मेरे वहाँ होने का शतप्रतिशत अंदाज़ा रहा होगा। वहाँ पहुँच कर मैंने ही बात शुरू की - ''कैसे हो अमर? यह जगह ही इतनी सुकूनभरी है कि एक बार कोई यहाँ आ जाए तो फिर बार-बार उसका यहाँ आने को मन करेगा ही।''

उसने मेरी बात पर ध्यान दिए बिना कहा - ''आप दो-तीन दिन से कहीं बाहर थे क्या, मैस में भी दिखाई नहीं दिए।''

''बाहर-वाहर कहीं नहीं गया था, बुखार में पड़ा था।''

''ओह, तभी आप यहाँ भी नहीं आए और मैस में भी दिखाई नहीं दिए। अब तबीयत कैसी है?''

''बस, तबीयत तो ठीक ही है। आप जैसे मित्र ने हाल-चाल पूछ लिया तो और बेहतर हो गई।''

''देखिए न तो मैं किसी का मित्र हूँ और न ही कोई मेरा मित्र है। मानवता के नाते मैंने पूछ लिया बस।'' यह कह कर वह उठ खड़ा हुआ और जब तक मैं कुछ समझ पाऊँ या कह पाऊँ वह तेज़-तेज़ कदम उठाता वहाँ से चला गया।

उसका व्यवहार कुछ समझ में नहीं आ रहा था, मैं बैठा सोचता रहा ऐसा क्या कह दिया था मैंने। लगता है, इस आदमी के दिमाग का कोई तार अपनी जगह से हिल गया है। खैर, मुझे क्या लेना-देना इससे। अब मैं उसके बारे में कुछ भी नहीं सोचूँगा और उस सिरफिरे से दूर ही रहूँगा। इस निश्चय के बाद एक लंबी साँस छोड़ते हुए मैं भी वहाँ से उठ गया।

उसके बाद वह मंदिर में दिखाई नहीं दिया। कई बार हॉस्टल में आते-जाते वह नज़र भी आया तो मैं उससे कन्नी काट कर निकल गया।

उस दिन मैं मंदिर की सीढ़ी पर बैठा प्रकृति के उस अनुपम उपहार का आनंद ले रहा था। मन और मस्तिष्क दोनों ही तृप्ति का अनुभव कर रहे थे। तभी वह उन हरे-भरे वृक्षों के बीच पगडंडी से आता दिखाई दिया। मैं जिस आनंद की अनुभूति कर रहा था, उसमें खलल पड़ने और पूरा दिन बिगड़ जाने के ख़याल ने मुझे सतर्क कर दिया और उसके वहाँ पहुँचने से पहले ही मैं वहाँ से निकल जाने के लिए उद्यत हो उठा।

वह चुपचाप आकर बैठ गया। मैंने जानबूझ कर न तो उससे नज़रें मिलाईं और न ही उससे कोई बात की। कुछ क्षण बाद ही मैं अपनी जगह से उठ कर चल दिया। अभी कुछ ही कदम चला होऊँगा कि पीछे से आती कुछ अजीब सी आवाज़ ने मुझे मुड़ कर देखने के लिए मजबूर कर दिया।

वह दोनों हथेलियों के बीच अपना सिर छुपाए हिचकियाँ भर-भर कर रो रहा था। मेरे उठते कदम वहीं रुक गए और न जाने कब मैं उसके पास पहुँच कर उसका सिर और पीठ सहलाने लगा। मैं उससे पूछ रहा था – ''क्या हुआ? रो क्यों रहे हो तुम?'' पर उसकी हिचकियाँ बंद होने के बजाय और बढ़ती गईं। मैंने कंधे से लटके बैग से पानी की बोतल निकाल कर उसके मुँह से लगा दी। पानी पीने के बजाय उसने मुझे दोनों हाथों से कस कर पकड़ लिया और मेरे झुके कंधों पर अपना सिर टिका कर और भी ज़ोर से रोने लगा। मैंने जी भर कर उसे रोने दिया। धीरे-धीरे वह कुछ संयत हुआ तो बहते आँसुओं के बीच बोला – ''माफ करना, पता नहीं आज क्या हो गया, मुझे। आज वर्षों बाद इतना खुल कर रोया हूँ। इन आँसुओं ने आज बाँध तोड़ ही दिया। मैं खुद को बहुत शर्मिंदा महसूस कर रहा हूँ, हरिप्रसाद जी।''

''नहीं, नहीं ऐसा मत सोचो अमर। तुम उम्र में मुझसे काफी छोटे हो। इसीलिए कब ''आप'' से ''तुम'' पर आ गया पता ही नहीं चला। सच कहूँ, रोने से मन हल्का हो जाता है। मैं इस बात को समझ सकता हूँ कि तुम्हारी चुप्पी, व्यवहार में रूखापन और ओढ़ा हुआ अकेलापन अकारण तो नहीं हो सकता। कोई न कोई कारण तो है ही, इस सबके पीछे। अगर तुम उचित समझो तो उस बोझ को अपने सीने से उतार सकते हो। कह डालो वह सब कुछ जिसने तुम्हारी ज़िन्दगी को अजाब बना रखा है।''

वह चुपचाप सुनता रहा और अपनी आस्तीन की बाँहों से आँखें पोंछता रहा। वह कुछ कहना चाह रहा था, पर उसके होंठ बंद थे। मैंने उसे सहज बनाने के लिए कहा – ''कोई बात नहीं, अमर, मैं समझ सकता हूँ, लगभग अनजान व्यक्ति के सामने अपना हृदय खोलना आसान नहीं होता। जब तुम्हें लगे कि तुम मुझे बता कर अपने मन का बोझ हल्का कर सकते हो, तब देखेंगे।''

उसने बहते आँसुओं को हथेली में भरते हुए कहा – ''पता नहीं आप अनजान हैं या नहीं। मुझे अच्छी तरह मालूम है, आपने यहाँ बैठकर मेरा इंतज़ार किया है और मैंने आपका। फिर जो बात मेरे भीतर कहीं गहरे तक गड़ी है, उसे मैं शायद कभी किसी अपने को बता भी नहीं पाऊँगा। मैं सचमुच अंदर ही अंदर घुट रहा हूँ। कब तक बचता रहूँगा खुद से। मैं आपको बताऊँगा सब कुछ।''

''देखो, अमर अपने मन को शांत कर लो। कल मुझे शांत मन से सब बताना।''

''नहीं हरिप्रसाद जी, जिस बात को मैं सालों से किसी को नहीं बता पाया, आज उसे कह कर मुक्त होना चाहता हूँ। आप मुझे, मेरे परिवार को और मेरी बीती ज़िन्दगी को नहीं जानते, इसीलिए शायद मैं आपके सामने अपना हृदय खोल सकता हूँ। अगर आज नहीं कह पाया तो फिर कभी किसी से नहीं कह पाऊँगा और ऐसे ही ज़िन्दगी भर तड़पता-कलपता रहूँगा। आप सुनना तो चाहेंगे ना?''

''हाँ, जो कुछ शूल की तरह तुम्हारे भीतर गड़ा है, उसे उखाड़ डालो।''

''वह तो शायद ज़िन्दगी भर टीस देता रहेगा, उसे छोड़िए। हाँ, आपको बता कर मन का भारीपन कुछ देर के लिए ही सही, शायद कम हो जाए। मैं खुद उसे मन ही मन दोहराते हुए बुरी तरह से थक चुका हूँ। बस, एक रिक्वेस्ट है, कोई प्रश्न ना करना मुझसे। मेरे पास किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं है।''

मैं चुप रहा तो उसने कहना शुरू किया – ''मेरे बाबूजी जब भगवान् को प्यारे हुए उस समय मेरी उम्र चौदह साल की थी। गाँव में हमारा एक छोटा सा घर था और पाँच बीघा ज़मीन थी। माँ बहुत पढ़ी-लिखी तो नहीं थी, पर समझदार बहुत थी। उसने खुद खेती सँभाल ली थी और घर चलाने के साथ-साथ मुझे स्कूल भेजना जारी रखा था। मेरे दूर के एक चाचा गाँव में ही रहते थे। वे हमारा हालचाल पूछने घर चले आते। खेत के काम में माँ की मदद भी कर देते।

मैं गाँव से करीब दस मील दूर कस्बे के स्कूल में पढ़ने जाता था। गाँव के दो-तीन और बच्चे भी साथ होते। हम साइकिल से जाते और रास्ते में ढ़ेर सारी बातें करते जाते। एक दिन स्कूल से लौटते समय रास्ते के कुएँ पर हम पानी पीने के लिए रुके तो वहाँ बैठे एक आदमी ने अपने साथ बैठे आदमी को कोहनी मारते हुए कहा – ''देख, यह तो उसी शांति का बेटा है।''

उसके साथ वाले आदमी ने हँसते हुए कहा – ''हाँ, वही है। बाप जवान-जहान बीबी को छोड़कर भगवान् के पास चला गया तो बीबी क्या करे। उसे भी तो जवानी काटनी है।''

वे माँ के बारे में जो कुछ कह रहे थे, वह मुझे पूरी तरह समझ में तो नहीं आया था, पर मुझे बहुत बुरा लगा था। मैं उनसे उलझ गया था – ''तुम लोग मेरी माँ के बारे में क्या कह रहे हो, साफ-साफ कहो ना।'' वे दोनों ठठा कर हँस पड़े थे – ''जा अपनी माँ और उस चाचा से जाकर पूछ।''

मैं रुआँसा हो आया था और तेज़-तेज़ साइकिल चला कर जल्दी घर पहुँच गया था।

दरवाज़ा माँ ने खोला। दालान में पड़ी खाट पर बैठे चाचा को देख कर मेरी भौंहे तन गईं। चाचा ने मुझे देखते ही कहा – ''आओ बेटा आओ, कैसी पढ़ाई चल रही है, तुम्हारी?''

''तुमसे मतलब? तुम जब देखो तब हमारे घर चले आते हो, और कोई काम नहीं है तुम्हारे पास?''

चाचा के मुँह से कोई बोल नहीं निकला था। पर, माँ ने कहा था – ''ऐसे बात करते हैं बड़ों से? स्कूल से यही तमीज़ सीख कर आता है?''

''आपको पता है माँ। लोग आपको और चाचा को लेकर कैसी-कैसी बातें करते हैं। सुना भी नहीं जाता मुझसे?''

माँ एकदम सन्न रह गई थी। चाचा के चेहरे पर भी बदहवासी साफ उभर आई थी। वे अपना अंगोछा कंधे पर डालते हुए उठ खड़े हुए और घर से बाहर निकल गए थे।

उनके जाने के बाद माँ मुझसे कुछ नहीं बोली थी। कुछ देर में उसने खाना लाकर मेरे सामने रख दिया था। पर, मेरी भूख तो मर ही गई थी। मैं अपने कमरे में जाकर खाट पर उल्टा लेट गया था। थोड़ी देर बाद माँ वहाँ आई थी और बोली थी – ''लोग कुछ भी कहेंगे तो तू मान लेगा?''

''फिर तुम्हीं बताओ, चाचा यहाँ क्यों आते हैं इतना। पहले तो सिर्फ त्योहारों पर आते थे।''

माँ शून्य में देखते हुए काफी देर तक चुपचाप वहीं बैठी रही और फिर उठ कर चली गई थी।

उस दिन के बाद से चाचा ने घर में आना कम कर दिया। पर, मैं माँ से उखड़ा-उखड़ा

रहता। उसने कुछ दिन मुझे समझाने की कोशिश की, फिर जब देखा कि मैं कुछ भी सुनने के लिए तैयार नहीं हूँ तो वह भी चुप रहने लगी। हमारे बीच संवाद सिर्फ काम की बातें करने तक ही सीमित रह गया था।

एक दिन जब स्कूल से घर लौटा तो देखा घर का दरवाज़ा थोड़ा सा खुला था। मैं अंदर जाने ही लगा था कि तभी माँ की आवाज़ मेरे कानों में पड़ी। वह कह रही थी – ''मैं कब कहती हूँ कि मुझे किसी सहारे की ज़रूरत नहीं है। उनके जाने के बाद अगर मैं किसी पर भरोसा कर सकती हूँ तो वो तुम हो। तुम ही हो जो मेरी मदद के लिए हर समय खड़े हो जाते हो। पर, मैं विधवा हूँ, कैसे शादी कर सकती हूँ। गाँव के लोग जान ले लेंगे मेरी?''

''कह तो तुम सही रही हो। पर, इतनी बड़ी ज़िन्दगी पड़ी है सामने। अकेलापन क्या होता है, भवानी की मौत के बाद मैं अच्छी तरह से समझ चुका हूँ। मैं पंचायत में यह मामला उठाऊँगा और उनसे हाथ जोड़कर और नाक रगड़ कर कहूँगा कि वे हमारी शादी को मंजूरी दे दें। कोई रास्ता तो निकलेगा ही। नहीं तो कहीं और चल कर रह लेंगे।''

तो यह आदमी मेरी माँ को अपने साथ भगा ले जाने की तैयारी कर रहा है। मुझसे आगे नहीं सुना गया और गुस्से में लात मार कर मैंने भड़ाक से पूरा दरवाज़ा खोल दिया।

आवाज़ सुनते ही वे दोनों हड़बड़ा कर दरवाज़े की तरफ देखने लगे। मुझे वहाँ खड़े देख कर घबराई हुई माँ, मेरे पास आई और बोली – ''तू कब आया अमर?''

मैंने चिल्ला कर कहा था – ''सब सुन लिया है मैंने, तुम चाचा के साथ गाँव से भागने वाली हो? लोग जो कुछ तुम्हारे बारे में कहते हैं, सब सच है।''

''तुम ग़लत समझ रहे हो बेटा ......'' – चाचा ने कहा था।

''तुम चुप रहो। बड़े गंदे हो तुम। चले जाओ यहाँ से''– मैंने उन्हें घूरते हुए कहा था।

माँ ने चाचा को जाने का इशारा किया तो वे कुछ क्षण अनिश्चय की स्थिति में खड़े रहने के बाद वहाँ से चले गए।

मैं गुस्से में बिना खाए-पिए ही सोने चला गया। माँ खाना लेकर आई और मुझे उठाने लगी तो मैं बिफर उठा था – ''अपने गंदे हाथ मत लगा, तू बहुत गंदी है।''

माँ की आँखों से आँसू निकल कर मेरे चेहरे पर गिरने लगे तो मैं उठ कर बैठ गया। वे सुबकते हुए कह रही थी – ''जिन लोगों के मन में गंदगी भरी है, वही लोग गंदगी उछालते हैं। तू अभी छोटा है अमर, तेरे मन में उन्होंने ज़हर भर दिया है। ये वही लोग हैं जो अकेली औरत का जीना मुहाल कर देते हैं और उसकी मजबूरी का दूर खड़े मज़ा लेते हैं। फिर विधवा होना तो एक बड़ी सज़ा है, जैसे सारा दोष उसी का हो। बहुत कम लोग तेरे चाचा जैसे होते हैं अमर, जो तमाशबीन नहीं होते, हर मदद को तैयार खड़े रहते हैं। मैं उन पर विश्वास कर सकती हूँ। वे हमारा कोई फायदा उठाना नहीं चाहते, घर बसाना चाहते हैं, मेरे साथ। वो गंदे नहीं हैं, बेटा। हमारी भलाई चाहते हैं। उन्होंने कहा है, वे पंचायत से बात करेंगे।''

''उन्होंने तो यह भी कहा है कि वे तुझे साथ लेकर कहीं और चले जाएँगे, नहीं कहा क्या? मुझे पता है, वो तुझे अपने साथ ले जाएँगे और मैं अकेला रह जाऊँगा।''

''कहने से क्या होता है, बेटा। जोश में आदमी बहुत कुछ कह जाता है, पर ....। फिर तूने कैसे सोच लिया कि तुझे अकेला छोड़ देंगे?''

''मैं कुछ नहीं जानता। लोग तुम दोनों के बारे में क्या-क्या बोलते हैं। छि: देखना मैं उस चाचा को छोड़ूँगा नहीं।''

माँ मुझे प्यार से फिर डाँट कर समझाती रही, पर मेरी समझ में कुछ नहीं आया। गाँव वालों की बातें मुझे सही लग रही थीं। चाचा मेरे बाबूजी की जगह लेने और मुझसे मेरी माँ छीनने में ही तो लगे थे। मन इस ख्याल से तड़प कर रह जाता कि माँ भी इसमें बराबर की भागीदार थी।

मुझे बाबूजी की बहुत याद आने लगी थी। अगर वे होते तो ऐसा कुछ नहीं हुआ होता। चाचा के लिए मेरे मन में नफरत दिनोंदिन बढ़ती ही चली जा रही थी।

गर्मियों की रात थी, तमाम कोशिशों के बाद भी नींद नहीं आ रही थी। मन में वही सब बातें घूम रही थीं। मन की शांति के लिए मैं बाहर घूमने निकल पड़ा। घूमते-घूमते कब चाचा के घर की तरफ चला गया, पता ही नहीं चला॥ चाचा घर के बाहर खाट पर गहरी नींद सोए थे। उन्हें देख कर मेरे सिर पर एक जुनून सवार हो गया और मैंने एक पत्थर उठा कर उनके सिर पर दे मारा। रात की उस निस्तब्धता में उनकी चीखें दूर-दूर तक गूँज गईं। उस तरफ लोगों के चिल्ला कर दौड़ने की आवाज़े आने लगीं। कोई वहाँ पहुँचता उससे पहले ही मैं खेतों-खेतों दौड़ता हुआ घर जा पहुँचा।

माँ दरवाज़े पर ही खड़ी थी। मुझे देखते ही बोली थी – ''कहाँ से आ रहा है, इतनी रात को?''

मेरा पूरा शरीर काँप रहा था। बड़ी मुश्किल से कह पाया था – ''बाहर कुछ दौड़ने-भागने की आवाज़े आ रही थीं। बस, देखने निकल पड़ा''.

''कुछ पता चला, क्या हुआ है?''

''नहीं, कोई चोर-वोर होगा, लोग उसे पकड़ने भाग रहे होंगे''।

माँ ने मुझे जल्दी से घर के भीतर खींच लिया और दरवाज़े की कुंडी चढ़ाते हुए कहा – ''रात-विरात में अकेले घर से बाहर निकलने की कोई ज़रूरत नहीं है, समझे। चल सो जाकर।''

मैं खाट पर पड़ा थर-थर काँप रहा था। यह क्या कर दिया था मैंने? चाचा मर तो नहीं गए? मुझे ज़रूर फाँसी होगी। यही सोचता पूरी रात सो नहीं पाया।

सुबह तक यह बात सारे गाँव में फैल गई कि किसी ने सोते हुए मतिराम (यही नाम था उनका) के सिर में बड़ा पत्थर मार दिया था। पत्थर मारने वाला भाग निकला था। बेहोशी की हालत में पुलिस रात में ही उन्हें कस्बे के अस्पताल ले गई थी और उन्हें आइसीयू में भर्ती करा दिया गया था।

माँ को जब यह पता चला तो वह सीधे मेरे पास आई। मैं खाट पर सिर झुकाए बैठा था। उसने सीधा सवाल किया – ''बता तू रात में कहाँ गया था?''

मैं कुछ बोल नहीं पाया था, मेरे माथे पर पसीने की बूँदें थीं और शरीर रह-रह कर काँप रहा था। मेरी हालत देख कर उन्हें सब समझ में आ गया था। मेरे गाल पर उन्होंने एक ज़ोरदार तमाचा जड़ा था और फिर खुद सुबक-सुबक कर रोने लगी थीं।

करीब दस दिन बाद चाचा को हॉस्पिटल से घर भेज दिया गया था। सिर में चोट इतनी गहरी लगी थी कि उसका असर

उनके दिमाग और आँखों तक जा पहुँचा था। उन्हें कुछ भी याद नहीं था और वे किसी को अच्छी तरह से पहचान भी नहीं पा रहे थे। यहाँ तक कि सारी लाज-शरम छोड़कर उन्हें देखने पहुँची माँ को भी वे नहीं पहचान पाए थे।

उन्हें देखने वाला उनके घर में कोई नहीं था। पंचायत ने ही उनकी देखभाल के लिए पूरे समय के लिए एक बुढ़िया को रख दिया था। बेरोज़गार और दाने-दाने को मोहताज बुढ़िया खुशी से इसके लिए तैयार हो गई थी।

मैं अंदर से बुरी तरह डरा हुआ था। घर में गुमसुम पड़ा रहता या फिर निरुद्देश्य ही इधर-उधर भटकता रहता। मेरी कोशिश रहती कि किसी से सामना न हो। ऐसा लगता जैसे सभी को उस वारदात में मेरा हाथ होने का पता था और वे खा जाने वाली नज़रों से मुझे घूर रहे थे। हर समय मेरे दिमाग में वही बात घूमती रहती और मैं सहमा-सहमा बना रहता।

माँ सारे समय रोती रहती। हमारा पेट भरने के लिए कुछ ना कुछ बनाती और फिर सारे समय यूँ ही पड़ी रहती। हमारे बीच तो संवाद पहले ही नहीं था, अब तो लगभग खत्म ही हो गया था।

उस दिन पुलिस पूछताछ करती हमारे घर तक आ पहुँची। वह चाचा से माँ के संबंध के बारे में खोद-खोद कर पूछ रहे थे। मैं बेहद डरा हुआ था। यह तो अच्छा हुआ कि बच्चा समझ कर पुलिस ने मुझसे कोई सवाल नहीं किया।

उसके बाद माँ दूसरे दिन ही चकित कर देने वाले अंदाज़ में सक्रिय हो गई थी। उसने शहर में रह रहे एक रिश्तेदार की मदद से वहाँ के स्कूल में मेरे पढ़ने और हॉस्टल में रहने की व्यवस्था कर दी थी। मैं भी उस जगह और माहौल को छोड़कर जाने के लिए सहज ही तैयार हो गया था।

शहर आकर भी मैं सामान्य नहीं हो पाया था, पर बेहतर महसूस कर रहा था। पढ़ाई में मन लगाने की कोशिश करता या फिर किसी मंदिर या एकांत जगह जाकर बैठ जाता। मेरे अंदर जो कुछ बह रहा था, उसकी वजह से किसी को दोस्त बनाने और उसे अपने भीतर झाँकने की इजाज़त देने का तो कोई सवाल ही नहीं था।

करीब बीस दिन बाद हॉस्टल के वार्डन ने मुझे बुलाया और कहा कि तुम्हारे गाँव के सरपंच का फ़ोन आया था – तुम्हें तुरंत गाँव जाना होगा। मेरे बार-बार पूछने पर भी, उन्होंने यही कहा कि उन्हें कुछ पता नहीं है।

तमाम आशंकाएँ लिए मैं तुरंत ही गाँव के लिए निकल पड़ा। कहीं पुलिस को सब कुछ पता तो नहीं चल गया। डरता-सहमता जब मैं घर के अंदर दाखिल हुआ तो देखा, माँ हड्डियों का ढाँचा बनी खाट पर पड़ी थी। गाँव की कुछ औरतें उसके पास बैठी थीं। मैं खुद पर जब्त न कर सका और उसके पास बैठ कर फूट-फूट कर रोने लगा। माँ ने अपनी जर्द आँखें खोल कर एक बार मुझे देखा और फिर आँखें मूँद लीं।

उन्हीं औरतों से मालूम पड़ा कि कितने ही दिनों से माँ ने खाना-पीना बिलकुल छोड़ दिया था। सभी ने बहुत कोशिश की थी कि वे कुछ खा पी लें, पर पता नहीं किस बात पर उन्होंने यह कठोर व्रत ले लिया था। गाँव का डॉक्टर उन्हें देखने के लिए आता रहता था। उसी ने कहा था कि मुझे शहर से बुला लिया जाए क्योंकि माँ के बचने की उम्मीद नहीं थी। मैं स्तब्ध रह गया था। मैंने अपने हाथ से माँ को पानी पिलाने की कोशिश की तो उसने मेरा हाथ झटक दिया। मेरे भीतर कैसा-कैसा तो होने लगा था। मेरे गुनाह का ही तो वह प्रायश्चित कर रही थी।

मैं रात भर उसके सिरहाने बैठा रहा। सुबह होते-होते उसने सभी बंधनों से और हर पीड़ा से खुद को आज़ाद कर लिया।

मैं ही जानता हूँ वे चौदह-पन्द्रह दिन कैसे गुज़रे। शहर वापस लौटने से पहले सरपंच ने मुझे बुलाया और बताया कि माँ ने खेत और मकान दोनों बेच दिए थे और पैसा गाँव के बैंक में जमा कर दिया था। चूँकि मैं नामिनी हूँ, इसलिए कभी भी पैसा निकाल सकता हूँ।

आप सोच सकते हैं, हरिप्रसाद जी। मैं कौनसा और कितना बड़ा बोझ मन पर लिये जी रहा हूँ। जैसे-जैसे उम्र बढ़ी है, मन का यह बोझ कम होने की जगह और बढ़ता गया है। अब वह सब कुछ समझ में आ रहा है जो उस उम्र में मेरे लिए समझना और महसूसना संभव नहीं था। मात्र बत्तीस साल की मेरी माँ को जिस सहारे की ज़रूरत थी, उसमें समाज की रूढ़ियाँ तो रुकावट थी हीं, मुझे भी उसमें शामिल कर लिया गया था। काश, मैंने उन्हें समझा होता तो उस रुकावट को हटाने का कोई ना कोई रास्ता अवश्य निकल आता। चाचा की हालत और माँ की मौत के लिए और कोई नहीं, सिर्फ मैं ज़िम्मेदार हूँ। बिना अपना नाम सामने लाए चाचा के लिए हर माह कुछ पैसे भेजता हूँ, पर मन को शांति मिलने की जगह उसकी पीड़ा और बढ़ती जाती है।

कई बार सोचता हूँ, कसूर मेरा था या उन लोगों का जिन्होंने अकेली औरत का दर्द समझने की जगह उसे हिकारत की नज़र से देखने और मज़े लेने का साधन भर मान लिया था। चाचा और माँ के लिए मेरे मन में यह ज़हर किसने भरा था? बच्चों में सही सोच और अच्छे संस्कार पनपाने की ज़िम्मेदारी क्या समाज की नहीं है? क्या ऐसा नहीं हो सकता कि लोग समाज के इस अपने ही हिस्से की संवेदनाओं से खुद को जोड़ सकें और उनका जीवन सहज बनाने में भागीदार बनें।

बुढ़ापे में अपना जीवन-साथी खो देने वाले लोगों का अकेलापन दूर करने के लिए और नया साथी खोज देने के लिए शहर में अब कितनी ही संस्थाएँ काम करने लगी हैं। उम्र के अंतिम पड़ाव पर भी अकेलापन मिटाने और दु:ख-दर्द बाँटने वाले साथी और सहारे की आवश्यकता को महसूस किया जाने लगा है। फिर, जब जवानी में किसी ने असमय अपने जीवनसाथी को खो दिया हो, और पूरी उम्र सामने पड़ी हो, तब।

मैं अपने को निरुपाय पा रहा हूँ। आज सोचता हूँ, माँ एक औरत भी तो थी। उसकी ज़रूरतों और मजबूरियों को न तो समाज समझ रहा था और न ही मुझे समझने दे रहा था।

हरिप्रसाद जी, एक अजीब अहसास लिए ज़िन्दगी जी रहा हूँ। मन की यह तड़प, घुटन, घबराहट और मानसिक उलझन लेकर पता नहीं कब तक और कैसे जिऊँगा!''

अमर मेरी तरफ देखे बिना उठ कर चल दिया था। मेरे पास उसे सांत्वना देने के लिए कोई शब्द नहीं थे, मैं निस्तब्ध सा वहीं बैठा था।

* * *

तुरपाई

वीणा विज 'उदित'

लाहौर में जन्मी वीणा विज 'उदित' ने विभाजन के पश्चात मध्यप्रदेश की सोंधी मिट्टी की सुगंध में जीवन की ऊँच-नीच की शिक्षा पा कर पंजाब की धूप में चमक कर, पति के संग कश्मीर में रह कर शिकन और झुर्रियो को पनाह दी। तूलिका से कैनवस रंगकर भी भावाभिव्यक्ति करती रहती हैं। नृत्य-नाट्य में बचपन से ही गहन अभिरुचि रही। 1983 से दूर-दर्शन और आकाशवाणी जालंधर से जुड़ गईं। हिन्दी और पंजाबी के तकरीबन सौ नाटकों, धारावाहिकों व छह फिल्मों मे सन् 2000 तक अभिनय किया।

सन्नाटों के पहरेदार, कदम ज़िंदगी के (काव्य संग्रह), पिघलती शिला (कहानीसंग्रह) है। कहानियों व कविताओं के लिए देश-विदेश में ढेरो ईनाम। देश-विदेश में रहते हुए भी राष्ट्रीय एवं ई-पत्रिकाओं से जुड़ी रहती हैं। विदेशी व प्रवासी बच्चों को हिन्दी सिखाने एवं भारतीय संस्कृति से पहचान कराने में प्रयत्नशील रहती हैं। कई रचनाएँ अंग्रेज़ी एवं उर्दू मे अनूदित।

संपर्क: 469 -R, Model Town,
Jalandhar 144003
ईमेल: vij.veena@gmail.com
मोबाइल: 9464334114

सर्द झोंकों से बचने के लिए बदन पर चीड़ के पेड़ों की छाल लपेटे 'पाइन लाँज' पहलगाम से चंदनवाड़ी जाते हुए जो पहला पुल लिदर दरिया पर आता है, उसके दाईं ओर स्थित है। चारों ओर बिखरी हरियाली के विभिन्न शेड्स से भी चटकीला हर रंग है उसकी छतों का। डबल-स्टोरी बिल्डिंग -जिसके पाँच कमरे नीचे एक ही कतार में, और पाँच ही ऊपर हैं। लाँज के द्वार तक फैले घास के मैदान उत्तर की ओर जा तिकोन हो जाते हैं। पूर्व की ओर सीधे खड़े पहाड़ की तराई से होते हुए उत्तर में ये ढेरों अखरोट के पेड़ दामन में समेटे, ऊबड़-खाबड़ धरातल बनाते हुए शेषनाग झील से आती बर्फीली वेगवती धारा जो अबशार बनी पर्वतों से धरा पर उतर रही है, उस तक जाकर समाप्त हो जाती है -एक स्वर्गिक आभा और अनुपम सौन्दर्य का एहसास जगाते हुए। मध्य में लाँज से तकरीबन बीस कदमों की दूरी पर सेव के बड़े- बड़े पेड़ ; जो कि सेवों से लदे हुए हैं। उन पर झूले डले हुए हैं। बरबस ही राह चलतों का ध्यान उस ओर खिंचता है। सैलानीगण सेवों के साथ फोटो खिंचवाने का लोभ संवरण नहीं कर पाते हैं। अंतत: चौकीदार से पूछकर कई लोग भीतर आ फ़ोटो खिंचवाते, सेवों का स्वाद चखते वा उन पर पड़े झूलों पर झूल भी जाते हैं। उनके खिले चेहरे इस बात की गवाही देते हैं कि उनका कश्मीर आना अब सार्थक हो गया है। यही मेन रोड़ का आख़िरी बड़ा गेट और साथ ही लगता छोटा गेट है; जिससे वो आती -जाती थी, चौकीदार से पूछे बिना .....

इन्हीं सेव के पेड़ों से छनती आती धूप के नीचे पलंग डलवाकर कोई न कोई पुस्तक पढ़ना मेरी दिनचर्या में मौसम के अनुकूल शामिल है। हल्की सी मीठी थपकी देती बयार कभी -कभी मुझे नींद की आगोश में भी ले जाती है। कभी कोई पक्षी चोंच मारकर सेव गिराता है मुझ पर, तो चौंक कर उठकर बैठ जाती हूँ। तो कभी तेज़ हवा के झोंकों से पत्तों की सरसराहट, उनका नृत्य करना मुझे मुग्ध किए रहता है। कभी पहाड़ों की गोद में अठखेलियाँ करते बादल। लेकिन इधर कुछ दिनों से एक बकरवाल(गुज्जर) लड़की, गोद में नन्हा बच्चा उठाए चुपचाप चौकीदार से पूछे बिना छोटे गेट से भीतर आ उत्तर की ओर नदी की ढाल बने पत्थरों पर आकर बैठ जाती है। मैं पढ़ती या कुछ लिखती उसे कनखियों से देख लेती हूँ। कभी वो बच्चे को घुटनों पर बैठाकर खेलती, कभी अपनी छाती से लगा उसकी भूख मिटाती तो कभी दोनों वहीं घास पर लिपटकर कुछ घड़ी की झपकी ले लेते। मैं देखकर भी अनदेखा कर देती हूँ। लगता, वह चैन से कुछ घड़ियाँ अपने बच्चे के साथ जी रही है -यह उसका अधिकार है। शायद -एक नारी का दूसरी नारी के प्रति यह सहज भाव है !

उस दिन मैं Paulo Coelho की "The Alchemist" बड़ी तल्लीनता से पढ़ रही थी,

कि लगा मेरे करीब कोई है। नज़रें ऊपर उठाईं तो वही बकरवाल लड़की बच्चा उठाए कह रही थी: ''बीबी ! अज मैं खान नूँ कुज नईं लयाई, कुज खान नूँ दे दे। बड़ी पुक्ख लग्गी ए।'' देखती हूँ-एक पीला ज़र्द चेहरा मेरे सम्मुख है, जैसे उस चेहरे पर सदा से कोई पीड़ा अपना आधिपत्य जमाए हुए हो। उसे बैठने को कह मैंने नौकर से खाना मँगवाया। खाना लेकर वो वहीं पत्थरों पर चली गई। खाना खाकर वहीं पास बहते दरिया से बर्तन धोकर, मेरे पास पड़े मेज पर

रख कर ; वहीं मेरे पायताने ज़मीन पर बैठकर मुझे निहारने लग गई।

लगा, उसमें मुझसे बात करने की ललक उठी थी क्योंकि हमारे बीच प्रतिदिन न बात करते हुए भी शायद भीतर ही भीतर एक निस्पँद संवाद चल रहा था। जिससे एक अपनत्व बन गया था, हम दो अजनबियों के बीच। सब समझते हुए भी मैंने उसे अनदेखा करते हुए पढ़ने का उपक्रम किया।

''बीबी ! एँ जगह तेरी ए?''-मैंने 'हाँ' में सिर हिला दिया उसे बिन देखे ही। पुन: बोली: ''बच्चे नई ने?'' इस पर मैंने किताब से नज़रें हटा ही लीं, और जवाब दिया कि वे ब्याहे गए हैं। अपने-अपने घर हैं। यहाँ हम दोनों और ये सब नौकर हैं और पूछा, ''तूँ कहाँ से आई है?''

उसने हमारे पूर्व की तरफ पहाड़ी की ओर इशारा कर बताया कि वहाँ ऊपर उनका डेरा है। वे खाना-बदोश हैं, जो भेड़ - बकरियों को नई-ताज़ी घास खिलाने के लिए पहाड़ों पर घूमते रहते हैं। पीछे 'अख़नूर' से आए हैं। तभी मैने ग़ौर से पूर्व की झाड़ियों में पहाड़ के दामन में ढेर सारी काली-सफेद भेड़- बकरियाँ घास व नए पत्ते चरते देखीं।

इस पर वह झट बोली, ''इन्दी ही राखी कर रईयाँ। परों कोई इक बकरी ही खा गया। पता कि कोई जनावर सी कि मनुख? हाँ, बकरी दी टँगा दरया ते कुत्ते खाँदे सी, ओई दिखया।'' उसकी बात सुन मैं हैरान कि इस पहाड़न की धारणाएँ कितनी सचेत हैं। इसे भी जानवर और मनुष्य में एक जैसे गुण दिखे, तभी तो दोनों को एक ही तराज़ू के पलड़ों में तौल रही है। मैंने अफ़सोस जताया जो शायद उसे तसल्लीबख़्श लगा। इसपर वो एकदम से उठी, पीठ पर चुन्नी बाँध कर बच्चे को उसमें डालकर सामने की सीधी पहाड़ी पर टेढ़ी चढ़कर भेड़-बकरियों को ऊपर की ओर हाँककर, वापिस आ छोटे - गेट से बाहर चली गई। मुझे अपने ख़्यालों में उलझाकर.....

अगले दिन खाना खाकर किताब हाथ में ले मैं साथ लगते दरिया के बर्फीले पानी में पैर डालकर वहीं पड़े बड़े से पत्थर पर ओशो की पुस्तक को पढ़ने बैठी, तो कुछ देर में ही मेरे पैर ठंड से सुन्न हो गए। पैर पानी से बाहर निकाल मैं किताब बंद कर चट्टानों से टकरा कर चाँदी का रूप धरती जल की धाराओं को निहार रही थी कि लगा कोई मुझे देख रहा है। वही थी, कौतुहलता से भरी दृष्टि मुझ पर गड़ाए हुए। उसे देख मुस्कुराते हुए पत्थरों पर चढ़कर मैं इस पार आ, पत्थर पर बैठ गई। वह वहीं नीचे के पत्थर पर मेरे पास आ बैठी थी। सहज भाव से मैंने पूछा, ''नाम क्या है तेरा?''

बोली, ''शबनम''। (नाम मुझे अच्छा लगा)

''मर्द का क्या नाम है ? वो कहाँ है? वो क्यों नहीं आता ?''

बोली, ''नूरा! नूरा आसी न! हुणे ताँ दोए कोड़े लै के ड़ेढ मीने लई अमरनाथ गया ए। देहाड़ी दे दो हज़ार कमाई करसी। परों तो इस वरे ढेर यात्री आया ए। चंगी कमाई हो जासी।''

फिर घर में कौन-कौन हैं ? -मैने पूछा।

''इत्थे कर विच सौरा ए। देर-दराणी अख़नूर ने। ओत्थे ड़ंगराँ नूँ ते, नाल मक्की होर जमीन वेखदे ने।''

जो भी था, पर इस लड़की के पास से बाकि बकरवालों की तरह भेड़-बकरियों की बदबू नहीं आ रही थी, वह साफ - सुथरी थी। सो बात हो पा रही थी। लगा, पति की अनुपस्थिती में इसका वक्त यहाँ गुज़र रहा है-अच्छा ही है। मैं उठकर लाँन की ओर आ गई। वो भी सदा की तरह छोटे -गेट से बाहर ये गई कि वो गई।

एक दिन दोपहर के खाने में राजमा चावल बने तो उसका ख्याल आ गया। राजू को बोला कि उसके लिए भी रख देगा। आती ही होगी, खा लेगी। अब तो हर दिन मुझे उसका इंतज़ार रहता था। वो आई। उसने चाव से खाना खाया और बर्तन धोकर रख दिए। फिर मेरे पैरों के पास आकर वहीं ज़मीन पर बैठ गई।

''टँगाँ कुहट दयाँ बीबी ?''-बोली।

मैंने 'ना' कहते हुए झट से पैर ऊपर पलंग पर कर लिए। खाने के बदले में शायद वो कुछ करना चाह रही थी। जो मुझे गवारा नहीं था। प्रत्युत्तर में उसके होंठ खुले फिर बंद हो गए। शायद शब्द हलक तक आकर अटके जा रहे थे। उसके चेहरे पे आते-जाते भावों को पढ़ कर लगा जैसे उसके भीतर कोई अन्तर्द्वन्द्व चल रहा हो। मैंने पूछ ही लिया, ''कुछ कहना है क्या?''

सारे जिस्म का दर्द अपने चेहरे पे समेट वो आँखों की पोरों से झरने लगी। साथ ही सुबकियाँ लेते हुए मेरे घुटने कस कर पकड़ के वह फट पड़ी.....

''मेरा पल्ला ताँ फट के तार-तार हो गया ए बीबी ! हुण कौण करसी तुरपाई?''

मैं हैरान-परेशान हो उसका मुँह तक रही थी। उसके कंधे पकड़ उसे ठीक से बैठाया व पूछा, ''क्यों ?क्या हो गया है ऐसा कि तेरा आँचल फट कर तार-तार हो गया है, और तुझे तुरपाई की चिन्ता हो रही है ?'' साथ ही सोच रही थी कि कैसे मानूँ यह अनपढ़, गँवार है। कितनी सुन्दर व कटु अभिव्यक्ति है इसकी !

'बोल न शबनम-!'-मैंने फिर कहा। मेरे स्नेहपूर्ण आग्रह से अभिभूत हो वह पिघल उठी। मानों पैर की बवाई फूट रही हो और वह असह्य पीड़ा से छटपटा रही हो। बोली, ''मेरा मर्द घर नई ए, बीबी ! तैनूँ दसया सी न! ओदे पिच्छों मेरे सौरे ने मैंनूँ जबरदस्ती इस्तेमाल करना शुरू कर दित्ता ए। कैंदा-ओ कित्थे जावे? कर (घर) दी ही गल्ल ए तैनूँ कि फ़रक पैसी? तेरे नाल ते मरद ही होसी न, तूँ अक्खाँ नूटी रक्खीं। नूरे दे वापस आण ते मैं कदे तेरे कोल नई आवाँगा। तूँ जुबान बंद रक्खीं। बस चल्लड़ दे। -मैं की कराँ बीबी ?मेरा पल्ला ते फट गया ए न ! छोटी सी ताँ माँ करदी सी तुरपाई, हुण एँदी तुरपाई कौण करसी? दस्स न बीबी।!''

इतना कह वह छाती पर मुक्के मारकर विफरने लगी। उस की पीड़ा से तड़प मेरी भी आँखें सजल हो उठी। मेरी आलोड़ित होती संवेदना उसके दर्द की संवेदना से संपृक्त होने को आतुर हो उठी। उसे स्नेह से पकड़कर मैंने अपने पास बैठाया। मैंने

हथियार डाल दिए। क्या कहूँ-? क्या करूँ-? कैसी सलाह दूँ-? मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। एक ब्याहता अपना सर्वस्व अपने पति को ही मानती है, उसमें किसी और की गुँजाइश ही कहाँ होती है? फिर जो रिश्ते से आदर योग्य, भरोसे योग्य, रक्षक हो वही खेत की बाड़ बनकर खेत को ही खा गया हो तो किससे गिला कीजे? किसका भरोसा कीजे? मुझे लगा जैसे सम्पूर्ण नारी-वर्ग एक संवेदनशील

प्राणी न होते हुए एक निर्जीव-वस्तु है, जिसे ज़रूरत पड़ने पर कोई भी इस्तेमाल करे और फिर-छोड़ दे। ऐसे क्रूर सामाजिक यथार्थ के समक्ष हम हार जाते हैं। हमारे हाथ बँध जाते हैं। हम नकारे हो जाते हैं।

पुरुष-जाति के प्रति मेरा मन वितृष्णा से भर उठा। कई दम्भी पुरुष सारे नारी-वर्ग के लिए असहिष्णु बने रहते हैं। अपनी बेबसी भरी रातों का दर्द सँभाल वह अपने फटेहाल आँचल को मेरे पास लाकर 'तुरपाई' की गुहार लगा रही थी।

मैं उसका पीड़ा से मथित चेहरा पढ़ रही थी। औरत ना होकर जैसे वो एक उतरन बन गई थी। सोच रही थी- इंसान भूखा भेड़िया बन गया है, तभी तो अपनी भूख और हवस मिटाने को वो इतना नीचे गिर पाता है। मैं केवल शबनम का दर्द साँझा कर सकती थी क्योंकि वे अंजान लोग थे। मेरी असमर्थता वो भी समझ रही थी, तभी तो वो अचानक उठ खड़ी हुई, रोज़ की तरह। बच्चे को पीठ पर बाँध,अपनी भेड़-बकरियाँ हाँक फटाफट छोटे -गेट से बाहर चली गई, मानोंकुछ हुआ ही ना हो। बस, दिल हल्का कर लिया था उसने, एक नारी की पीड़ा को दूसरी नारी से साँझा करके। मेरी दृष्टि दूर तक उसका पीछा करती रही पर, वो फिर कभी वापिस नहीं आई। मैं हर दिन छोटे- गेट पर नज़र टिकाए उसकी राह तकती थी।

हाँ, कुछ दिनों बाद एक सजीला, गठीला गबरू बकरवाल उन्हीं भेड़-बकरियों को हाँकने छोटे -गेट से भीतर आया। मैं समझ गई यही मेरी शबनम (अपनी लगने लगी थी) का नूरा है। तभी मेरा उद्वेलित मन शान्त हो गया। लगा अब वक्त के साथ-साथ नूरा कर देगा उसकी 'तुरपाई'।

***

लघु कथा

ममता

डॉ. आर बी भण्डारकर

छोटा कस्बा। स्वच्छ आबोहवा। हमारा रहवास किराए के मकान में। यह मकान पक्का बना है। आस-पास किसानों के घर;अधिकाँश कच्चे। सभी के सामने कच्चे ओटले। हमारे वाले मकान के सामने ओटला तो था पर खुले बरांडे के रूप में। हमारे ओटले पर या कहें खुले बरांडे में प्रतिदिन सुबह-शाम बच्चे खेलते; शोर तो होता था पर मन रमता था।

सामने के कच्चे मकान के सामने नीम का मझौला पेड़। पेड़ पर प्रतिदिन सुबह और सायंकाल चिड़ियों का कलरब;कर्ण प्रिय,मनमोहक। किसानों की महिलाएँ अपने ओटलों पर प्रतिदिन अनाज सूखने डालती। पक्षियों को पर्याप्त भोजन मिल जाता। हमारी बैठक का दरवाज़ा बरांडे में खुलता था। दरवाज़े के ऊपर रौशनदान के रूप में सीमेंट की नक़्क़ाशीदार जाली लगी थी। जाली के आधार की किनारी पर चिड़ियों का एक जोड़ा रोज़ बैठता। गर्मियों में यह जोड़ा कुछ तिनके इकट्ठे करता और रौशनदान की जालियों से सटाकर आधार पर घोंसला बनाने का प्रयत्न करता पर जगह कम होने से घोंसला सही नहीं बन पाता था।इसी दशा में मादा चिड़िया अंडे देती,जो नीचे गिर कर फूट जाते। पिछले दो साल से मैं यही स्थिति देख रहा था। फूटे हुए अंडे देखकर हम लोग थोड़ी देर चि चि चि... करते वहाँ सफाई करवाते और अपने काम में लग जाते।

यह तीसरा वर्ष है। ओटलों पर,पेड़ पर,रोशनदान पर चिड़ियों का बैठना, चहचहाना,उड़ जाना। फिर यही क्रम दुहराना, प्रतिदिन की बात थी। मेरा ध्यान कभी उधर जाता कभी नहीं भी जाता।

अप्रैल का महीना है। शाम का वक्त। मैं बैठक में दरवाज़े से लगभग सटे हुए डली कुर्सी पर बैठकर एक पुस्तक पढ़ रहा हूँ। मुझे लगा कि मेरे नज़दीक ही आज चिड़ियों का शोर कुछ अधिक ही हो रहा है। बाहर निकल कर देखा कि रोशनदान में रस्सियों से बना हुआ एक जाल बँधा है, उसमें चिड़िया के चार-पाँच बच्चे हैं,जाल के बाहरी हिस्से पर चिड़ा और चिड़िया बैठे हैं,लगता है कि दिन भर भोजन की तलाश के बाद अभी अभी लौटे हैं। सम्भवत: इसीलिए सब मिलन की खुशी में चहचहा रहे हैं।

माजरा कुछ कुछ समझ मे आया। पत्नी को आवाज़ दी। वे आईं,मैंने जाल की तरफ इशारा किया। करुणा फूट पड़ी। 'मैं दो साल से देख रही हूँ। चिड़िया अंडे देती है और सबके सब उसी दिन नीचे गिर कर फूट जाते हैं। सम्भवत: चिड़ियों को जगह की कमी का अहसास ही नहीं हो पा रहा है,सो जगह ही नहीं छोड़ रही हैं,प्रतिवर्ष यहीं अंडे देती हैं। मेरा मन कचोट रहा था,क्या गुज़रती होगी चिड़ियों पर। अबकी बार मैंने सोचा कि मुझे ही कुछ करना चाहिए। मैंने सुतली से जाल बुनकर रौशनदान से बाँध दिया। चिड़िया के अंडे जाल में सध गए,अब अंडों से बच्चे निकल आए हैं। यह बात मुझे पता थी; व्यस्तता के कारण आज से पहले आपका ध्यान उधर जा नहीं पाया होगा, संयोग कि मैं आपको बता नहीं पाई।' मैं माँ की ममता के आगे नतमस्तक हो गया।

***

संपर्क: उपमहानिदेशक: दूरदर्शन(से नि), सी-9,स्टार होम्स,रोहितनगर फेस-2,पोस्ट ऑफिस त्रिलंगा, भोपाल-462039 मोबाइल:-09425777449

आहटें

सुदर्शन प्रियदर्शिनी

कई सम्मानों से सम्मानित वरिष्ठ उपन्यासकार, कवयित्री और लेखिका अमेरिका निवासी सुदर्शन प्रियदर्शिनी के रेत के घर, जलाक, सूरज नहीं उगेगा, अरी ओ कनिका, अब के बिछुड़े (उपन्यास), उत्तरायण, खाली हथेली, मेरी प्रिय कहानियाँ, आर न पार (कहानी संग्रह), शिखड़ी युग, बराह, यह युग रावण है, अंग -संग (कविता-संग्रह), मैं कौन हाँ (पंजाबी में कविता संग्रह) हैं। संप्रति स्वततन्त्र लेखिका हैं।

संपर्क :246 Stratford Drive, Broadview Hits., Ohio 44147.USA

ईमेल: spriyadershini@yahoo.com

मोबाइल: 440-717-1699

उस दिन मेरी धड़कन बंद हो गई। श्वास- प्रश्वास की कृत्रिम क्रिया से साँस तो लौट आई पर मैं नहीं लौटा। इस न लौटने पर मस्तिष्क के किन्हीं मृत - कोशो में संज्ञा न रहते हुए भी बाहर के सारे शब्द ध्वनित हो कर कानों में गूँजते रहते हैं। एक-एक शब्द अपने सौ-सौ अर्थों के साथ। उन के अर्थ केवल मैं जानता हूँ, पर उन अर्थों को मैं कभी खोल नहीं पाऊँगा। उन से उत्पन्न अर्थों के अनुरूप कुछ कर भी नहीं पाऊँगा। क्योंकि मैं अपने अंदर और बाहर की आहटों के बीच संज्ञा शून्य पड़ा हूँ और इसी तरह लटकने को विवश हूँ।

अब तो मेरी साँसों को लौटाने वाले मेरे इस अपार्थिव - शरीर को और अधिक समय तक न रखने का निर्णय भी ले चुके हैं। यह निर्णय सब के साथ मिल कर ले लिया गया है कि ये श्वास - प्रश्वाश के कृत्रिम वैज्ञानिक यंत्र हटा कर - मुझे - मुझ से मुक्त कर दिया जाएगा। यही क्या कम है कि इन कृत्रिम यंत्रों की सहायता से मुझे इस बीच कुछ समय जीने का अवसर मिला और स्वयं को दूसरों के मापदंड से जानने का भी। यह भी स्पष्ट हुआ कि अपने - भ्रम चाहे हम कितने पाल ले - किन्तु मान्य वही रहता है जैसा दूसरे हमें आँकते हैं। हमारे अंदर का मनुष्य दुनिया की दुलत्तियों में उठा - पटक करता रहता है और उस का अपना हर कोना उस से छिदता भी रहता है फिर भी एक दिन न जाने कब - इसी ऊहापोह में उस के अंदर से भी असली मानव निकल जाता है और उस की जगह एक दुनियाई - स्वार्थी व्यक्ति स्थापित हो जाता है।

उम्र भर आसपास की जिन कानफाडू चिल्ल्पों और ऊँची - ऊँची आवाज़ों के शोर में पला हूँ - आज न जाने वह कहाँ तिरोहित हो गई हैं और मैं इन सन्नाटों के बीच घिरा - अवशेष - किराए की साँसों में घिरा पड़ा हूँ। ये बेआवाज़ सन्नाटा इतना गहन है कि सुई गिरने की आवाज़ भी मस्तिष्क की नसों को झनझना जाती है। इस सन्नाटे के कोहरे में कहीं ऊपर - नीचे तक उपेक्षित सा घिर गया हूँ। बिलकुल अकेला -न कोई शिकायत न शिकवा ही हो सकता है। सभी शांत हो गए हैं। पर मैं बंद आँखों से भी उन के माथे की तिरोरियाँ - शिकायतें तक पढ़ सकता हूँ। एक और तो हम मधु मक्खी की तरह इस झंझावत में लिपटे रहना चाहते हैं पर दूसरी और अपने आप को छुड़ाने का भ्रम पैदा करते रहते हैं। वास्तव में अंदर से हम इस जीवन को उतनी ही शिद्दत से पकड़े भी रहना चाहते हैं। जैसे कि मैं !

आज यही बात क्यों खल रही है कि मेरा अंत करने का निर्णय ले लिया गया है। मुक्त होने के लिए भी हमें दूसरों के निर्णयों पर रहना पड़ता है। अपने लिए - अपनी तरह जीने के लिए उम्र भर हमें एक क्षण नहीं मिलता। हम सदैव किसी न किसी के कंधे पर या किसी न किसी की अँगुली पकड़ कर जीवन में ठिलते रहते हैं। न मन का खाना (जो बना मिले खा लो) न पहनना (सामाजिक चौखटों की चार दीवारी के भीतर) न रोना (कोई देख लेगा) न हँसना (लोग क्या कहेंगे) न जीवन में कुछ बनने के लिए अपने मन की राह चुनना (माता - पिता - वह राह चुनेगें) न मन पसंद साथी (वह भी माँ - बाप) हम तो उम्र भर किराए के खरीदे हुए टट्टूओं की तरह बोझा ढोते चलते हैं। पता नहीं हाथ - पाँव चलाने की स्वतंत्रता - क्यों नहीं मिलती हमें ! कुछ लोग जो अपने जीवन मे अपनी शक्ति, अपनी स्वतंत्रता या अपनी दहाड़ से अपनी मंजिल प्राप्त करते हैं वे साधारण नहीं असामाजिक कहलाते हैं। वह तड़ी पार हो जाते हैं - समाज की पारम्परिक सीमाओं से बाहर।

अब मैं तो यूँही बेबस हूँ। सब कुछ पर ताला लगा है। हाथ बँधे हैं, पैर बँधे है, यहाँ तक कि नाक - मुँह भी सुइयों में जकड़े हैं। चाहूँ भी तो नहीं हिल सकता। केवल जाग रही है तो चेतना - जो अंदर से सारा तमाशा देख रही है।

मैंने जब अपने कानों से सुना कि मेरी साँसों का अंतिम निर्णय ले लिया गया है तो लगा जिस काया के अंदर हम कठपुतली बन कर – सब की इच्छाओं को पूरा करने के लिए – अपने इर्द – गिर्द गोल – गोल घूमते रहते हैं आज वह नाचना थम जाएगा। आज से मेरा कठपुतली का नाच समाप्त। आख़िर आदमी एक जीवन में कितना करे – कितना नाचे ! उस के चारों ओर – हाथ फैलाए लोग अपनी अपेक्षाएँ लिए खड़े रहते हैं, और हम अपने ही इर्द – गिर्द –गोल – गोल घेरे में बंधे नाचते रहते हैं। आज मेरा नाचना बंद हो जायगा। मैं स्थिर हो जाऊँगा। पर न चाहते हुए भी क्यों लगता है जैसे मैं उसी चकरघिन्नी में नाचना चाहता हूँ। क्यों मैं स्वयं नहीं चाह पा रहा कि इन काँटों में से स्वयं को ख़ुशी – ख़ुशी छुड़ा लूँ – बस यही हमारी विडंबना है कि हम स्वयं अंदर से अंदर धँसते चले जाते हैं और उस पर हर समय इस जंजाल से निकल सकने की दुहाई भी देते रहते हैं। दुहाई के उल्ट भरसक प्रयत्न भी करते है कि हम बने रहें। किन्तु हमारे यह हवाई प्रयत्न – अंदरूनी नहीं केवल ऊपरी होते हैं।

मेरे साँसों के निर्णय की आवाज़ बार – बार मेरे कानों में गूँज रही है। चाहिए तो यही कि जब साँसें उखड़ती है तो उन्हें उखड़ने दिया जाए ऊपर वाले की घड़ी की सूईयाँ बंद हो गई हैं तो होने दो न। लेकिन नहीं उस समय उस के साथ एड़ी चोटी का ज़ोर लगा कर उस धड़कन को वापिस लाया जाता है। इन नई वैज्ञानिक अविष्कारों की सिद्धि के लिए। इस से अभिलाषाएँ और इच्छाएँ ही बलवती होती हैं और यही नहीं इस बीच के अंतराल में मस्तिष्क की शिराएँ थक जाती हैं और उन के बीच का तंतु टूट जाता है या शिथिल हो जाता है जो फिर उठ नहीं पाता। अंदर से सब सुनता है पर झूलता हुआ रस्सी पर लटका रहता है। हाथ – पाँव सुन्न, जिह्वा सुन्न, हरकते सुन्न और वह किन्ही आंतरिक सन्नाटों में घिर कर रह जाता है। बाहर वाले इसे 'कौमा' में है, कह कर लटकने के लिए – अपनी मनमानियाँ करने के लिए, अपने निर्णयों को थोपने के लिए स्वतंत्र हो जाते हैं।

मैं तो इस स्थिति में संकेत तक नहीं कर सकता कि मैं किस से बात करना चाहता हूँ। क्या आज चाह कर भी कोई अतीत की बात दोहरा सकता हूँ ! या अपनी पत्नी को एक बार गले लगा सकता हूँ – जिस के पीछे मैं पागल था पर जिसे पिछले कुछ सालों से मैंने नकार की रस्सी पर टाँग रखा था। वह जितनी भी सेवा करती मुझे कम पड़ती। मेरी अपनी हीनताएँ – उस की सुंदरता को उस का अहम् समझतीं और उसे अपने विकट – व्यवहार से तोड़ती – मरोड़ती रहती। यों भी मैं अपनी हीनताएँ छुपाने के लिए उम्र भर उसे छोटा करता रहा था। अब जाने से पहले केवल कुछ क्षण – मैं उस के साथ अकेले बिताना चाहता हूँ। अपने अपराध स्वीकार करना चाहता हूँ। मैं उस के एक स्पर्श के लिए तरस रहा हूँ। पर शायद अब वह क्षण कभी नहीं आएगा। मैं जा रहा हूँ नीमा – मेरे पास आओ– मेरे पास बैठो – अपनी छुअन से मुझे सहलायो। प्रथम छुअन की सिहरन के बाद ही तो सृष्टि का बीज पड़ता है, इसी छुअन के स्पर्श से मनुष्य को संजीवनी बूटी का सा प्रभाव ग्रहण होता है। मैं आज बस वही माँग रहा हूँ – इसी की एक अंतिम अपेक्षा लिए एक मूक प्रार्थना कर रहा हूँ। आज मेरी प्रार्थना मुखर नहीं है। अगर मेरी प्रार्थना मुखर होती तो शायद वायुमंडल में तुम मेरे संदेश को पकड़ पाती – पर नहीं पहुँच पा रही है मेरी अंतिम इच्छा तुम तक।

बाहर का शोर, ध्वनियाँ और ऊँची आवाजों में लिए गए निर्णय – मेरे अंतर् में उतर गए हैं। यह निर्णय अपने महावती – बोझ से मुझे चीथ रहे है। इन के भरकम पाँवों तले मेरी आत्मा पिस रही है। आज मेरा अपनापन – मेरी उग्र 'मैं' रुँध रही है। गले में फाँस की तरह ज़िन्दगी अटकी हुई है। एक तरह से तो अच्छा है इन सब बनावटी – मशीनों से छुटकारा मिल जाएगा और मैं एक शांत – शीत सी चादर ओढ़ कर सो जाऊँगा। तब सारा शोर थम जाएगा।

क्या महाप्रस्थान से पहले सभी मेरी जैसी स्थिति से ही गुज़रते हैं ! क्या सभी को ज़िन्दगी पहाड़ बन कर दबोचती है ?

जब से परिवार वालों ने यानि मेरी पत्नी, बेटे और दामाद ने मेरे जीवन का अंत करने का निर्णय लिया है, मेरी बैचनी बढ़ गई है। यह नहीं कि मुझे लम्बा जीवन चाहिए– किन्तु यह कि मैं कुछ कहना चाहता हूँ। बताना चाहता हूँ और यह भी कहना चाहता हूँ कि मुझे प्राकृतिक – स्थिति में रखा जाए इन कृत्रिम यंत्रों पर रख कर मुझे यातना न दी जाए – अब रख ही लिया है तो मुझे जीने दिया जाए। कुआँ पास देख कर प्यास तो बढ़ेगी ही न !

कम से कम अब तक बाहर का वातवरण – आवागमन – यहाँ तक कि लोगों के कपड़ों में लिपटी सुगंध और कपड़ो की ड्राई क्लीन – वाली सुथरी तहों की सरसराहट – मेरे मानस में बजती और जीवन का अहसास कराती रही है। यों न मेरे हाथ उठते हैं, न आँख खुलती है और न ही होठ थरथराते है कि कोई समझ सके कि में कुछ कहना चाहता हूँ।

नीमा ! क्या आज भी तुम केवल दुनियादारी ही निभाती रहोगी ! लोगों के आसपास होने से मैं अंतिम बार तुम्हारी छुअन से वंचित रह जाऊँगा ! इसी पारम्परिक – घुटन से बाहर निकल कर देखता हूँ तो यहाँ की विदेशी संस्कृति – या सभ्यता दिखावे – शर्म – हया से कितनी बेलाग है, ऊपर है। ये दिखावा करना, अभिव्यक्त करना – प्यार करना, छूना या गले लगाना जानते हैं इन के मन में जो होता है उसे प्रगट कर अपने जीवन को सार्थक और उन्मुक्त रखते है – घुटते नहीं – छुपते भी नहीं। चाहे हमारी आँखों को वह प्रगल्भ लगे – पर वे जीते हैं – जब कि हमें कभी जीने का शऊर नहीं आया। छुप कर जीना, कनखियों से आँखें सेकना, प्रगल्भ आँखों से छेड़ना भी हमीं ने सीख रखा है। मुस्करा कर या ठहाका मार कर जीना हमें सिखाया ही नहीं गया।

नीमा ! क्या दो क्षण मेरे पास आकर खड़ी नहीं हो सकती ! मैं बोल नहीं सकता – तुम्हें छू नहीं सकता – किन्तु मेरे अंदर की महसूस अभी ज़िन्दा है। मैं चाहता हूँ एक बार तुम मेरे माथे पर अपना हाथ रखो। मेरे हाथों को अपने हाथों में ले कर सहलायो। दो प्यार के शब्द कहो और मुझे आश्वासन दो कि मैं अकेला नहीं हूँ। मुझे विश्वास दिलाओ कि मैं तुम्हारे अंदर कहीं आज भी विध्यमान हूँ। तुम हाथों में मेरा हाथ लोगी तो शायद मैं अपने हाथों के स्पंदन से अपना पश्चाताप – तुम तक पहुँचा सकूँ। एक बार अपनी बाहें मेरे चारों तरफ फैला दो। मैं मर गया हूँ, पर इस समय दुगना मर रहा हूँ। मुझे

संभाल लो – अपने आश्वासन से।मैं जानता हूँ संजय का निर्णय – तुम्हें मान्य है। अभी डाक्टर आएँगे और मुझे आस-पास से जकड़े सारे तार – बेतार निकाल लिए जाएँगे और मैं बल्ब की तरह भक कर के तो नहीं, पर जाती हुई रौशनी की लकीर सा कुछ ही पलों में – या कुछ घंटों में बुझ जाऊँगा। तब तो मेरे आसपास सिर्फ अँधेरा होगा। अभी तक इस दशा में भी मुझे तुम्हारा प्रकाश – भासता था – जिस में – मैं लटका हुआ था। अब वह त्रिशंकु की – लटकन भी खत्म हो जाएगी। कैसी परीक्षा ले रही हो – बिलकुल वैसी ही जैसी कॉलेज में तुम रास्ते बदलती रहती थी ताकि मैं तुम्हें न देख पाऊँ। तुम्हारे निकट न आ सकूँ। उन दिनों भी तुम ने बहुत सताया था मुझे। आज तो बस जा रहा हूँ तुम्हारी ज़िन्दगी से। आज तो न सतायो।

मुझे बाहर की आवाज़ों में तुम्हारी भरी – भरी आवाज़ सुनाई दे रही है। अंदर से तुम भी अवश्य आहत होंगी। 'यह निर्णय मेरे लिए बहुत कठिन था' – तुम किसी दोस्त को कह रही थीं और वह तुम्हारे कंधे पर हाथ रख कर शायद सांत्वना दे रहे थे।

अगर संजय साथ न देता तो। ....

लगा तुम अपनी सफाई दे रही हो।

बस !

बस अब मन टूट गया है।

तुम घिरी रहो – दोस्तों की सहानुभूति के बीच।

तुम रहो संजय के निर्णय के साथ !

तुम रहो अकेली !

शायद यही ठीक है। इसी के योग्य हो तुम और मैं !

जब जीवन हाथ में होता है तो हम उसे तहस – नहस करने पर तुले रहते हैं।

हमारी सारी सोच कुंद हो जाती है।

हमारा अहम् – हम से ऊपर हो जाता है।

डॉक्टर आ गया है और उस ने धीरे – धीरे सारे कृत्रिम प्रवधान निकालने आरंभ कर दिए है और अब अंत में यह गया – ऑक्सीजन मास्क –यह गई –आई-वी .....

अच्छा है – अब तक कोई मेरी नहीं सुन रहा था और अब – अब मैं किसी की नहीं सुनूँगा। ... !

***

लघु कथा

अनन्य भक्त

सुभाष चंद्र लखेड़ा

भक्त ने मंदिर से कुछ दूरी परभगवान् को टहलते देखा तो उसे आश्चर्य हुआ। उसने पास जाकर पूछा, 'प्रभु, आप यहाँ ?'

भगवान् मुस्कराते हुए बोले, 'उधर कोई नेता आया हुआ है। वह सुरक्षा कर्मियों से घिरा मंदिर के आँगन तक कार में पहुँचा और फिर

'वीवीआईपी' कोटे के तहत मेरे दर्शन करने के लिए अंदर आया। उसे घुसते देख मैंने सोचा क्यों न कुछ देर मैं उन लोगों के दर्शन कर लूँ,

जिन्हें उस नेता की वजह से सुबह से मंदिर के पास नहीं फटकने दिया जा रहा है।'

भक्त यह सुनकर प्रभु से बोला, 'लेकिन मैंने तो सुना है कि यह नेता आपका अनन्य भक्त है ?'

प्रभु मोहक मुस्कान बिखेरते हुए बोले, 'जिसे मेरे आँगन में भी सुरक्षा कर्मियों की ज़रूरत हो, वह भला मेरा अनन्य भक्त कैसे हो सकता है ?'

***

गोरैया प्रेम

वह पिछले कुछ दशकों से गाहे बगाहे अपना गोरैया प्रेम प्रदर्शित करता रहता है। किशोरावस्था तक वह उस पहाड़ी गाँव में रहा जहाँ उसके पूर्वज रहते आए थे। उनके मकान के छज्जे की शहतीरों में पाँच – छह गोरैया दंपति निवास करते थे। वह नर और मादा गोरैयाओं को तिनका – तिनका लाकर घोंसले बनाते हुए वर्षों तक देखता रहा। एक बार बाल सहज जिज्ञासा की वजह से उसने खमटी पर चढ़कर किसी घोंसले को देखने की कोशिश की तो उसकी माँ ने उसे बुरी तरह से डाँट दिया था। माँ ने यह भी बताया था कि अण्डों को अगर कोई छू दे तो फिर उस अण्डे से चूजे पैदा नहीं होते हैं। खैर, उसके आँगन और गाँव के सभी घरों के आँगनों में गोरैयाओं के अलग – अलग झुंड चीं – चीं करते हुए फुदकते रहते थे। बाद में वह जब कभी गाँव गया तो उसे बहुत कम गोरैया दिखीं। बुजुर्गों का कहना था कि ऐसा जहरीले रसायनों के छिड़काव की वजह से हुआ।

दिल्ली में वह सन् 1970 में आया तो यहाँ भी तब गोरैया नज़र आया करती थी। बीतते वक़्त के साथ यहाँ भी गोरैयाओं की संख्या में कमी होती गई। फलस्वरूप, देश में गोरैया संरक्षण पर चर्चा होने लगी। उसने भी दो-तीन ऐसे लेख लिखे जिनमें गोरैया संरक्षण के उपाय बताए गए थे।

बहरहाल, अभी तीन दिन पहले उसे अपनी बालकनी में एक आधा – अधूरा घोंसला नज़र आया। उसने देखा कि गोरैयाओं का एक जोड़ा उस घोंसले को पूरा करने में जुटा हुआ था। वह तुरंत अंदर से स्टूल लाया और उसने फटाफट उस अधूरे घोंसले को एक झटके में गिरा दिया। बालकनी में बिखरे घास फूस के तिनकों को अपनी कबाड़ की बाल्टी के हवाले करते हुए वह सोच रहा था कि उसने अपनी बालकनी को गंदा होने से बचा लिया है।

***

संपर्क: सी – 180, सिद्धार्थ कुंज, सेक्टर – 7, प्लाट नंबर – 17,द्वारका, नई दिल्ली – 110075

ईमेल: subhash.surendra@gmail.com

मोबाइल : 8882091238, 9891491238

अब मैं सो जाऊँ...

डॉ. गरिमा संजय दुबे

काम करते-करते मुन्नी की चीख सुनाई दी। सिर पर हाथ रख माथे के बोर और घूँघट को सँभालते हुए वे बोलीं 'लो फिर दोरो पड़ गियो, पैदा होते मर जाती करमजली तो चैन की से साँस ले लेती, अब न खुद जीने में है न मरने में, और म्हारे भी तल रई है, थोड़ो गुस्सा पर काबू रख लेती तो जै घर न उजड़तो।'

चलते चलते सोच रही थी कि 'कई अकेली मुन्नी जिम्मेवार है, सबका वास्ते वा भी ते बराबर की हिस्सेदार है। वाको रोक लेती तो आज यो दिन ना देखनो पड़तो' हॉल से गुज़रते-गुज़रते देवरानी अलका की माला डली फ़ोटो पर नज़र पड़ते ही सहम गई। लगा फिर से वो बोल रही है - 'सो के दिखा, सोणे नहीं दूँगी थारे, म्हारे टाबरां टाबरी के सच बता ....बोल'। घबरा कर तेज़-तेज़ कदमों से हॉल को पार कर मुनियाँ के कमरे में पहुँची। देखा तो टट्टी पिशाब का भी भान नहीं लड़की को गंदे कपड़ों में पड़ी, 'मैंने नई मारो, मैंने नई मारो' की रट लगाए अपने उलझे बालों से जुएँ निकाल कर मार रही थी। रुलाई फूट गई उनकी विधाता से पूछ भी तो नहीं सकती कि किस पाप का दंड है, पाप भी पता हो और दंड भी, तो शिकायत किससे और क्यों ? रोते-रोते सब साफ़ किया, लड़की की तरफ एक कातर दृष्टी डाली वह वैसी ही अजनबी, बड़ी-बड़ी आँखें फाड़े, बड़े बड़े दाँत दिखाती हँस रही थी। पल भर को करुणा से मन भर आया, कलेजे से भींच लेना चाहा, लेकिन जैसे श्राप दे गई हो देवरानी कि 'थे भी अपना बचा के लाड नि कर पावोगी भाभी सा'। एक ज़ोर का थप्पड़ पागलपन में मार दिया लड़की ने उनके गाल पर, करुणा, प्रेम न जाने कहाँ गया, धक्का दे, रोते हुए बाहर निकल आई। जब अमन और आनंदी घर में रहते तब तक एकदम सीधी रहती है। उनके सामने नहीं आती मानो उनसे अपने अपराध की वजह से नज़र चुराती हो। उन्हें लगता इस पगली को याद भी है इसने क्या किया था। और जहाँ माँ को अकेले पाया कि तलना शुरू, जैसे दोनों ही अपने-अपने पाप का एक दूसरे से बदला लेने लगतीं हैं। वे सोचती 'इससे बड़ी सज़ा कौन सी अदालत देती उन्हें जो ईश्वर ने दी, जासे तो जेल ही हो जाती तो भलो थो, कलेजा को बोझ तो कम होतो', लेकिन पिछले पंद्रह साल से कई चेहरे उन्हें अपने अपराध की हरदम याद दिलाते हैं। अब तो रोज़ की आदत हो गई है। पर नींद उन्हें आती नहीं, जहाँ आँख लगी कि धम्म से अलका हँसती हुई खड़ी हो जाती, 'सोणों है, म्हारे गहरी नींद में सुलई के थारे सोणों है, म्हारा बच्चा के म्हारे से दूर करके थारे सोणों है, अब बड़ो लाड़ लड़ावे है, भली बणे है, जब तक सच ना बतावेगी म्हारे टाबर टाबरी के, मैं थारे सोणे न दूँगी उठ उठ।' और वे घबरा कर आँखे खोल लेती। फिर तो वो है और रात है। पंद्रह साल से हर रात यही होता। आश्चर्य सब इलाज़ करवा लिए न नींद आई, न वो पागल हुई। पता नहीं किस जुनून से चल रही थी ज़िन्दगी। थोड़े बड़े हो जाएँ बच्चे तो बता दूँगी, पढ़ाई पूरी हो जाए तो बता दूँगी, करते-करते पंद्रह साल जागते जागते और मुनियाँ के पागलपन को झेलते झेलते बीत गए।

तभी अमन और आनंदी आ गए, इधर-उधर बैग फेंकते लिपट गए अपनी बड़ी बई से, वो भी 'ओ म्हारे लाडेसर औ म्हारी लाडो चल जल्दी-जल्दी मुँह हाथ धो लो। गरमा-गरम पुलाव तैयार है, थाके वास्ते जा', बोलते-बोलते मुन्नी का ध्यान आया। कलेजा कसमसा गया, करमजली को इत्ते साल में एक बार भी प्यार नहीं कर सकी। हर बार मन में आता लेकिन जैसे ही प्यार करने उठती लगता कोई अपराध कर रही है। अमन और आनंदी के हिस्से बाँट रही है और अलका फिर बीच में उसे रोक रही है घबरा कर वहाँ से हट

अंग्रेज़ी साहित्य में सहायक प्राध्यापक, डॉ. गरिमा संजय दुबे को बचपन से पठन-पाठन, लेखन में रूचि रही। गत पाँच वर्षो से लेखन में सक्रीय। कईं कहानियाँ, व्यंग्य, कविताएँ व लघुकथा, समसामयिक लेख, समीक्षा नईदुनिया (नायिका, तरंग, अधबीच मेरा प्रदेश),जागरण, पत्रिका, हरिभूमि, दैनिक भास्कर, फेमिना, अहा ज़िन्दगी, विभोम-स्वर, शब्द प्रवाह में प्रकाशित। सुबह सवेरे में स्थायी स्तंभकार, वाङ्गमय पत्रिका में कहानी प्रकाशित जिसका अंग्रज़ी व उर्दू में अनुवाद कार्य प्रगति पर, वेबदुनिया न्यूज़ पोर्टल पर नियमित लेखन, कुशल मंच संचालक, एक कहानी संग्रह शीघ्र प्रकाश्य। आकाशवाणी से कहानियों का प्रसारण।

संपर्क: 18 बी वंदना नगर एक्स, इंदौर, म.प्र.

ईमेल : garimadube4108@gmail.com

मोबाइल : 9009046734

जाती। पंद्रह साल बाद भी अलका कहीं गई नहीं हमेशा उसके साथ ही रही। उसकी छाती पे मूँग दलने। मुन्नी को खाने को कुछ दिया ही नहीं, इन दोनों बच्चों के प्यार में उसे भूलती ही तो आ रही है। वहाँ मुन्नी दरवाज़े की आड़ से लाड़ लड़ाते देख रोने लगी। पागल है पर याद है सब। तभी तो जाती नहीं अमन और आनंदी के पास। वो आएँ तो चीज़ें फेंकने लगती है उनपर, सो दोनों को उससे दूर रहने की सख्त हिदायत है।

रात को पति और देवर को खाना खिला रही थी। पति ने तो नहीं देवर ने मुन्नी के लिए कपड़े और एडल्ट डाइपर भाभी को देते हुए कहा, 'भाभीसा ये मुन्नी के लिए, आप कब तक परेशाण होंगी'। मन रो पड़ा इसी देवर की दुनिया तो उजाड़ दी थी उसने। कभी इसी देवर के साथ हँसी-ठिठोली, मान-मनुहार, नोक-झोंक से घर गुलज़ार था, और अब ये हाल हैं कि उसका घूँघट करतीं हैं। आँख मिलाना तो दूर उनकी उपस्थिति में सामने आने से भी कतराती हैं, अपना चेहरा छुपाए रखती। बड़ी धूम-धाम से अपनी पसंद की देवरानी लाई थी। सास-ससुर ज़िंदा थे तब तक सब ठीक था और बस उनके जाने के कुछ साल बाद ही अनर्थ हो गया। अपने नाकारा पति से परेशान, एक लड़की की माँ होने का दूसरी बार माँ नहीं बन पाने, और देवर के सक्षम होने देवरानी के बेटे की माँ होने और नाते रिश्तेदारों में देवरानी की अधिक प्रसंशा ने डाह का ऐसा ज़हर फैलाया कि घर बरबाद हो गया।

देवर-देवरानी देवता थे। एक आँख से सब बच्चों को रखा। कभी भेद नहीं किया, पर उनका ज़रूरत से ज़्यादा अच्छा होना ही खटकने लगा उनके मन में। आए दिन किसी न किसी बात को लेकर लड़ने लगी, अपने बड़े होने का दम्भ दिखाने लगी। उस पर भी देवरानी पति का मान रख सहती रही। पर दोनों माँ बेटी पर तो मानो पिशाच सवार रहता था। माँ की लाड़ली मुन्नी, अब नकचढ़ी भी हो गई, बत्तमीज़ भी। बड़े छोटे का लिहाज ही नहीं। देवर घर की शांति के लिए प्रतिबद्ध सोचते भैया कमज़ोर हैं तो साथ में रहने पर किसी को कमतर होने का अहसास नहीं होगा, करते रहे पूरी ईमानदारी से ज़िम्मेदारी पूरी, लेकिन उसका यह अंत होगा सोचा नहीं था।

एक दिन किसी बात पर अनबन में जेठानी और उसकी लड़की ने घर में अकेली अलका से झगड़ा किया। बात बात में दोनों ने पीटना शुरू किया कि बेचारी संभल ही न सकी। सीढ़ियों से गिर पड़ी, वहीँ जान निकल गई उसकी। उनकी पढ़ी-लिखी बेटी ने आवेश में मुँह में जहर डाल उसे आत्महत्या बताना चाहा, लेकिन पोस्ट मार्टम रिपोर्ट में सब खुलासा हो गया। देवर स्तब्ध कुछ बोल सकने की स्थिति में ही नहीं, अचानक दुनिया उजड़ गई। क्या ग़लती हो गई थी उनसे ? अपनों का इतना ध्यान रखना गुनाह हो गया, दोनों बच्चे 5 और 6 साल के थे। वे समझ ही नहीं पा रहे थे क्या हुआ है। उनके मासूम चेहरे देख लोगों के कलेजे मुँह को आ रहे थे। और दोनों माँ बेटी ..पागलपन का ज्वार उतर गया था और समझ नहीं पा रही थी कि क्या हो गया है। अंतिम यात्रा के पहले जो मुन्नी को दौरे पड़ना शुरू हुए तो आज तक जारी है। कभी भी चिल्लाने लगती है, मैंने नहीं मारा, मैंने नहीं मारा, और वो खुद उस दिन से लग रहा है कि अलका उनके सर पर सवार है, सोने नहीं देती। लेकिन इन दोनों को तो जेल में होना चाहिए, यहाँ नहीं, फिर ये यहाँ कैसे ?और अमन और आनंदी इन्हें इतना लाड़ कैसे करतें हैं ?

तेरहवीं के होते ही पुलिस जब दोनों को ले जाने लगी तो, सहसा देवर बोल पड़े 'एक दुर्घटना थी इंस्पेक्टर साहब, मुझे किसी के ख़िलाफ़ कोई केस दर्ज़ नहीं करना'। सबने बहुत समझाने की कोशिश की किंतु वे नहीं माने। पुलिस के जाने के बाद वे अपने देवर के पैरों में गिर पड़ी। रो-रो कर अपने अपराध के लिए दंड माँगने लगी लेकिन देवर ने एक शब्द नहीं कहा। हाँ बिन माँ के बच्चे उन्हें रोता देख उनसे लिपट गए, बड़ी बई बड़ी बई कहते। उन्होंने देवर की तरफ देखा। वे समझ गईं देवर और देवरानी ने उन्हें जीवन भर पश्चाताप की अग्नि में जलने को छोड़ दिया है। ये बच्चे उनके प्रायश्चित का साधन भर हैं। उसी समय मन में ठान लिया था इन बच्चों की माँ छीनी है मैंने अब मै ही इनकी माँ हूँ। और सचमुच माँ से बड़कर प्रेम किया दोनों बच्चों को। नन्हे बच्चे धीरे-धीरे माँ की शक्ल भूल गए, लेकिन वो कहाँ भूल पाईं ? पाप इतनी आसानी से तो पीछा छोड़ता नहीं। हर पल बच्चों के सामने, देवर के सामने, अलका की तस्वीर के सामने वे तड़फ़-तड़फ़ कर रह जातीं। बच्चे बहुत प्यार करते, लेकिन रात होते ही अलका उन्हें सोने नहीं देती। वे सहम जाती अब तक तो बच्चों को कुछ पता नहीं है जिस दिन पता चलेगा, उस दिन नफरत करने लगेंगे उससे, वो तो निरी कंगाल हो जाएँगी, है ही क्या उनके पास इन बच्चों के प्यार के सिवा, और अलका उन्हें बोलती रहती कब बताओगी मेरे बच्चों को असलियत, कब बंद करोगी यह भली होने का नाटक ? वे उस दिन को याद कर रोती कलपती, उस पल को कोसती जब उनसे यह अपराध हो गया, लेकिन दंड नहीं मिला, और इतने साल से जो वो झेल रहीं हैं वह क्या है फिर ? बच्चों की पढ़ाई पूरी हो चली थी। दिन गुज़रते चले उनका दर्द अब बर्दाश्त से बाहर हो गया। अब बच्चों को बताना होगा, लेकिन बता नहीं पा रही थी, धीरे-धीरे पागलपन उन पर हावी होने लगा। जो सो न सके वो पागल तो हो ही जाएगा ना। मानों बच्चों की पढ़ाई पूरी होने तक ही अपने आप को पता नहीं कैसे संभाल रखा था। अब वे भी चीज़ें भूलने लगीं, चीखने चिल्लाने लगी। डॉक्टर को दिखाया तो कहा नींद चाहिए इन्हें जैसे भी कर के सुलाओ और रुलाओ। लेकिन नहीं, न सोती न रोती। देवर ने एक दिन तंग आ कर खड़ा कर दिया अलका की तस्वीर के आगे, बोले 'पढ़ाई पूरी हो गई है बच्चों की, बता दो भाभी सा, अब मन का बोझ हल्का कर लो'। चीख पड़ी... नहीं नहीं नहीं... अलका माफ़ कर दे म्हारे..., मैं नहीं सोऊँगी नहीं सोऊँगी,... देखो देवर सा अलका मणा कर रही है सोणे से...केवे है सच बता दूँ, कैसे बता दूँ ? पागलपन के दौरे में कभी हँसती, तो कभी रोती वे बोलती चली जा रहीं थी। फिर अमन और आनंदी के चेहरों को अपनी हथेली में ले कहने लगीं 'मेरे लाडेसर और लाडो के कैसे बता दूँ...हें,' कुछ देर तक एकटक अजीब तरीके से दोनों के चेहरे देखती रहीं, फिर एकाएक हाथ झटक कर दूर खड़ी हो गईं। फिर रोती हुई बोली 'थूकेंगे म्हारे मुँह पर..., नहीं नहीं

म्हारे यह सहन नहीं होएगो..., मर जाणे देओ म्हारे...' लाचारी में सर पर हाथ मारती असहाय हो बोली 'लेकिन अलका मरने भी तो नहीं देगी...हा हा हा अलका सोणे दे री म्हारे माफ़ कर दे, हा हा हा,.... सुबकती हुई बोली, सिसकियाँ हिचकियों में बदल गई थी। मुँह से थूक, झाग निकलने लगा, लगा अब न बताया तो छाती फट जाएगी, चल बता देऊ हूँ'... आवेग में थर-थर काँपते हुए पूरे साहस को बटोर चीख पड़ीं 'एऽऽऽऽऽऽ अमन, एऽऽऽऽऽऽ आनंदी मैं थारी माँ नहीं, थारी माँ के मने मारो है, जे मुन्नी ने मारो है, मैं बुरी औरत, मैं बुरी औरत... छाती पीट-पीट कर वे कमरे में घूम-घूम कर चीखने लगीं 'मने मारो है, थारी माँ को मैंने, मैंने मैंने ....', फिर अलका की तस्वीर की तरफ देख ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी, 15 साल से सीने में दफ़न, जमा हुआ दर्द मानों पिघल कर बहने लगा। निढ़ाल हो कातर दृष्टि से, लड़खड़ाते शब्दों में बोली 'अब..... मै सो...जाऊँ अलका..., अब तो सोणे दे री म्हारे, अब तो तू खुश है,... इत्ते बरस से सोई नहीं, अब सो जाणे दे अलका... लाचारी, बेबसी, अपराध बोध ने साहस शक्ति सब निचोड़ लिया था। अस्त-व्यस्त कपड़े, अस्त-व्यस्त बाल, आँसू से भरा चेहरा और मुँह से निकलते थूक के साथ बड़बड़ाते वे वहीं लुड़क गईं। सबने मिल कर उठा कर उन्हें पलंग पर लिटाया। मुन्नी एक कोने में बैठी जूँ मार रही थी। बीच-बीच में वे फिर बोल रहीं थी 'अब मैं सो जाऊँ अलका।' कईं जोड़ी आँखों से आँसुओं की अविरल धार बह रही थी। एक बार क्रोध से अमन के नथुने फड़फड़ाए, आँखे लाल हो गईं थी, होंठ और गाल थर-थर काँपने लगे। देवर ने सहम कर दोनों बच्चों की तरफ देखा। भर ठण्ड में माथे पर पसीने की बूँदें उभर आई। क्या होगा? बच्चे इस सच को जानकर क्या करेंगे ? पागल भतीजी, अपने छोटे मातृ विहीन बच्चों के लिए यह फैसला लिया था उन्होंने। चाहते तो सज़ा दिलवा देते किंतु नुकसान इतना बड़ा था कि भरपाई नहीं हो सकती थी। एक मात्र महिला बची थी ये भाभी जिसे जेल भेज देते तो कैसे सँभालते सब !

इसलिए सुदूर राजस्थान के इस कस्बे में आ बसे थे जहाँ कोई उन्हें और उनके इतिहास को नहीं जानता था, कोई रिश्तेदार नहीं जो सच बता सके ताकि घर बचा रहे। लेकिन इंसान खुद से कहाँ भाग सकता है, भाभी के अपराध बोध ने पीछा नहीं छोड़ा और आज वह दिन आ ही गया जिसे वे सब टालते रहना चाहते थे।

नफरत को प्रेम से जीतने के उनके सिद्धांत ने अपराधी को नहीं अपराध भाव को खत्म करने के अहिंसक दंड को प्राथमिकता दी। वकील थे जानते थे जो आदतन अपराधी नहीं है उसके लिए उसके अपराध से बड़ा कोई दंड नहीं होता। वे सफल भी हुए लेकिन क्या पंद्रह साल की उनकी यह तपस्या बच्चे समझ पाएँगे।

दम साधे बच्चों की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करने लगे। माहौल बोझिल था। अमन ने बैचेनी में कुछ कहना चाहा तो आनंदी ने उसके कंधे पर हाथ रख उसे रोक दिया दोनों की आँखों ही आँखों में बात हुई। अमन को बचपन से अब तक का प्यार-दुलार, रूठना-मनाना, अपने बीमार होने पर उनका घर सर पे उठा लेना, पूरा जीवन उन दोनों के इर्द-गिर्द बना लेना याद आया। इतना प्यार, इतना प्यार कि जिसे शब्दों में न बाँधा जा सके याद आया, दुनिया को भुला कर बस उन दोनों की ही तो हो गईं थी उनकी बड़ी बई। मुन्नी की तरफ नज़र पड़ी। उसकी सहमी सी नज़रों को देख तरस आ गया। बड़ी बई की हालत देख मन भर गया। जो दंड दोनों माँ बेटी इतने बरसों से झेल रहीं है उससे बड़ा दंड और क्या हो सकता है भला। अब क्या और किसी दंड की गुंजाइश बाकी थी। देवर सिर झुका कर ख़ड़े थे।अचानक देखा दो हाथ हवा में उठे लहराए.... यह देख देवर का दिल डूबने लगा, तो क्या बच्चे माफ़ नहीं कर पाएँगे ? अचानक से कमरे की हवा अनजाने भय से भारी हो गई। लहराते हुए दोनों हाथ एकदम से उनके सर पर जा लगे और... धीरे-धीरे थपकियाँ देने लगे, अश्रुधारा अनवरत थी। और वे बड़बड़ा रहीं थीं, आज मैं सो जाऊँगी...अलका सोणे दे म्हारे... अलका सोणे दे म्हारे...'प्यार भरी थपकियों से आनंदी की गोद में पड़ी वे थोड़ी ही देर में सो चुकी थीं और अलका आज सचमुच वहाँ नहीं थी।

***

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन **व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम :** पंकज कुमार पुरोहित। **पता :** रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 20 मार्च 2018

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

नीलम कुलश्रेष्ठ का दहशत (उपन्यास), आप ऊपर ही बिराजिए, चाँद आज भी बहुत दूर है, गंगटोक का एक भीगा भीगा दिन, हेवनली हेल, शेर के पिंजरे में (कहानी संग्रह), हरा भरा रहे पृथ्वी का पर्यावरण(शोध परक) ज़िन्दगी की तनी डोर ; ये स्त्रियाँ (स्त्री विमर्श), धर्म की बेड़ियाँ खोल रही है औरत- खंड 1- 2, धर्म के आर पार औरत,परत दर परत स्त्री(संपादित पुस्तकें), कुछ रोग ; कुछ वैज्ञानिक शोध, वड़ोदरा की नार, गुजरात;सहकारिता, समाज सेवा और संसाधन (पत्रकारिता),महिला चटपटी बतकहियाँ(व्यंग्य संग्रह),घर की मुंडेर पर कूकती स्त्री कलम(सम्पादित काव्य संग्रह), 'रिले रेस'(संपादित कहानी संग्रह) हैं। आपने वड़ोदरा और अहमदाबाद में बहुभाषी साहित्यिक मंच 'अस्मिता 'की स्थापना की। अस्मिता का अहिन्दीभाषी राज्य में 25 वर्ष तक सफल संचालन किया। गुजरात की रचनाकारों को भारत की पत्रिकाओं से जोड़ा। इस मंच की सदस्याओं ने अखिल भारतीय पुरस्कार जीते।

संपर्क: अर्बन स्पेस फेज़--1, फ़्लेट न. -904, बी -विंग, दोराबजी पैराडाइज़ के निकट, एन आई बी एम, उन्दरी रोड, पूना --411060, महाराष्ट्र।

ईमेल:kneeli@rediffmail.com

मोबाइल:09925534694

बस एक अजूबा

नीलम कुलश्रेष्ठ

पीले रंग के चिकने कागज़ की किताब जिस पर लाल, नीले, हरे, काले रंग के दुनिया के साथ अजूबों के सुंदर चित्र बने हुए थे। मैं तब अपनी व पापा की किताबों की अलमारी, मम्मी की ड्रेसिंग टेबल की ड्रॉअर; क्योंकि वे अपने पलंग पर लेटे हुए किताब पढ़ते-पढ़ते नींद आने पर उसमें डाल देती थीं, को ढूँढ़-ढूँढ़कर हार गई थी। वह किताब ही ऐसी थी कि किसी को भी अपनी शख़्सियत से बाँध ले।जब ये मुझे नौ बरस की उम्र में उपहार में मिली थी तो तब ऐसी किताबें दुर्लभ होती थीं। एक तो वह उम्र ऐसी थी कि' समझ अपने सुकोमल पंख धीरे -धीरे फैला रही थी ---हर नई बात एक अजूबा लगती थी ---रहस्य थे कि नित नए आवरण खोलते जाते थे---चकित करते जाते थे। पीले रंग की किताब अपने आप में एक अजूबा थी।बमुश्किल मम्मी को याद आया था, ''वह किताब तो तू ने अश्विन को पढ़ने के लिए दी थी।''

''ओ माई गॉड ! मैं उसे वापिस ले लूँगी, कहीं वह उसे खो ना दे।''

''क्यों, वापिस क्यों लेगी ?''

''पता नहीं मुझे क्यों लगता है कि वह हर समय मेरी किताबों के बीच होनी चाहिए। वह तो उस दिन अश्विन बहुत ज़िद कर रहा था इसलिए उसे देनी पड़ी थी।''

''ऐसी क्या सनक चढ़ गई है है ?इससें अच्छी किताबें तो बाज़ार में और भी मिल जाएँगी।''

''मम्मी !आप नहीं समझेंगी।'' उस नौ बरस की उम्र में टॉफ़ी के बड़े टीन के रंग-बिरंगे डिब्बों में छिपा मेरा खज़ाना होता था। नानी के हाथ की बनी कपड़े की गुड़िया, हार, बुंदे व काँच की चूड़ियाँ, रिबन व टीन के बने रसोई के बर्तन---ऐसे में वह किताब मुझे दी गई थी।

उस दिन मेरे सिर पर उस किताब का भूत इतना चढ़ गया था कि मैं इतवार आते ही मम्मी को लेकर मामाजी के घर पहुँच गई थी। मामा व अश्विन लॉन की धूप में गार्डन चेयर्स पर सफेद बनियान व पायजामा पहने बैठे बदन पर तेल लगा रहे थे। मामीजी गोद में थाली रक्खे गोभी आलू काट रही थी। मैंने नमस्ते करके अपना प्रश्न दाग दिया, ''अश्विन ! मैंने तुझे दुनिया के सात अजूबों की एक किताब पढ़ने को दी थी ?''

''हाँ, दीदी !वह बहुत अच्छी थी।'' उसने तेल की शीशी पर ढक्कन लगाते हुए कहा।

''वह मुझे वापिस चाहिए।''

''इतनी जल्दी ? अच्छा मैं अभी लाया।'' कहकर वहअपनी गार्डन चेयर को अन्दर लेकर चला गया था। उसने अपने घर की सारी अलमारी छान मारने के बाद आकर बताया कि वह किताब तो नहीं मिल रही। मैं रुआँसी हो उठी थी। वह हँसने लगा था, ''दीदी !

वह किताब तो बच्चों की किताब है। मेरे पास 'सेवन वॉन्डर्स ऑफ़ वर्ल्ड' है, उसे पढ़ लीजिए।''

मैंने ज़िद की थी, ''मुझे तो वही चाहिए। पता है मामा ने जब बी .ई. की थी तो उनके एक फ्रेंड रमेश मामा ने मुझे अपनी लिखी हुई ये किताब प्रेज़ेंट की थी।''

''अरे ! आपको अभी तक पापा के उन फ्रेंड का नाम याद है ?''

मामा भी चौंक गए थे, ''मुझे तो ये भी याद नहीं है कि रमेश ने तुझे कोई किताब दी थी।''

''अरे !आपको ये भी याद है कि रमेश मामा बच्चों के लिए कुछ ना कुछ लिखा करते थे ?''

''हाँ,ये बात याद है। वह तो हर महीने अनाथालय भी खाने-पीने का सामान बाँटने जाता था। कभी-कभी हम लोगों को भी उसके साथ जाना पड़ता था।''

मैं चौंक गई थी, ''वो किसी समाजसेवी संस्था से जुड़े थे ?''

''हर समय में कुछ लोग सोशल वर्क करते रहते हैं वो कोई बैनर थोड़े ही देखते हैं।''

बाद में डाइनिंग टेबल पर खाना लगाती मामी को याद आया था, ''दिवाली की सफ़ाई के बाद शायद मैंने वह पुरानी बुक रद्दी में दे दी होगी।''

मैंने बमुश्किल अपनी आँखों को गीली होने से रोका था।कोई देख ना ले। 'सेंटीमेंटल फ़ूल ' ! कोई बरसों बाद किसी पुरानी किताब के लिए ऐसे रोता है ?तब उन लोगों को क्या मुझे भी दूर-दूर तक भनक नहीं थी कि मैं कलम से सृजन का रास्ता अपनाऊँगी।शब्दों की शृंखलाएँ किताबों में तब्दील होती चली जाएँगी,और इस घटना को याद कर मेरा कलेजा हमेशा कसमसाता रहेगा, कि काश ! वह पुस्तक मैं अश्विन को पढ़ने के लिए नहीं देती तो वह हमेशा मेरी अलमारी में मुस्कराती रहती।

कितने अजूबे हमारी ज़िन्दगी में वैसे ही घटते रहते हैं। नित नई घटनाएँ। नित नए खुलते रहस्य के पर्दे। लेकिन हमारी इंद्रिया, या कहें जींस, उनकी पसंदगी वही संग्रह करती है जो हमारे अन्दर छिपा होता है, जींस के जेनेटिक कोड में गुप-चुप। हमें स्वंय पता नहीं होता कि यही अन्दर छिपा हमें कुछ करने को प्रेरित करेगा या हम कभी ना कभी इसी रास्ते पर चल पड़ेंगे। तो क्या वो पीली पुस्तक मेरा लाइट हाउस थी ?

नौ बरस की उम्र में मैं कहाँ सोच पाई थी कि मामा जी के वहदोस्त रमेश मामा मुझे अपनी उम्र की ढलान पर बेहद याद आएँगे, अपनी पुस्तकें प्रकाशित करवाने की कठिनाइयों के कारण।उस पुस्तक के खुशनुमा रंग, उसके प्रकाशन की गुणवत्ता मेरी रूह को बेचैन करती रहेगी।उस पुस्तक का प्रकाशक कौन होगा ?निश्चित है वह अलीगढ़ का तो होगा नहीं। वह पुस्तक दिल्ली में प्रकाशित करवाई होगी। मामा को कितने रुपये देने पड़े होंगे या वह बच्चों के लिए अकसर लिखा करते थे तो क्या प्रकाशक ने बिना पैसे लिए उनकी किताब प्रकाशित कर दी होगी ?

उस बरस नीम तले की ठंडी बयार में वह दावत जब तब मेरी आँखों में सजीव हो उठती है। उस मुख्य सड़क पर बड़े-बड़े फाटक वाले बड़े अहातों वाले विशाल घर थे।जिनमें दो चार किराएदार भी रहते थे। पास ही तमोली पाड़ा की गलियाँ थीं। ये वो समय था जब किसी बिरले परिवार का कोई लाड़ला इंजीनियर या डॉक्टर बनता था और बड़े मामा ने सिविल इंजीनियरिंग में बी .ई .में प्रथम आकर दिखाया था।वो भी आस-पास के ऐसे माहौल में जहाँ वे रात में नाईट लैंप में पढ़ते होते तो आवारा किस्म के लड़के नुक्कड़ की दुकान पर पान चबाकर जानबूझकर घर के बड़े गेट से अन्दर आकर उनकी खिड़की के पास से गुज़रते ज़ोर से फ़िकरे कसते थे, ''देखो रात में उल्लू पढ़ रहा है।''

उन्ही सब लड़कों में से कोई नगरपालिका में क्लर्क बन गया था, कोई कम्पाउंडर तो कोई गल्ले की दुकान पर बैठने लग गया था।मामा ने सारे घर का सिर गर्व से भर दिया था। गर्मियों थी इसलिए बहिनें दूर दराज़ के कॉलेजों की छुट्टियों के कारण आईं हुईं थीं। मामा के दोस्त अपनी-अपनी नौकरियों में अलग शहर बिखर जाने वाले थे इसलिए सबको एक डिनर देने की योजना बनी थी।

मेरे मन में उथल पुथल मची हुई थी। मैंने बाहर आकर देखा टीपू मामा ने कलुआ की मदद से अहाते में चमड़े की मशक से पानी का छिड़काव करवा के बीच में बड़ी मेज़ रखकर बारह कुर्सियाँ रखवा दी थीं।लॉन की गीली मिट्टीअ महक रही थी लेकिन चबूतरे में पड़े पानी से गर्म हवा उड़ रही थी। आस-पास की क्यारियों में लगे गुलाब, गेंदें, बोगन्विलिया के फूलों पर पानी की बूँदें चमक रहीं थी। मामा ने मुझसे कहा, ''जा सोफ़े पर रक्खा सफ़ेद चादरा ले आ।''

वह चादरा मेज़ पर बिछाया गया था।पास के स्टूल पर घर का एकमात्र टेबल फ़ैन रख दिया गया था।मै फ्रॉक बदल कर जैसे ही रसोई में आई तभी टीपू मामा हड़दबड़ाए से चले आए, ''वो लोग आ गए हैं।''

बाला मौसी व कुसुम मौसी ने रूह आफज़ा का शरबत बनाया व प्लेट में नमकीन व बिस्कुट डालकर बाहर ले गईं। थोड़ी देर बाद जब खाना लगाया जाने लगा तो मेरा नंबर आया, एक ट्रे में रखे चार पाँच तरह के अचारों व चटनी को ले जाने का। मैंने सकुचाते हुए वह ट्रे बीच की मेज़ पर रख दी थी। मामा जी ने परिचय करवाया था, ''ये है मेरी प्यारी भांजी।''

मैंने सबसे नमस्ते की।उनमें से नीली कमीज़ पहने एक गोरे मामा ने जो काले फ्रेम का चश्मा लगाए हुए थे, मुझसे कहा, ''मैं आपके लिए अपनी लिखी किताब लाया हूँ।''

उन्होंने मेरे हाथ में वह पीली चिकनी किताब रख दी थी जिसका नाम था 'विश्व के सात अजूबे 'और लेखक का नाम लिखा था 'रमेश कुमार माहेश्वरी ' ।मैं वह किताब हाथ में लेते हुए रोमांचित हो उठी थी दुनिया के सारे अजूबे मेरे हाथ में ? तो मामाजी ने पहले से उन्हें मेरे बारे में बता रखा था। मैं जो अब तक इस दावत के लिए थ्रिल्ड थी, अब सोच रही थी कि जल्दी ये ख़त्म हो और मैं चैन से ये किताब देखूँ।

दूसरे दिन नाश्ते के बाद मेरे हाथ में वह पीली किताब थी।अपने शहर के ताजमहल को देख हर्षित हो उठी थी। मैं गर्व से भर गई थी कि मैं ऐसे शहर में रहती हूँ; जहाँ विश्व का प्रसिद्ध ताजमहल है। अरे ! बेबीलोन में भी एक राजा था जिसने अपनी बीवी के प्यार में महल की छतों से लटकता हैंगिंग गार्डन बना दिया था, क्योंकि उसकी रानी साहिबा को अपने राज्य में बागों के

बीच रहने की आदत थी, तो मतलब सिर्फ़ शाहजहाँ ही नहीं दुनिया में कोई और भी राजा अपने पत्नी प्रेम की निशानी बनवा गए।मिस्त्र के तिकोने पिरा मिड्स हैं या रह्स्य का पुलिन्दा,आज भी वहाँ के बाद्शाह तूतम खानम या उनके आकर्षक रहस्यमय पीतल के मुखौटे या उनक़ी माँ नेफ्रटीटी की किसी पुस्तक में कोई कथा दिखाई देती है तो मै उसे पढ़ कर ही दम लेती हूँ। इटली का विशाल कोलोज़ियम ; जाने उसमें कितने योद्धा लड़े होंगे। चाइना की बाप रे ! इतनी लम्बी दीवार ! तब सोचने की अकल कहाँ थी कि इसे बनाने में कितने इंसानो की जान गई होगी? या शाहजहाँ ने निर्मम हो उस बेमिसाल ईरानी कारीगर के हाथ कटवा दिए होंगे जिसने दुनियाँ को सफ़ेद संगमरमर की बेहद नायाब इमारत सौगात में दी थी। मैं तब चकित थी पीसा की टेड़ी मीनार गिर क्यों नहीं रही है?

अफ्रीका का 'द लाइट ऑफ़ अलेग्ज़ेंद्रा', यूरोप का 'द स्टार ऑफ़ ज़ेनमस', पीली किताब से मैं ऐसी आलोकित दुनियामें पहुँच गई थी, जो मेरी पहुँच में दूर दूर तक नहीं थी। फिर भी हैंगिंग गार्डन्स के सुगन्धित फूलों की तरह, चाँदनी में नहाए ताजमहल की तरह, कोलोज़ियम के हारते या जीतते ग्लैडिएटर की तरह, चीन की दीवार पर एक साथ जा रहे दस घुड़सवारों के घोड़ों के पैरों की 'टप -टप' की तरह मेरे कानों में 'टप -टप' कर रही थी। मैं बिना पंख उड़ रही थी कभी इस देश, कभी उस देश। उसके बाद जब भी मुझे समय मिलता मैं उस पुस्तक को निहारती रहती। उस सौंदर्य बोध में रच बस जाती जो पता नहीं कितने लोग इन इमारतों की शकल में इस दुनिया को सौंप गए थे। तब मेरे अबोध मन को कहाँ पता था अनगिनत अनाम मज़दूरों के पसीने की कारीगरी हैं ये इमारतें। ये और बात है अमर हो जाते हैं ये बादशाह।

मामा का यू पी एस सी की परीक्षा में चयन हो गया था। सिंचाई विभाग की पहली पोस्टिंग पर वे जा रहे थे। सारे घर वाले बेहद खुश थे व भावुक भी हो रहे थे, घर का बड़ा बेटा दुनिया में कदम रखने वाला था। हम लोग आगरा से उनसे मिलने पहुँच गए थे।

अपने जाने से एक दिन पहले की रात को हॉल में सबके बीच बैठे मामा गप्पें मार रहे थे। शहर भर में अलग हॉल जिसका नानी के नाम पर 'रुक्मणि हॉल' नाम था, जिसके विशाल चौड़े दरवाज़े के ऊपर वाली पत्थर की जालियों में दोनों मामाओं के नाम के पत्थर के साथ मेरी माँ व छह मौसियो के नाम के पत्थर लगे हुए थे। ये नाना जी की सोच थी। मैं डॉक्टर मौसी की गोद में अधलेटी सबकी बातें सुन रही थी। किसी ने पूछ था, ''रमेश कुमार माहेश्वरी की नौकरी कहाँ लगी है ?''

मामाजी ने बताया था, ''वह बिज़नेस फ़ैमिली का बेटा है। रुड़की एम .ई. करने जा रहा है।'' तब आज का जैसा समय नहींथा कि बी. ई .के बाद एम बी ए करो तभी नौकरी मिलेगी।तब बी. ई .करना ही एक शान की बात थी।

नाना जी ने कहा था,''गुड।''

''वह बहुत मस्त व हेल्पिंग नेचर का लडका है एक बार मेरी परीक्षा के लिए ड्रॉइंग तैयार नहीं थी तो उसने मुझे अपनी ड्रॉइंग दे दी, मैंने उस पर काँच रखकर ट्रेस कर ली।''

''अच्छा ?''

''हाँ, उसे परीक्षा में छह नंबर मिलें मुझे नौ; क्योंकि उसकी ड्रॉइंग पर रबर के दाग थे। मेरी ट्रेस करने के कारण बिलकुल साफ़ सुथरी थी।''

''हा----हा---हा।''

शारदा मौसी ने गंभीर मुँह बनाकर, आदतन अपनी नाक थोड़ी फुलाकर कहा था, ''वह जीनियस है, बहुत राईज़ करेगा।''

सब उनकी बात से सहमत थे व उनकी विद्वता का रौब भी खाते थे; क्योंकि वकील नाना जी के मिश्रा मुन्शी का बेटा उनसे भूगोल व इतिहास व अँग्रेज़ी पढ़ने आता था। उसका चयन इस वर्ष आई ए एस में हो गया था।

मामाजी ने भी उनकी बात का समर्थन किया था, ''वैसे रमेश क्लास में हमेंशा टॉप करता है। अपने जीवन में राईज़ तो करेगा ही।''

तब मेरी छोटी सी बुद्धि से ये बातें परे थी कि ऊपर वाले की दया, ममता, माया, क्रोध, उसकी बनाई किस्मत क्या होती है? किस पर वह क्या लुटा दे, किस ज़हीन की किस्मत काली कलम से लिख दे, उसका देने लेने का समीकरण वही जाने।

मेरे 'जींस' में छिपे शब्द तो बहुत बाद में आकार ले पाए, किन्तु सारी छुट्टियाँ किताबों में सिर दिए बीतती थी।टीपू मामा अलीगढ़ की मुस्लिम यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी से कुछ अच्छी किताबें लाया करते थे। दो चार दिन में उन्हें समाप्त कर पास की एक दुकान के तख्त पर सजी लाईब्रेरी से पॉकेट बुक्स मसलन इब्ने सफ़ी बी ए के उपन्यासों के जासूस वनोद हमीद के कारनामे गुलशन नंदा के उपन्यास, अच्छे साहित्य पढ़ने के शौक़ीन नाना जी की डाँट के कारण छिप-छिप कर पढ़े जाते।

जीवन तो जीवन है बदलता रहता है। बड़े मामा की शादी हुई फिर छोटे मामा की भी। मैं कॉलेज में थोड़ा बहुत लिखने लगी थी। फिर मेरी भी शादी हुई---मेरे हम उम्र के माता-पिता तब अपने बेटी-बेटों को इंजीनियर्स बनाने में जी जान जुटें हुए थे।मुझे भी नीम तले देखी वो इंजीनियर्स टीम भूलती नहीं थी,ऐसे में मेरे ही बेटों ने झंडा गाढ़ दिया था 'हमें इंजीनियर्स नहीं बनना है'। बिना इंजीनियर बने वे अपने कैरियर में बहुत सफ़ल रहे। अब तो ये सब पिछले जन्म की बातें लगती हैं; क्योंकि हम सबके बच्चों की भी शादी हो चुकी है। पता ही नहीं चला कि कब वह बचपन की दुनिया बदलती चली गई। टीवी के इस ज़माने में हर इलाके में एक दुकान में पत्रिकाओं व पॉकेट बुक्स की बनी लाइब्रेरी जाने कहाँ गुम हो गई ? अब तक तो उस पीली किताब की परिभाषा यों बार-बार बदली है,नित नई खोज से नए अजूबे मिलते गए। दुनिया के सात अजूबों के नामों की फिर 7 जुलाई 2007 में विश्व के सौ अरब लोगों की वोटिंग के आधार पर एक नई लिस्ट बनाई गई। अब कोई नौ बरस की लड़की सात अजूबों की किताब देखकर सोच नहीं पाएगी कि क्यों पीसा की मीनार टेढ़ी होकर भी गिर नहीं रही है ? वह जान नहीं पाएगी कि हैंगिंग गार्डन्स बनाने वाला बेबीलोन का राजा अपनी रानी को बहुत प्यार करता था। मिस्त्र के पिरामिड्स या लाइट ऑफ़ अलेग्ज़ेंद्रा क्या हैं; क्योंकि नई सूची से इन्हें निकाल दिया गया है।

दुनिया में कोई जगह खाली नहीं रहती

क्योंकि मिस्त्र के पिरामिड के स्थान पर मैक्सिको का पिरामिड खोज लिया गया है; जिसके अन्दर एक छोटे रोबोट को भेजकर पता लगाया गया था कि उसके अन्दर चार कमरे हैं। ब्राज़ील के रि डी जेनेरिओ शहर में क्राइस्ट रेडियर की विशाल मूर्ति अब उन सात अजूबों में है। जॉर्डन के पेट्रा सिटी का 312 बी सी के लगभग चट्टानों को काटकर बनाया गुलाबी रंग का 'रोज़ सिटी' जो मिडिल ईस्ट की अरब किंगडम था। मैं चट्टानों के अन्दर के खूबसूरत रंगों की कल्पना इसलिए कर सकती हूँ कि थाईलैंड के फ़ुकेट की गुफ़ाओं में जाकर चट्टानों के कुदरत के इन रंगों की छटा को देख चुकीं हूँ। तब सोचा भी नहीं था हमारा सौभाग्य है जो इसे देख पाए क्योंकि गुफ़ा में पर्यटकों पर बार-बार चिड़ियों के हमले ने सरकार को इसमें पर्यटन बंद करना पड़ा।

पेरू का पंद्रहवी शताब्दी का अमेज़ोन के जंगलों में नदी के ऊपर पठार पर बनाया पहाड़ी के ऊपर से नीचे जाता मच्यू पिक्यू शहर के भग्नावेश, पुराने अजूबों से कही बड़ा अजूबा मिल गया है दुनिया को। इसके फ़ोटो के एरिअल व्यू देखो तो लगता है हड़प्पा व मोहन जोदड़ो के अवशेषों को यहाँ बिछा दिया गया है। कहने का मतलब है समय अच्छे अच्छों को नहीं छोड़ता तो वहबड़े-बड़े फाटकों वाले, आँगन वाले मकान सिमट कर मल्टीस्टोरी बिल्डिंग के फ्लेट हो गए। वह बचपन के टॉफ़ी के सुंदर रंग बिरंगे डिब्बे जाने कहाँ गए ? वह पीली किताब भी रद्दी बन जाने कहाँ मिट गई। उसकी जानकारी जिन्होंने बहुत मेहनत से जुटाईं थी वो रमेश मामा ?

इस नेट युग, भूमंडलीकरण, तेज़ रफ़्तार भागती ज़िन्दगी से बहुत पीछे जाने कितने बरसों पर पैर रखते हुए वापिस लौटना होगा।नीम तले की पीली रोशनी में होने वाली दावत की रात के एक वर्ष बाद रुड़की इंजीनियरिंग कॉलेज के एम ई करनेवाले छात्रों के हॉस्टल में; जिनमें से एक कमरे में रमेश मामा दूसरे छात्र के साथ रह रहे थे। उनमें से एक छात्र टेबल फ़ैन के शॉर्ट कट होने के कारण उससे चिपका मिला था। ये काला चश्मा लगाए गोरे रमेश मामा ही थे; जो काले पंखे से चिपके पाए गए थे, मृत।

***

लघु कथा

पश्चाताप

डॉ. चंद्रेश कुमार छतलानी

उसका दर्द बहुत कम हो गया, इतनी शांति उसने पूरे जीवन में कभी अनुभव नहीं की थी। रक्त का प्रवाह थम गया था। मस्तिष्क से निकलती जीवन की सारी स्मृति एक-एक कर उसके सामने दृश्यमान हो रही थी और क्षण भर में अदृश्य हो रही थी। वह समझ गया कि मृत्यु निकट ही है।

वह जीना चाह कर भी आँखें नहीं खोल पा रहा था। असहनीय दर्द से उसे छुटकारा जो मिल रहा था।

अचानक एक स्मृति उसकी आँखों के समक्ष आ गई, और वह हटने का नाम नहीं ले रही थी। मृत्यु एकदम से दूर हो गई, वह विचलित हो उठा। उसकी आँखों में स्पंदन होने लगा, एक क्षण को लगा कि आँसूँ आएँगे, लेकिन आँसू बचे कहाँ थे? मुँह से गहरी साँसें भरते हुए उसने उस विचार से दूर जाने के लिए धीरे-धीरे आँखें खोल दीं।

उसके सामने अब उसका बेटा और बहू खड़े थे। डॉक्टर ने बेटे को उसकी स्थिति के बारे में बता दिया था। उसकी आँखें खुलते ही बेटे के चेहरे पर संतोष के भाव आए, और उसके हाथ को अपने हाथ में लेकर कहा, 'पापा, आपकी बहू माँ बनने वाली है।'

'मेरा... समय.. आ... गया है...!' उसने लड़खड़ाती धीमी आवाज़ में कहा।

'पापा आप वादा करो कि आप फिर हमारे पास आओगे...हमारे बेटे बनकर...' बेटे की आँखों से आँसू झरने लगे।

वह बहू की ओर देख कर मुस्कुराया, फिर बेटे को इशारे से बुला कर कहा, 'तू भी... वादा कर ... मैं बेटे की जगह... बेटी बनकर आया... तो मुझे मार मत देना...!'

कहते ही उसके सीने से बोझ उतर गया। उसने फिर आँखें बंद कर लीं, अब उसे पत्नी की रक्तरंजित कोख दिखाई नहीं दे रही थी।

***

मुर्दों के सम्प्रदाय

'पापा, हम इस दुकान से ही मटन क्यों लेते हैं? हमारे घर के पास वाली दुकान से क्यों नहीं?' बेटे ने कसाई की दुकान से बाहर निकलते ही अपने पिता से सवाल किया।

पिता ने बड़ी संजीदगी से उत्तर दिया, 'क्योंकि हम हिन्दू हैं, हम झटके का माँस खाते हैं और घर के पास वाली दुकान हलाल की है, वहाँ का माँस मुसलमान खाते हैं।'

'लेकिन पापा, दोनों दुकानों में क्या अंतर है?' अब बेटे के स्वर में और भी अधिक जिज्ञासा थी।

'बकरे को काटने के तरीके का अंतर है...' पिता ने ऐसे बताया जैसे वह आगे कुछ बताना ही नहीं चाह रहा हो, परन्तु बेटा कुछ समझ गया, और उसने कहा- 'अच्छा! जैसे मरने के बाद हिन्दू को जलाते हैं और मुसलमान को ज़मीन में दफनाते हैं, वैसे ही ना!'

बेटे ने समझदारी वाली बात कही तो पिता ने मुस्कुरा कर उत्तर दिया, 'हाँ बेटे, बिलकुल वैसे ही।'

'तो पापा, यह कैसे पता चलता है कि बकरा हिन्दू है या मुसलमान?'

यह प्रश्न सुन पिता चौंक गया, जगह-जगह पर दी जाने वाली अलगाव की शिक्षा को याद कर उसके चेहरे पर गंभीरता सी आ गई और उसने कहा- 'बकरा गंवार सा जानवर होता है, इसलिए उसे हिन्दू कसाई अपने तरीके से काटता है और मुसलमान कसाई अपने तरीके से। सच तो यह है कि कटने के बाद जब बकरा मरता है उसके बाद ही हिन्दू या मुसलमान बनता है... जीते-जी नहीं।'

***

संपर्कः 3 प 46, प्रभात नगर, सेक्टर - 5, हिरण मगरी, उदयपुर (राजस्थान) - 313002
ईमेलःchandresh.chhatlani@gmail.com
फोनः 99285 44749

मजनू का टीला

नीरज नीर

झारखण्ड के कोडरमा जिले के अंतर्गत एक सुदूर गाँव शिवपुर में जन्में नीरज नीर, राँची विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में स्नातक, सम्प्रति भारत सरकार की सेवा में केन्द्रीय जी एस टी विभाग में बतौर अधीक्षक कार्यरत एवं रामगढ़ में पदस्थापित हैं। विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में निरंतर कविताओं एवं कहानियों का प्रकाशन। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से कविताओं एवं कहानियों का प्रसारण। काव्य संग्रह 'जंगल में पागल हाथी और ढ़ोल' के लिए महेंद्र स्वर्ण साहित्य पुरस्कार।
संपर्क: आशीर्वाद, शुभ गौरी एन्क्लेव के पीछे, बुद्ध विहार, पो ऑ - अशोक नगर, राँची 834 002, झारखण्ड।
ईमेल: neerajcex@gmail.com
मोबाइल:08797777598

उस रात बिजली नहीं थी सो पूरी रात गर्मी के कारण पसीने से तरबतर होकर करवट बदलते कटी थी। सुबह में खिड़की से आती ठण्डी हवा के झोंकों ने सुकून के अहसास से तर कर दिया एवं नींद के सागर ने अपने गहरे तल में मुझे डुबो लिया अहले सुबह जब मैं नींद में ही था कि फ़ोन की घंटी बज उठी।

'कौन?' मैंने फ़ोन उठाकर पूछा।

'हम बड़ा बाबू के बेटा हैं, हरिपुर से।'

हरिपुर मेरे गाँव का नाम है और बड़ा बाबू मेरे गाँव का ग्रामीण।

'हाँ बोलो क्या हुआ ?' मैंने उनींदे ही पूछा।

दीदी को लेकर आए हुए हैं यहाँ कांके, डॉक्टर से दिखाने के लिए। पापा बोले थे कि रांची जाने पर आपसे बात कर लेने के लिए' उधर से कहा गया।

'क्या हो गया तुम्हारी दीदी को ?' मैंने पूछा।

हालाँकि यह प्रश्न बेमानी ही था; क्योंकि कांके अपने पागलखाना के लिए जगत् प्रसिद्द है और अगर कोई बाहर से कांके आया है तो इसका अर्थ यही है कि उसे कोई मानसिक व्याधि है या सीधे-सीधे कहें तो उसे पागलपन के दौरे पड़ते हैं।

रांची का तापमान गर्मियों में कम रहने के कारण यह पहले संयुक्त बिहार की ग्रीष्म कालीन राजधानी हुआ करता था। यहाँ का पागलखाना पहले अंग्रेज़ों के लिए आरक्षित था। किसी गोरे साहब को जब कोई मानसिक व्याधि इस भारत भूमि पर घेर लेती थी तो उनके इलाज के लिए रांची के कांके में पागल खाना की स्थापना की गई थी। आज़ादी के पूर्व भारतीयों को इधर झाँकने की भी मनाही थी। अंग्रेज़ों को डर था कि कहीं भारतीयों को पता न चल जाए कि अंग्रेज़ भी पगलाते हैं। आज़ादी के बाद आम जनों के लिए इसे खोल दिया गया। यहाँ की आवो-हवा को देखते हुए बाद में एक से अधिक मानसिक अस्पतालों की स्थापना रांची में हुई एवं कुछ प्राइवेट संस्थान भी इस कार्य में लग गए।

'दीदी पागल हो गई हैं।' मेरे प्रश्न के उत्तर में उधर से कहा गया।

****

उसकी उम्र तब 12-13 वर्ष रही होगी ..... दुबली पतली लड़की, जैसी गाँव की लड़कियाँ अमूमन होती हैं। शरीर पर सस्ते कपड़े एवं पहाड़ी नदी सी अल्हड़। जब जिधर मन आया चली गी। कभी इस भाभी के घर तो कभी उस चाची के घर। बैशाख की दोपहर में बाग़ में आम के टिकोरे चुनती तो सावन में झूले झूलती, सर्दियों में बाल बिखराए धूप में बैठती और अपनी माँ से ढील हेरवाती।

जब मैंने उसे पहली बार देखा था तो वह अपनी माँ के साथ मेरे घर आई थी एवं ओसारे से छत के तरफ जाती सीढ़ियों पर चुपचाप बैठी थी। उसकी माँ घर के किसी काम में मेरी माँ का हाथ बँटा रही थी और वह अकेली बैठी टुकुर-टुकुर दोनों को देख रही थी।

उस समय गाँव में मेरी माँ घर में अकेले ही रहती थी। ऐसे में आस-पड़ोस की औरतें जब आकर उसके पास बैठती थी तो उसको भी अच्छा लगता था। वह सभी को चाय पिलाती। कई औरतें तो चाय पीने के चक्कर में ही उससे मिलने आ जाया करती थीं। ऐसे ही औरतों में एक औरत थी जो उस लड़की की माँ थी। सुविधा के लिए उस लड़की का नाम सुनीता रख लेते हैं।

सुनीता के पिता का नाम तो वैसे कुछ और ही था पर गाँव के लोग उसे बड़ा बाबू कहते थे। बड़ा बाबू एक सीधा-साधा किसान था। उसे मैंने जब भी देखा था भैंस चराते हुए ही देखा था। लुंगी को घुटना से ऊपर लपेटे, देह पर गंजी और हाथ में एक पतली छड़ी जिससे वह भैंसों को नियंत्रित करता था। यही उसकी स्थायी बेशभूषा थी। पढ़ा-लिखा कम था लेकिन मजाल है कि वह गाँव में किसी की बात मान ले। चूँकि वह किसी की बात नहीं मानता था, इसीलिए शायद लोग उससे चिढ़कर उसे बड़ा बाबू कहते थे।

बड़ा बाबू का परिवार छोटा ही था। एक बेटी सुनीता और दो बेटे। बड़ा बाबू का ग़ुरबत से स्थायी नाता था। उसके दो भाई गरीबी और बीमारी में एड़ियाँ रगड़-रगड़ कर कुँआरे ही स्वर्ग सिधार चुके थे। एक इसी की शादी हुई थी। दो तीन सालों के दौरान मैंने उस लड़की को तीन चार बार देखा था, हमेशा वैसे ही अल्हड़, मस्त-मौला, दुनिया से बेखबर, बेपरवाह। एक बार मैंने उससे पूछा 'पढ़ती हो?' तो उसने शरमा कर कहा था 'हाँ'

'किस क्लास में?'

'सातवीं में' इतना कहकर वह खिलखिलाकर हँस पड़ी और इससे पहले कि मैं कुछ और कहूँ भाग गई। वह जब भी हँसती तो खिलखिला कर हँसती थी।जैसे बहुत सारी कलियाँ एक साथ चटक कर फूल बन रही हो, कई सितार एक साथ बज उठे हों।

एक दिन अचानक उसे नव ब्याहता के रूप में देखा, नई लाल साड़ी, माँग में सिन्दूर, हाथों में लाल चूड़ियाँ। मेरे घर के ओसारे में अपनी माँ के साथ बैठी थी।

मुझे आश्चर्य हुआ-'अरे इसकी शादी हो गई!' मेरे मुँह से बेसाख्ता निकला। मुझे देखकर वह शर्मा गई और हँसकर मुँह दीवार की ओर कर लिया।

'हाँ बाबू शादी कर देलथिन एकर' उसकी माँ ने कहा। उसकी माँ की भाव भंगिमा से ऐसा लगा था कि वह इस शादी से बहुत खुश नहीं है।

तो जैसा स्पष्ट है कि उसकी शादी हो गई थी। इसमें कोई बड़ी बात नहीं थी कि गाँव में किसी कम उम्र लड़की की शादी हो गई थी। मैंने गाँव में कई बालिका बधुएँ पहले भी देखी थीं। लेकिन इस कहानी में बड़ी बात जो हुई वह यह कि उसकी शादी एक बूढ़े आदमी से कर दी गई थी।

सुनीता की शादी जिस आदमी से की गई थी वह हाई स्कूल का मास्टर था और उसकी उम्र का अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता था कि उसकी पहली पत्नी की उम्र सुनीता की माँ से ज़्यादा थी, तो अब यह भी स्पष्ट हो गया है कि वह पहले से शादी शुदा था एवं उसके बाप से बड़े उम्र का था या उसी की उम्र का था। वह बेऔलाद था एवं उसने बच्चे के लिए ही यह शादी की थी और इसी कारण से उसकी पहली पत्नी ने उसे दूसरी शादी की मंजूरी दे दी थी। खैर, कारण जो भी हो पर मुझे यह बात बड़ी अजीब लगी कि एक छोटी सी लड़की की शादी एक बूढ़े से कर दी गई। उसपर क्या गुज़रती होगी, उसके मनोभावों को मैं महसूस करने की चेष्टा करता और परेशान हो उठता। मैंने उसके पति को देखा था। वह एक मोटा सा आदमी था। धोती और कुर्ता में एक टिपिकल पुराना मास्टर लग रहा था।

नई ब्याहता लड़कियाँ बहुत ख़ूबसूरत लगती हैं, सुबह की तरह, ताज़ा शीतल। सुनीता भी शादी के बाद बहुत सुन्दर लग रही थी। जब मैंने उसे देखा था तो शादी के बाद वह ससुराल से लौट कर आ चुकी थी। देह पर माँस चढ़ गया था। नितम्बों और छातियों की गोलाई उसके सौन्दर्य को और बढ़ा रहे थे।

लेकिन पंद्रह वर्षीय लड़की का ब्याह पचपन वर्षीय व्यक्ति से कर देना बड़ी अजीब बात थी और जैसा कि स्वाभाविक है गाँव में इसकी खूब निंदा भी हो रही थी। बड़ा बाबू को तो लोग पहले ही नीम पागल समझते थे अब तो पूरा ही समझने लगे। लेकिन बड़ा बाबू ने कब किसी की बात सुनी या समझी थी? सबसे बड़ी बात यह कि वह स्वयं को बहुत समझदार भी समझता था।

एक दिन जब मुझसे रहा नहीं गया तो मैंने सुनीता के बाप से पूछ ही लिया कि आख़िरउसने ऐसा क्यों किया, क्यों सुनीता को एक बूढ़े खूसट के साथ बाँध दिया? उसका जवाब बड़ा चौकाने वाला था। उसने कहा कि चूँकि सुनीता की जिससे शादी हुई है वह हाई स्कूल का मास्टर है तो वह सुनीता के दोनों भाइयों को पढ़ने में मदद करेगा। सुनीता के बाप का कहना था कि गाँव का माहौल बहुत खराब है, यहाँ रहकर तो कोई पढ़ लिख नहीं सकता। ऐसे में उसके बेटों के बेहतर भविष्य के लिए उसे गाँव से बाहर भेजना ज़रूरी है और इससे बेहतर क्या होगा कि वे अपनी बहन के यहाँ रहेंगे और उनके बहनोई उनको पढ़ाएँगे।

'तो क्या बेटों का भविष्य अच्छा करने के लिए अपनी बेटी की आप बलि दे देंगे?' मैंने पूछा।

बड़ा बाबू इस बात पर बिगड़ गया। वैसे भी उसको किसी की सलाह सुनने या लेने की आदत तो थी नहीं। जिस ख़ास लोभ में अंधे होकर उसके बाप ने उसे बूढ़े के पल्ले से बाँधा था वह कभी पूरा नहीं हुआ। उसके बेटे वहीं गाँव की गलियों में गुल्ली डंडा खेलते रहे और वह खुद भैंस दूहता रहा। उसके बेटों को तो पढ़ने- लिखने से कोई मतलब कभी था ही नहीं और उसके दामाद

ने भी इस कार्य में कोई रुचि नहीं दिखाई।

सुनीता के दिल पर इस बीच क्या गुज़रती रही या उसने उस बूढ़े के साथ कैसे सामंजस्य बिठाया यह कभी किसी को पता नहीं चला। चूँकि उसने कभी अपने पति के बारे में किसी से कोई शिकायत नहीं की, इसलिए किसी के लिए कोई अनुमान लगाना संभव नहीं हुआ; जबकि आम तौर पर होता ये था कि लड़की ब्याह के बाद जब लौट कर मायके आती थी तो उससे पहले उसके पति की शिकायतें वहाँ पहुँची रहती थीं। तो क्या वह अपने बूढ़े पति के साथ खुश थी, मैं कभी-कभी सोचता।

जब भी मैंने उसके चेहरे पर उसके मनोभावों को पढ़ने की चेष्टा कि एवं उसके माथे पर दु:ख एवं यंत्रणा के गहरे भावों को ढूँढ़ने की कोशिश की तब मैं असफल ही रहा। होता यूँ रहा कि जब भी मैंने ऐसा करने की चेष्टा की पता नहीं किस तरह से उसे इसका पता चल जाता एवं वह हँसकर अपना चेहरा दूसरी ओर कर लेती।

सुनीता की सौतन ने यद्यपि अपने पति को शादी की इजाज़त तो दे दी थी, लेकिन थी तो आख़िर सौतन ही ... जब पहली बार सुनीता अपने ससुराल गई तो उसी समय उसकी सौतन ने उसे उसकी औकात बता दी थी कि उसे वहाँ क्यों लाया गया था।उसे जता दिया गया कि वह वहाँ मालकिन बनने के ख्वाब ना देखे। छोटी सी 14-15 साल की लड़की मालकिन बनने के ख्वाब तो खैर क्या देखती लेकिन उसके दिल में भी अन्य लड़कियों की तरह ही बहुतेरे ख्वाब थे। उसके सपनों में भी किसी नौजवान के साथ मोटर साइकिल पर बैठकर घूमने की इच्छा थी।उसकी भी चाहत थी कि कोई उसकी उम्र का लड़का उसे प्रेम से देखे और वह शरमाकर नज़रें नीची कर ले। उसके साथ सिनेमा देखने जाए।

एक दो बार ससुराल जाने के बाद सुनीता केमुँह में भी जुबान हो गई। उसने अपनी सौतन को उसी की भाषा में जवाब देना शुरू किया। कहते हैं कि एक बार जब उसकी सौतन ने उस पर हाथ उठाने की कोशिश की तो उसने उसको झोंटिया दिया। नतीजा यह हुआ कि अब एक म्यान में दो तलवार का रहना मुश्किल हो गया। मास्टर साहब बगल के गाँव में ही नौकरी करते थे। लेकिन जब दोनों पत्नियों का एक साथ रहना मुश्किल हो गया तो रास्ता यह निकाला गया कि पुरानी पत्नी पूर्ववत अपने गाँव में रहेगी एवं नई वाली यानि सुनीता शहर में रहेगी जो वहाँ का जिला मुख्यालय था एवं छोटा सा शहर था। सुनीता को भी इससे कोई आपत्ति नहीं थी। भला आज शहर में कौन नहीं रहना चाहता है? फलत: शहर में नया मकान किराए पर ले लिया गया एवं सुनीता वहाँ निवास करने लगी।

मास्टर साहब चूँकि अपने गाँव के निकट ही नौकरी करते थे अत: उनका रोज़ शहर आना संभव नहीं था। इस तरह सुनीता शहर में अकेले रहने लगी। मास्टर साहब कभी कभार सप्ताह में एक दिन के लिए शहर आ जाते थे। सुनीता ने वहाँ रहते हुए अपना पूरा ध्यान अपने साज-श्रृंगार और शौक मौज पर देना शुरू कर दिया। खूबसूरत तो वह थी ही। अब निश्चिंत होकर खाना और साज-श्रृंगार का नतीजा यह हुआ कि उसकी सुन्दरता मुहल्ल्ले में आग लगाने लगी। वह एक ऐसे फूल की तरह हो गई, जिस पर सभी भँवरे बैठना चाहने लगे। उसके घर के इर्द-गिर्द मजनुओं की टोलियाँ मंडराने लगीं। सुनीता भी इस बात का मज़ा लेने लगी। उसे भी अच्छा लगने लगा कि कोई उसकी उम्र का लड़का उसके एक दीदार के लिए उसकी खिड़की को घंटों ताका करता है। बाज़ार जाती तो सभी के नज़रों के आकर्षण का केंद्र बन जाती।

सुनीता जहाँ रहती थी उसके सामने सड़क के दूसरी तरफ एक छोटा सा मैदान था, जिसे टीला वाला मैदान कहते थे। उस मैदान के कोने में एक टीला था, जिसपर एक पीपल का पेड़ था। मैदान में बच्चे खेला करते थे एवं जो नहीं खेलते थे या जो खेलकर थक जाते थे वे धूप से बचने के लिए पीपल की छाँव का आसरा लिया करते थे। टीले पर पीपल की छाया के तले बहुत ही शीतल हवा बहा करती थी, जिसके नीचे शहर के कुत्ते, गंजेड़ी, भिखारी और साधू-फ़क़ीर हमेशा अलसाए पड़े रहते थे। सुनीता के घर की खिड़की ठीक टीला की दिशा में ही खुलती थी।

टीला वाला मैदान में पहले जहाँ बच्चे खेला करते थे, वहाँ अब बड़े खेलने आने लगे थे। नौजवान लौंडों की भीड़ ने कुत्तों, गंजेड़ियों, भिखारियों आदि को बेदखल कर दिया था। अब वे वहाँ बैठकर सिगरेट धूँकते एवं खिड़की पर नज़र गड़ाए रहते। सुनीता भी उन्हें निराश नहीं करती। बीच में कभी-कभी खिड़की पर आकर खड़ी हो जाती, कभी वहाँ खड़ी होकर बाल बनाती तो कभी श्रृंगार पटार करती। उसके खिड़की पर नज़र आते ही लड़के आहें भरने लगते। बैटिंग कर रह लड़का टाइगर पटौदी की तरह उसी की खिड़की के ऊपर छक्का लगाने का प्रयास करता, ये अलग बात है कि इसी चक्कर में वह आउट हो जाता।

धीरे-धीरे वह टीला मजनू का टीला के नाम से मशहूर हो गया। मास्टर साहब की जो इच्छा शादी के बाद पूरी नहीं हुई थी या जिस तथाकथित घोषित उद्देश्य से उन्होंने शादी की थी वह सुनीता के शहर आने के बाद पूरी होने वाली थी। सुनीता गर्भवती हो गई। आस पड़ोस की औरतें कहतीं 'इ केकर गर्भ है से तो सुनीतवो के नैं पता होतै। न्यू नगर के कोई आदमी बचल नैं होतै जे बहती गंगा में डुबकी लगा के पुंग नै गेलै होत। गाँव की औरते कहती मस्टरवा के तो खाली नाम होतै काम तो कोय औ कर गेलै होत। भतार तो खाली नाम खातिर रखले है।' जितनी मुँह उतनी बातें, लेकिन सुनीता ने किसी की परवाह नहीं की सबको अपने ठेंगे पर रखती और मस्त रहती।

मास्टर साहब तक भी सारी बातें पहुँचती। मास्टर साहब योजनाएँ बनाते कि इस बार जब वे शहर जाएँ गे तो सुनीता से जवाब तलब करेंगे। लेकिन जब वे सुनीता के पास आते तो मोम की तरह पिघलने लगते। उसके सौन्दर्य पाश में इस तरह गिरफ्तार हो जाते कि उनके मुँह से एक भी बकार नहीं निकलता। जल्दी से जल्दी वे सुनीता को बिस्तर में दबोच लेना चाहते थे। सुनीता भी मास्टर साहब की इस मानसिकता को भली-भाँति समझती थी और जब तक उनके जाने का समय न हो जाए कोई न कोई बहाना करके उनको दुरदुराए रहती।

उचित समय पर सुनीता ने एक सुन्दर बालक को जन्म दिया। मास्टर साहब को अपना वारिस मिल गया। उनका मनोरथ पूरा हुआ।

बच्चे के जन्म के बाद मास्टर साहब सुनीता को अपने गाँव ले गए। शहर में रहते

हुए तो सुनीता ने किसी की टीका टिप्पणी की कभी कोई परवाह नहीं की थी। शहर कोई उसके सामने बोलने की हिम्मत भी नहीं करता था। किसी के पास वहाँ इतनी फुर्सत भी नहीं होती थी। सब मुँह के पीछे ही बात करते थे। परन्तु गाँव में तो मानों किसी को कोई और काम ही नही था। घर से बाहर तक सब फ्री ही बैठे थे।

एक दिन सुनीता के बच्चे को तेल मालिश करते हुए उसकी सास ने कह दिया 'पता नैं केकर बीज के पौधा है जेकरा हम सींच रहलिऐ।'

'आप मत सींचिए माँ जी, भगवान् ने हमको हाथ पैर दिया है हम सींच लेंगे। और ये (मास्टर साहब के बारे में इशारा करते हुए) किसके बीज थे इसकी जाँच हुई थी या नहीं?' सुनीता ने बिना समय गंवाए जवाब सास के मुँह पर उलट दिया।

इसके बात तो सास अगिया बैताल हो गई। जैसे गर्म तेल देह पर पड़ जाने से आदमी छिलमिलाने लगता है वैसे ही वह छिलमिला गई। अपना सर दीवारों से पटकने लगी, छाती पीटने लगी एवं गाँव की गलियों में पागलों की तरह दौड़ने लगी। वह चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगी कि उसकी बहू ने उसके चरित्र पर लाँछन लगाया है। 'हे धरती तू फट जा हम समा जाएब। हमरो सीता माई नियन अपना गोदी में ले ला ... हे धरती।' जिसने भी बुढ़िया की हालत देखी सब सुनीता पर थू-थू करने लगे। एक दो चाचीनुमा महिलाएँ सुनीता को समझाने उसके घर भी आ गईं।

'उन्होंने कौन सा मेरे चरित्र का सम्मान किया था' सुनीता का स्पष्ट कहना था। बिना किसी सबूत के कैसे कहा जा सकता है कि कौन किसका बीज है। लेकिन गाँव के अधिकाँश लोग, जिनमें महिलाएँ अधिक संख्या में थी, सुनीता को ही दोषी मान रहे थे। उनके मन में यह धारणा पहले से भी थी कि सुनीता का यह गर्भ कहीं से उधार लिया हुआ है।

एक बूढ़ी औरत ने कहा 'जब गाँव में रहैत हलै तब काहे नैं बच्चा हो गेलै और शहर जैते पेट फुला लेलकै।'

'दूसर के कोठी के चावल के स्वाद पता चलिए जा है जी' दूसरी ने कहा।

सुनीता की सौतन ने सुनीता के पीछे गाँव में सबके कान भरे हुए थे। किसी व्यक्ति के पीछे अगर उसके बारे में कोई बात बार-बार कही जाए तो वही बात लोगों को सत्य लगने लगती है।

सास जब गाँव की गलियों में पागलों की तरह घूम रही थी तो उसकी सौतन उसे घर वापस लाने का नाटक करती रही। लेकिन जो बात सास नहीं कह पा रही थी, वह बात वही सबको नमक मिर्च लगाकर बता रही थी। थोड़ी देर में आख़िर कर पूरा गाँव सुनीता के ससुराल के अन्दर बाहर जमा हो गया। महिलाएँ घर के अन्दर आ गईं। कुछ महिलाएँ सास को पकड़ कर बैठी थी और कुछ महिलाएँ सुनीता को भला बुरा कहने में लगी थीं। सुनीता की सास ऐसे व्यवहार कर रही थी जैसे घर में कोई मातम हुआ हो। पुरुष घर के बाहर जमा थे एवं मास्टर साहब की मर्दानगी को चुनौती देते हुए उन्हें ललकार रहे थे कि अगर उनकी बीबी ने ऐसा कहा होता तो वे तो उसे ज़िन्दा गाड़ देते। लेकिन मास्टर साहब को बुढ़ौती में जवान बीबी मिली है, इसीलिए अपनी माँ की इज़्ज़त उछाले जाने पर भी चुपचाप तमाशा देख रहे हैं।

मास्टर साहब इन सब घटनाक्रम में अब तक निर्विकार ही थे, यद्यपि भीतर से वे बहुत परेशान थे। वे गाँव वालों की कुटिलता से भली-भाँति परिचित थे। वे अगर आज सुनीता के साथ खड़े नहीं हुए तो गाँव वाले जीवन भर उनके बच्चे को हरामी ही कहेंगे। वे जानते थे कि उनके बच्चे को उसका अधिकार इस गाँव में मिले इसके लिए सुनीता का साथ देना ज़रूरी है, लेकिन वे अपनी पहली पत्नी और माँ के विरुद्ध कुछ बोलने का साहस नहीं कर पाए थे। इसी का नतीजा था कि आज बात बहुत बिगड़ गई थी। घर बाहर कोहराम मचा हुआ था।

सुनीता की सौतन घर में जमा हुई महिलाओं के लिए चाय बना लाई। वह चाह रही थी कि यह तमाशा बंद ना हो और अधिकतम फजीहत आज सुनीता की हो जाए। उसने अपने पति को शादी की इजाज़त तो दे दी थी लेकिन पति को बाँटने का दर्द वह कभी सहन नहीं कर पाई।

वह अक्सर सुनीता के बारे में कहती थी "इ लौंडी छौंड़ी हमरा बराबरी करतै।"

उसे यह बात भी बहुत सालती थी कि एक बार सुनीता ने उस झोंटा पकड़ के मारा था। आज सबका बदला लेने का दिन आया था तो वह इसका पूरा फायदा उठा लेना चाहती थी।

सुनीता अपनी बात पर दृढ थी। वह अपने निश्चय से टस से मस नहीं हो रही थी। कुछ युवा महिलाओं ने उसे समझाने का प्रयत्न किया कि वह जाकर सास का पैर पकड़ ले और माफ़ी माँग ले।

लेकिन वह मानने के लिए तैयार नहीं थी। उसने कोई बात ग़लत नहीं कही है। उसकी सास के पास क्या सबूत है कि उसके गोद का बच्चा उसके पति का नहीं है और जब बिना सबूत के उसपर आरोप लग सकता है तो यही आरोप तो उसकी सास पर भी लग सकता है। उसने सबके सामने स्पष्ट रूप से कह दिया।

घर में महिलाओं का शोर गुल बढ़ता जा रहता था। घर में जमा महिलाएँ चाय पीकर उसकी सौतन के प्रति कृतज्ञता महसूस कर रही थी। इस बात का लाभ लेते हुए उसकी सौतन तमक कर आगे बढ़ी और "इ छिनार ऐसे नैं मानतौ" कहते हुए सुनीता का बाल पकड़ कर उसे खींचने लगी।

सुनीता दर्द से छिलमिला गई लेकिन उसने वक्त की नज़ाकत को देखते हुए प्रतिवाद नहीं किया।वह दर्द से कराह उठी उसके आँखों में आँसूँ आ गए। उसे विरोध नहीं करता देख उसकी सौतन का हौसला और बढ़ गया। उसने उसका बाल पकड़ कर उसको ज़मीन पर गिरा देने की कोशिश की। सुनीता ने बचने की कोशिश में सौतन का हाथ पकड़ कर खींचा और इसी गुत्थमगुत्थी में उसकी सौतन का पाँव फिसल गया और आँगन में गड़े चापाकल के हेड से उसका सर टकरा गया। चापाकल का हेड लोहे का बना होता है। खून का फव्वारा फूट निकला।

"हाय हाय .... मार डाललक रे" . उसकी सौतन चीत्कार कर उठी। चारों ओर हाहाकार मच गया। खबर घर के आँगन से बाहर आते-आते यह बन गई कि सुनीता ने मार कर सौतन का सर फोड़ दिया है।

अब तो बाहर बैठे मास्टर साहब पर थू-थू होने लगी। उनके पुरुष होने को संदेह के बड़े घेरे में रख दिया गया। यह घोषणा की जाने लगी कि सुनीता पागल हो गई है, वह भी हिंसक पागल और अब वह किसी की

हत्या भी कर सकती है। मास्टर से तो कुछ बन नहीं पड़ रहा है।गाँव के लोगों को ही अब कुछ करना होगा।

दो अति उत्साही नौजवानों ने जो मास्टर साहब के चचेरे भाई थे, ने खुद को आत्मघाती दस्ते के रूप में प्रस्तुत किया। वे जाएँगे घर के अन्दर और इस पागल सिंहनी को वश में करके कमरे में बंद कर देंगे।उन्होंने घोषणा की।

गाँव के सभी लोगों ने इन दो नवोदित नायकों के इस प्रस्ताव का हर्षघोष के साथ स्वागत किया। मास्टर साहब ने घोर अनिच्छा से इसकी इजाज़त दी। दोनों नौजवान सीना ताने घर के अन्दर प्रवेश कर गए। मानों किसी बड़े अभियान पर निकले हों।

घर में जमा महिलाओं की भीड़ ने दोनों को रास्ता दे दिया। सुनीता ओसारे के एक कोने में मुँह छुपाए बैठी चुपचाप रो रही थी। दोनों लड़कों ने उसके पास पहुँच कर उसके दोनों बाहें पकड़ लीं। वह चुपचाप निर्विरोध उठकर खड़ी हो गई। दोनों मिलकर उसे एक कमरे की ओर धकेलने लगे।

'हाँ बंद करो इस पागल को, बंद करो, बंद करो....'' पीछे से महिलाओं की भीड़ हिंसक रूप से चिल्ला रही थी। दोनों लड़के सुनीता को धकेलते हुए कमरे के अन्दर ले गए। मास्टर साहब का घर पुराने किस्म का था जिसके कमरों में खिड़कियाँ नहीं होने के कारण कमरों में दिन में भी अँधेरा ही रहता था। कमरे के अन्दर ले जाने के बाद दोनों लड़कों में से एक ने अचानक से सुनीता की छाती को अपनी हथेली में दबोच लिया। इस अनायास घटना से सुनीता दर्द से बिलबिला उठी और उसने बचाव में उस लड़के को अपने हाथों के बल से धकेल दिया। लड़का लड़खड़ाया, कमरे में अँधेरा होने के कारण वह कुछ देख नहीं पाया एवं कमरे के एक किनारे रखे बड़े लोहे के ट्रंक के कोने से उसका सर टकरा गया। उसके माथे से खून की धारा फूट पड़ी। दूसरे लड़के ने सुनीता को दबोचने की कोशिश की तो उसने उसके हाथ में अपना दाँत गड़ा दिए। दोनों लड़के चिचियाते हुए कमरे से बाहर भाग आए।

बाहर अब यह साबित हो गया कि सुनीता पूर्णत: हिंसक हो गई है। जब दो तगड़े जवान लड़कों का उसने यह हाल कर दिया तो महिलाओं की क्या बात।

'हाँ भैया पागलों की ताकत के क्या कहने। पागल में हाथी का बल हो जाता है।' एक बुज़ुर्ग ने अपने जीवन अनुभव के सार को अपने पोपले मुँह में चबाते हुए गंभीरता पूर्वक उगल दिया।

घर में जमा महिलाएँ धीरे-धीरे अब वहाँ से खिसकने लगीं। उन्हें अब इस बात का डर सताने लगा कि कहीं उसका भी हाल वैसा ही न कर दे।

घर के बाहर का शोर गुल अब गहरी चिंता में बदल गया था। इस हिंसक पागल से कैसे निबटा जाए इस पर गंभीर चिंतन प्रारम्भ हो गया। मास्टर साहब के बुज़ुर्ग चचा जी आख़िरकार इसका हल लेकर आए।

'हम इस पागल के लिए काहे चिंतित होवें भाई? जिसका माल है वो जाने। खबर करो इसके बाप को कि आकर ले जाए।'

सब लोगों ने उनकी इस बात का ज़ोरदार समर्थन किया। एक जीती जागती औरत ''माल'' यानि कि सामान बताई जा रही थी। जैसे खराब सामान देने पर दूकानदार को वापस कर दिया जाता है वैसे ही औरत को उसके बाप को वापस करने पर पूरा समाज एक मत हो रहा था।

'उसका बाप ले जाकर क्या करेगा, अब तो ये हमारी ज़िम्मेवारी है न?'' मास्टर साहब ने मिमियाते हुए कहा।

'तो तुम का चाहते हो कि गाँव में इ पागल सबको मार डाले' चाचा जी गरजे। सबने उनके सुर में सुर मिलाया। सब मिलकर गरजे। मास्टर साहब दुबक गए।

सुनीता के बाप को खबर हो गई कि आपकी बेटी पागल हो गई है, आकर इसे ले जाइए नहीं तो यहाँ कुछ भी अनहोनी हो जाएगी।

सुनीता को उम्मीद थी कि उसका पति उसके पास आएगा और उसका साथ देगा। पर वह नहीं आया। परिवार एवं समाज के विरोध के सामने मास्टर साहब की हिम्मत जवाब दे गई थी।

सुनीता का बाप दो दिनों में आकर उसे ले गया। इन दो दिनों में सुनीता कमरे से बाहर नहीं निकली और न ही किसी ने उसके कमरे में जाने की हिम्मत की। दो दिनों तक लगातार कमरे में बंद रहने एवं रोते रहने के कारण उसका चेहरा रौद्र हो चुका था।

सुनीता जब अपने बाप के साथ अपने मायके हरिपुर पहुँची उसके पहले ही वहाँ खबर पहुँच चुकी थी कि सुनीता भयानक रूप पागल हो गई है एवं लोगों को मारकर सर फोड़ देती है और काट भी लेती है। सुनीता के गाँव पहुँचने पर उसके चेहरे के रौद्र रूप ने इस बात की तस्दीक भी कर दी।

अपने गाँव हरिपुर आने के बाद उसके माँ, बाप एवं भाइयों का व्यवहार उसके प्रति प्रेमपूर्ण नहीं था। उसके पिता यानि बड़ा बाबू उसी को दोषी मानते थे। उसकी माँ कहती कि इतना राजा घर में ब्याह देने के बाबजूद अपने फूटे भाग्य के करना सुनीता यह दिन देख रही है। भाइयों के उसके होने या नहीं होने से कोई मतलब नहीं था।

यहाँ आकर सुनीता बिलकुल अकेली हो गई थी। उसे सबसे ज़्यादा दु:ख इस बात को लेकर था कि उसके पति ने कभी पलटकर उसके बारे में नहीं पूछा था। गाँव में घर से बाहर निकलती तो औरतें घर का दरवाज़ा बंद कर लेतीं। बच्चे पत्थर मारकर भाग जाते। धीरे -धीरे वह भी चिड़चिड़ी हो गई एवं एकाध बार उसने भी जवाब में पत्थर उठाकर बच्चों के तरफ फेंक दिया। इसके बाद तो गाँव के लोगों ने बड़ा बाबू पर दवाब बनाना शुरू कर दिया कि अपनी पागल बेटी का इलाज कराओ। यह बच्चों को पत्थर फेंककर मार डालेगी।

एक दिन देर रात गए गहरी नींद के आगोश में समाए गाँव वालों की नींद किसी के ज़ोर-ज़ोर से रोने एवं गाने से टूटी।सुनीता आधी रात में रो रही थी और रोते हुए ज़ोर -ज़ोर से गाने लगी थी :

'रामा जेकरा ले जगलिय
उ निरमोहिया.... भेलै ना।'

इसके बाद तो गाँव वालों का दवाब सुनीता को कांके भेजने के लिए बढ़ गया। आज तक किसी की बात नहीं सुनने वाला बड़ा बाबू न जाने क्यों गाँव वालों की इस बात से सहमत हो गया। उसने गाँव के एक आदमी के साथ अपने एक बेटे को लगाया और बेटी को कांके भेज दिया।

फ़ोन आने के बाद मैं जल्दी-जल्दी तैयार होकर अपनी बाइक लेकर कांके पहुँच

गया। कांके मेरे घर से करीब पंद्रह बीस किलोमीटर दूर था। जब मैं कांके पहुँचा तो बड़ा बाबू का बेटा अस्पताल के बाहर ही मिल गया। मैंने पूछा कहाँ है बहन तुम्हारी? उसने इशारे से एक चबूतरे की तरह इशारा किया।

वहाँ पीपल के पेड़ की जड़ों को घेरकर एक बड़ा सा चबूतरा बना हुआ था, जिसके एक तरफ दीवार थी। पेड़ के नीचे शीतल हवा बह रही थी। इसपर कई लोग बैठकर डॉक्टर के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। वहीं कुछ आवारा कुत्ते और भिखारी भी अलसाए पड़े थे।

वहाँ जाकर मैंने देखा कि सुनीता चुपचाप उदास बैठी है। उसे मेरे वहाँ आने का कोई भान नहीं हुआ।

मैंने करीब जाकर पूछा 'कैसी हो?'

उसने अकचका कर मुझे देखा। और पहचानते ही शरमा कर मुँह दीवार की ओर कर लिया। वैसे ही जैसे तब कर लिया था जब मैंने कहा था कि अरे इसकी शादी हो गई।

'ठीक हैं, हमको क्या हुआ है?' उसने कहा।

'ठीक हो तो यहाँ क्यों आई हो?' मैंने पूछा।

'सब बोलते हैं कि हम पागल हो गए हैं', बहुत ही उदास स्वर में उसने कहा।

पहली बार मैंने उसके चेहरे की ओर गौर से देखा। मैं उसके चेहरे पर लिखे दर्द को बहुत आसानी से पढ़ पा रहा था।वह निर्विकार दूसरी ओर देखती रही।

सुनीता के भाई एवं उसके साथ आए आदमी ने बताया कि इलाज के बाद उन्हें शाम की बस से वापस घर लौट जाना है। मैंने कहा कि जब राँची आए तो मेरे घर चलो, एक दिन रुक कर जाना। जिसपर उन्होंने कहा कि नहीं उन्होंने बस की टिकट कटाई हुई है।

मैं थोड़ी देर वहाँ बैठा और फिर वापस चला आया।

बाद में मुझे पता चला कि उसका भाई उसे राँची में अकेले छोड़कर चुपचाप भाग गया था और उसके बाद से कभी उसका कोई पता नहीं चला। सुनीता न जाने कहाँ खो गई।

* * *

लघु कथा

करेले की बेल

किशोर दिवसे

धरती का सीना चीरकर बीजों ने धूप को देखा। किरणें और बीज आपस में मुस्कुराए और किरण ने बीज को अंकुरित होकर ऊपर आने का इशारा कर दिया। नन्ही कोंपलें खिलीं और किसलय भी इधर- उधर तकने लगे। कोंपलों ने किसलय से ताकीद कर दी थी। 'देखो ! किसलय ! हम बेलें हैं. नाज़ुक सी। हमें सहारा चाहिए होता है।'

'ठीक है। ... यह मेरी ज़िम्मेदारी है' किसलय ने कोंपलों को भरोसा दिलाया।

'सरिया बहन ! तुम मुझे आगे बढ़ने के लिए सहारा दोगी न!'

'अरे पगले ! तू मेरा छोटा भाई है। मुझपर विश्वास रख' किसलय से सरिया ने कहा। दूसरी बाजू में किसलय का पड़ोसी कैक्टस था। काँटे की तरह तीखा बोलने वाला। मासूम करेले की बेल से लटकते किसलय को कैक्टस ने भी सहारा देने का भरोसा दिया .. अगली सुबह करेले की बेल के दोनों हाथ सरिया और कैक्टस ने थाम रखे थे। किसलय, सरिया और कैक्टस आपस में हँसी - मज़ाक कर ही रहे थे कि आँगन में दो इंसानों को आपस में मारपीट पर उतारू देखकर सहम गए।

'एक इंच भी ज़मीन आगे बढ़ाकर बाउंड्री वाल बनाई, देखना काट कर रख दूँगा' एक इंसान ने दूसरे इंसान की गर्दन धर दबोची।

'ए सरिया और कैक्टस'

'...हाँ। .. बोलो न!...'

करेले की बेल से लटकते किसलय ने सरिया और कैक्टस के कानों में फुसफुसाकर कहा, 'हे भगवान् ! अच्छा हुआ न हम इंसान नहीं बने!'

तीनों ने झट से मुँह मोड़ लिया। इंसानों का बेहूदा बर्ताव देखकर किसलय की आँखों से आँसू लुढ़ककर करेले की कोंपल के सीने पर गिरे। कोंपल पल भर काँपी और किसलय के आँसुओं की बूँदों को मिट्टी ने चूम लिया।

* * *

ईमेल:kishorediwase0@gmail.com
मोबाइल: 09827471743

रक्षा-बंधन

विश्वम्भर पाण्डेय 'व्यग्र'

आज रक्षा-बंधन का अवकाश है। नौकरीपेशा रहमत की भी छुट्टी थी। अपने दैनिक कार्यों से निवृत होकर दोपहर अपने दोस्त प्रकाश की दुकान पर समय पास हेतू जाकर बैठ गया। वहाँ उसके परिचित व अपरिचित हिन्दू भाई आ-जा रहे थे। कुछ के हाथ खाली व कुछ के हाथ राखियों से सज्जित थे। पर उसने किसी के भी हाथ में एक से ज़्यादा राखी बंधी नहीं देखी। जब वह छोटा था तो उसके मित्रों, पड़ोसियों के हाथ राखियों से भरे-भरे दिखते थे पर तीन घंटे के अंतराल में आज उसे सिर्फ एक बालक का हाथ ही राखियों से भरा हुआ दिखाई दिया। रहमत ने उसे आवाज़ देकर बुलाया और पूछा- बेटे, क्या तुम्हारे इतनी सारी बहन हैं ? जो तुम्हारा पूरा हाथ राखियों से भरा हुआ है। उस बालक ने झेंपते हुए कहा- अंकल जी, मेरे तो एक भी बहन नहीं है, मैं तो अकेला हूँ। ये तो कल स्कूल में 'रक्षा-बंधन' उत्सव मनाया गया था इसलिए तब से ये मेरे हाथों में बँधी हुई है। रहमत बालक की बात सुनकर सन्न रह गया और ना जाने कहाँ खो गया। बहुत देर बाद मित्र प्रकाश के पुकारने पर उसकी तंद्रा टूटी...

* * *

संपर्क:कर्मचारी कालोनी, गंगापुर सिटी, स.मा. (राज.)322201
मोबाइल: 9549165579

संतरा

पोलिश कहानी - वलेरियन डोमेंस्की
अनुवादक- मलय जैन

जब मैं आठ साल की उम्र का था तो मैं पिसाइस नामक कस्बे में बिना अपने पिता के और हमेशा काम के बोझ से लदी-फदी रहने वाली अपनी माँ के साथ रहा करता था। मेरे पिता ने मेरी माँ को तभी छोड़ दिया था जब मेरी उम्र महज तीन साल की थी। लेकिन, अपने पिता के बिना रहते हुए भी मैं बेहद प्रसन्न था, खुश रहने के लिए मुझे किसी पिता की ज़रुरत थी भी नहीं और उनके बिना भी मेरा जीवन बढ़िया था। मैं फुटबॉल खेलता और दूसरे बच्चों के साथ विशाल मैदान और सेब, नाशपाती, चैरी, आलूबुखारे और अखरोट के विशाल पेड़ो वाले खूब बड़े बगीचे में खेलता था। कभी-कभार हम करीब में घास के मैदान तक भी घूम आते। पिसाईस यूँ न तो कोई शहर था न ही गाँव, तब भी उसमें पाँच छोटे-छोटे कारखाने थे और बहुत बड़ी संख्या में खेत भी थे।

मैं और मेरी माँ निचले तल पर खूब बड़े हाल वाले एक विशाल तीन मंज़िला मकान में रहते थे। जब भी बारिश के दिन होते या हालत खराब कर देने वाली सर्दी के दिन, हम सारे बच्चे उस बड़े हाल में ही जुट जाते और आपस में विकट बहस मुबाहिसा करते। मुझे ये तो याद नहीं है कि हमारी बहस किन मुद्दों को लेकर होती, लेकिन यह तय है कि उसका विषय राजनीति तो हरगिज नहीं होता था।

उस क्षेत्र कोई नदी या तालाब नहीं था, लेकिन खिड़की के ठीक सामने एक नहर अवश्य बहा करती थी जिसे वहाँ रहने वाले लोग बदबूरानी कहते थे। उस नहर में कंक्रीट की दीवारें थीं और तैरना तो संभव था ही नहीं। नहर का पानी हमारे टखनों तक ही आता था और बहुत हुआ तो घुटनों तक।

जब मैं थोड़ा बड़ा हुआ तो मैं दूसरे बच्चों के साथ थोड़ी दूरी तय कर पिसाइस सेन्ट्रल रेल्वे स्टेशन के पास स्थित एक तालाब तक जाने लगा। मुझे ध्यान है कि किसी ने एक छोटी सी डोंगी बना रखी थी जिसमें बैठकर हम बच्चे तालाब के एक छोर से दूसरा छोर नाप आते। यह बहुत ही मज़ेदार था। मुझे तैरना नहीं आता था लेकिन इत्तेफाक ही है कि कोई दुर्घटना नहीं हुई और मैं डूबा भी नहीं।

वहाँ आस-पास कोई बड़ा पहाड़ नहीं था, तथापि घड़ी के कारखाने के पास एक छोटी और ढलाव वाली पहाड़ी अवश्य थी। जहाँ हम तख्ते पर लुढ़कने का खेल खेलते थे। मेरा तख्ता मेरी माँ ने किसी जर्मन से खरीदा हुआ था जो पुराना भी था। एक दिन उस तख्ते पर चार लड़के एक साथ चढ़ गए और वह छोटे-छोटे टुकडों में टूट गया।

जैसा कि मैंने पहले बताया, मेरा सारा दिन अहाते में ही बीतता था, जबकि मेरी माँ पूरे 12 घण्टे कारखाने में लगी रहती थी। हम केवल सुबह मिलते और फिर शाम को छ: बजे के बाद या और भी देर से। इसलिए पिता की तो ज़रुरत वैसे ही नहीं थी, माँ की भी उतनी आवश्यकता नहीं थी। मुझे केवल तब ही माँ की आवश्यकता लगती जब भोजन का समय होता था।

मेरी जीवन शैली एक दम स्थिर थी जिसमें सब कुछ पहले से ही तय था और कोई भी

दो किशोर उपन्यास प्रकाशित
इसके अतिरिक्त राजकमल प्रकाशन से उपन्यास 'ढाक के तीन पात' 2015 में प्रकाशित ।
आउटलुक , नया ज्ञानोदय , व्यंग्य यात्रा , अट्ठहास , हरिगन्धा , समहुत आदि पत्रिकाओं में व्यंग्य प्रकाशित ।
पुरस्कार : साहित्य अकादमी मप्र की ओर से हाल ही में उपन्यास वर्ग में उपन्यास 'ढाक के तीन पात' पर बाल कृष्ण शर्मा नवीन पुरस्कार से सम्मानित ।
सम्प्रति : सहायक पुलिस महानिरीक्षक के पद पर पुलिस मुख्यालय , भोपाल में पदस्थ ।
सम्पर्क : सेक्टर K- H50 , अयोध्यानगर , भोपाल मप्र 462041
मोबाईल : 9425465140
ई मेल : maloyjain@gmail.com

अचंभित कर देने वाली बात नहीं थी। और फिर एक दिन अचानक मेरी माँ डाकखाने से एक पैकेट घर लेकर आई। मैंने हैरान होकर उस पैकेट को यूँ घूरकर देखा जैसे मैंने अपने जीवन में पहले कभी नहीं देखा हो।

"यह क्या है माँ ?"

"तू अंधा है क्या रे, ये पैकेट तेरे पापा ने डाक से भेजा है।"

"लेकिन क्यों? किस कारण से"

"क्या बेवकूफी का सवाल पूछते हो ? हम उसे खोलेंगे और देखेंगे कि भीतर क्या है।"

माँ ने पैकेट को खोला और हमने पाया कि उसमें मेरे पिता का लिखा हुआ एक पत्र व चॉकलेट थीं और गहरे पीले छिलके वाला कुछ-कुछ बड़े सेब से मिलते जुलते फल थे।"

मैंने पूछा, "ये कौन सा फल है?"

"मुझे नहीं पता न। मैंने पहले ऐसा फल कभी देखा भी नहीं है। लेकिन तुम्हारे पापा ने इसे चिट्ठी में संतरा बताया है।"

"ऐसा तो कोई फल मैंने सुना ही नहीं है। हो सकता है कि ये कुछ अलग ही प्रकार के सेब हों !"

"मुझे क्या पता", माँ ने दोहराया।

माँ ने मुझे एक चॉकलेट दी। उसे देखकर ऐसा लगा कि ये चॉकलेट बेल्जियम की थी। उसका स्वाद जबरदस्त था। और तो और उसके हर टुकड़े में कभी स्ट्रॉबेरी, कभी रसभरी, कभी नींबू तो कभी पिपरमेंट का स्वाद था।

न तो मुझे अपनी आँखों पे भरोसा हो रहा था और न ही अपने मुँह पर। ऐसी शानदार चॉकलेट तो मैंने कभी खाई भी नहीं थी। यूँ मेरी माँ कभी-कभार बल्कि साल में शायद दो बार बाज़ार से पोलिश मिल्क चॉकलेट लाया करती थी और तब मुझे लगता था कि मनुष्य द्वारा ईजाद की गई इतनी चीज़ों में उस पोलिश मिल्क चॉकलेट से बढ़कर कुछ भी नहीं था। और अब इतना बड़ा और शानदार सरप्राइज आ गया। बेल्जियम जैसे देश में पोलिश चॉकलेटों से भी सुस्वादु चॉकलेट बनती हैं!

"माँ क्या हम बेल्जियम चलें?"

"न, हम नहीं जा सकते और इसके अलावा वहाँ सारे लोग पोलिश नहीं, कुछ और भाषा बोलते हैं। हम वहाँ दूसरों से कैसे बातचीत कर पाएँगे?"

वलेरियन डोमेंस्की 1943 में रूस में जन्मे वलेरियन डोमेन्सकी पोलैंड में पले बढ़े हैं एवं 1981 में जेल में कैद कर दिए जाने के बाद 1987 में एक राजनीतिक शरणार्थी के रूप में अमरीका आ गए एवं सिटी ऑफ डेट्रॉयट से 2008 में सेवानिवृत्त हुए और अब पोलिश तथा अंग्रेज़ी भाषा में किताब लिख रहे हैं। उनके लघुकथा सँग्रह 'अ डॉग कॉल्ड हिटलर' को 2015 में kresge art फेलोशिप मिल चुकी है तथा 2013,2014 एवं 2015 में डेट्रॉयट फ्रेंड्स ऑफ़ पोलिश आर्ट्स सम्मान भी मिल चुके हैं। मूलत: पोलिश भाषा में लिखी अपनी कहानियों को उन्होंने अंग्रेज़ी में अनुवाद कर 'सेक्सी लिटिल गर्ल्स फ्रॉम द बिग विलेजिज़' नामक पुस्तक में संग्रहित किया है। प्रस्तुत कहानी इसी सँग्रह की कहानी ORANGE से हिन्दी में अनूदित की गई है।

ये बात मेरे लिए और भी हैरान कर देने वाली थी। मुझे तो पता ही नहीं था कि दुनिया में पोलिश के अलावा और कोई भाषा भी बोली जाती है। मैंने एक गहरी साँस ली और शांत रह गया। मेरी बड़ी इच्छा थी कि बेल्जियम जाऊँ और खूब चॉकलेट खाऊँ। जब मैं भरपूर चॉकलेट खा चुका तो सोचा कि अब मैं संतरा भी चखूँ।

"ये लो, एक संतरा पकड़ों और यूँ घूरना बंद करो। तुम्हारी आँखें तुम्हारी खोपड़ी से बाहर निकली पड़ रही हैं।"

मैंने लालच में एक संतरा झपटा और उसमें दाँत गड़ा दिए। संतरा तो बुरी तरह कड़वा था।

"माँ, इसे तो खाया ही नहीं जा सकता। ये तो बहुत कड़वा है।"

"तो मत खाओ।"

मैंने संतरे को टेबल के पिदे रख दिया।

"मेरे पिताजी एक दम बुद्धू हैं जो मुझे ऐसा कड़वा फल भेज दिया।"

फिर मैं बच्चों के साथ खेलने चला गया और संतरे के बारे में सब कुछ भूल गया।

इसके कुछ ही दिन बाद हमारे अपार्टमेंट में माँ का सुपरवाइजर आया। वह ऊँचा-पूरा, भरी मुछां वाला सुंदर व्यक्ति था, लेकिन इसके अलावा अपने कृत्रिम पैर की वजह से वह लंगड़ाकर भी चल रहा था।

उसने मुझे अपने पैर की ओर घूरते हुए देख लिया तो खुलासा करते हुए बोला, "ये पैर युद्ध के दौरान खराब हुआ है।"

मेरी माँ ने संतरो को एक बड़े से लिफाफे में ठीक से बंद कर दिया और सुपरवाइज़र को दे दिया। सुपरवाइज़र ने माँ को उसके पैसे चुका दिए।

मैंने मन में सोचा, क्या मूर्ख सुपरवाइज़र है। इसे ये भी नहीं पता कि ये क्या खरीद रहा है !

सुपरवाइजर ने पूछा "तुमने इस संतरों को चखा?"

मेरी समझ में नहीं आया कि मैं क्या जवाब दूँ। मैं उसे बता भी तो नहीं सकता कि ये संतरे एक दम ही बकवास हैं, क्योंकि फिर उसका मन ही बदल जाता, और वो संतरे खरीदता ही नहीं।

"मैंने खाकर नहीं देखा," मैंने झूठ बोल दिया।

उसने बैग से एक संतरा निकाला और बोला, "तो खाकर देखो"

अब मैं फंस-सा गया। मैं कैसे तो उस कड़वे संतरे को खाने जा रहा था, मैं घबरा ही गया था। मैं तो हैरान ही रह गया जब सुपरवाइजर ने एक चाकू उठायाा उस संतरे को ऐसे छील दिया मानों आलू छील रहा हो। उसने एक तश्तरी में संतरे के छोटे-छोटे टुकड़े कर मुझे पकड़ा दिए। ये संतरा तो बहुत ही मीठा और स्वादिष्ट था मानों स्वर्ग ही मेरे मुँह में आ गया हो। मैंने माँ की ओर अपराधबोध से देखा, मगर माँ तो माँ थी। उसने झट मुँह फेर लिया।

* * *

भाया बजाते रहो

स्वाति श्वेता

आज जो किस्सा मैं आपको सुनाने जा रही हूँ उसमें ईमोशन है, ड्रामा है और ट्रेजेडी का सायरन है। ये किस्सा दरअसल 'विरुद्धों में समंजस्य' बैठाने की चेष्टा का है पर आप समय के आकाश के नीचे खड़े हो कितने भी सत्यवचन गूँजाते रहें उस आकाश गंगा से हमेशा एक ही जवाब झरता है ----- 'मन्ने नियम ना समझा।'

छुट्टी का दिन था और प्रिय मित्र के यहाँ से आए जलपान के न्योता का सम्मान करते हुए चार सामग्री से हमारी गाड़ी लैस हुई --- दही-बड़ा, मालपूआ, रोगन जोश और हम। हमारी गाड़ी अब्दुल कलाम रोड पार कर कमाल अत्तातुर्क रोड की लाल बत्ती पर खड़ी थी। कोयल की मधुर आवाज़ अभी हमारे कानों में रस घोल ही रही थी कि एक धमाका हुआ और हमारी गाड़ी इतने ज़ोर से घूम गई मानों एक ही सेकंड में ब्रह्मांड का सफर तय कर आई हो। आँखों के आगे तारे घूम रहे थे, गर्दन पर मानों भीम के गदे का प्रहार हुआ हो। कमर शरीर से बाहर आने के लिए हिचकोले ले रही थी और मन विश्वामित्र की तरह शाप देने के लिए आतुर था।

जैसे-तैसे हम गाड़ी से बाहर आए। गाड़ी पीछे से बुरी तरह से क्षतिग्रस्त हो चुकी थी। हमारे पीछे 'आई टेन' गाड़ी थी। मशाल्लाह उसका तो अगला, पिछला दोनों ही 'आई सी यू' में भेजने की स्थिति में था। कुछ क्षण में ही हमनें जान लिया कि ग़लती 'आई टेन वाले' के भी पीछे की गाड़ी की थी क्योंकि उसके आगे की यह दोनों गाडियाँ तो लाल बत्ती को पहले से सलूट कर अ-टेंशन की मुद्रा में खड़ी थीं। क्या इन महाशय को लाल बत्ती सलूट करना नहीं सिखाया गया। लाल बत्ती तो कहीं भी हो आपको तो अटेंशन की मुद्रा में आना ही होता है। और यह लाल बत्ती तो प्रधानमंत्री निवास के पास है फिर भी ऐसी गुस्ताख़ी....।

संपर्क: डी -II / 79, वेस्ट किदवई नगर,
नई दिल्ली-110029
ईमेल: swati.shweta@ymail.com
मोबाइल: 09818434369

नुकसान का क्या था जो हो गया वो तो हो गया। कम से कम इन श्रीमान से कुछ मुआवज़ा ही मिल जाता। दो मिनट तो हम चुप रहे और आई टेन वाला जिसे ऊपरी चोटें बहुत लगी थीं उस महाशय से जूझता रहा। मामला बनते न देख हमारे दिल ने फरमान दिया कि अब तो बसंती तुझे 'मऊथ चैटिंग' करनी पड़ेगी।

'क्या मियाँ अंधे हो ? चीटीं होती तो समझते की नज़र नहीं आई पर यह आपके सामने एक काली और एक पीली दो-दो गाड़ियाँ खड़ी थीं सो भी दिखाई न दी आपको। अरे भाई काली-पीली तो दूर से ही दिख जाती है। अपनी ग़लती मानना तो दूर आप तो हुज्जत पर हुज्जत कर रहे हैं। मौसम क्या अच्छा हुआ जनाब आपने तो 'हवा के साथ-साथ, घटा के साथ-साथ ओ साथी चल' की रफ्तार पकड़ लिया। गाड़ी चलाने के 'ट्रेड' में नए-नए आए हो क्या ? सड़क के नियम नहीं पता क्या ?'

इससे पहले की मैं आपको आगे का घटनाक्रम सुनाऊँ यह बताना बेहद लाज़मी है कि हमारे इमोशन्स का यहाँ दी एंड हो जाता है और मंच का वास्तविक ड्रामा यहीं से प्रारंभ होता है। हमारी इस ''टक्कर मार बत्ती पार'' कथा का खलनायक श्रीमान मूँछ मरोड़ सिंह पहली बार मुँह खोलता है-

'ओ मेडम मन्ने नियम न समझा।' तमतमाती हुई आवाज़ में उसने धौंस जमाते हुए कहा।

'क्यो भाई इतनी बड़ी-बड़ी मूँछें जब सँभाल रखीं हैं तो यह छोटी सी गाड़ी न सँभाल सके ?'

'मेडम के मूँछों में कोई 'बरेक' लगे है!'

'हमें तो भाई लगता है कि आपके पूरे सिस्टम का ही ब्रेक फ़ेल हो चुका है क्या मूँछें, क्या ज़ुबान और क्या गाड़ी। खैर छोड़िए यह सब। आपका मालिक कौन है ?' हमने आतुरता दिखाई।

'मैं मेडम का ड्राईवर हूँ।'

'क्या नाम है भाई आपकी मेडम का ?' हमारी आतुरता अब और बढ़ गई।

'आपसे मतलब। जाओ नहीं बताता। कर लो जो करना है, इब मैं नाम ना बताऊँगा।'

'अच्छा मत बताओ भाई पर यह तो बता सकते हो कहाँ रहती हैं मेडम आपकी ?'

'सुनेगी ते आखाँ फाट जाएँगी तेरी।'

'आप उसकी चिंता मत कीजिए मेरे पति आँखों के ही डाक्टर हैं। वह मामला सँभाल लेंगे।'

'मोतीलाल नेहरू रोड पर सरकारी कोठी है उनकी। बोत बड़ी। लगता के सामज लाग गई तन्ने।'

उसका इतना कहना ही था कि हमारी समझ जो अबतक विकसित नहीं हुई थी एकदम से परिपक्व हो गई और फिर क्या था भाई वह तो परत दर परत खुलने लगी। अब जब समझ विकसित हो ही चुकी थी तो इसका उपयोग भी हमारे लिए अनिवार्य था। आप ही बताएँ कि ट्रायल लेने में बुराई है क्या ? हमने ट्रायल पुराण शुरू किया - 'ओ! तो मोती लाल वाले हो। लाईसेंस कहाँ है तुम्हारा ? मुँह से तो शराब की बदबू आ रही है। पी के चला रहे हो ?'मैने अपनी अभी-अभी विकसित हुई समझ को पहले गेयर में डाला। पर हवा की रफ्तार के साथ चलने वाला यह 'वत्स' हमारी पहली गेयर के झटके से ही हिल गया और भागने को हुआ। पर इससे पहले कि गधे के सिर से सींग गायब हों 'आई टेन' वाले भाईसाहब ने उसे धर दबोचा। इतने में इस ड्रामें में सफेदी की झलकार वाली कमीज़ एवं गाढ़े नीले रंग की पतलून पहने एक सीटीबाज़ किरदार का पदार्पण होता है- 'के चक्का जाम कर के राखिया है ? चलो आपने-आपने 'पों-पों इधर से हटाओ और जाओ।'

'तमाशा हमने नहीं इसने खड़ा किया है जी। एक तो पी कर गाड़ी चला रहा है उस पर लाईसेंस भी नहीं है। हमें इतनी चोटें लगीं, गाड़ी का कबाड़ा हो गया और इसे जानने दें !' आई टेन वाले ने आवेग में आकर कहा।

पुलिस वाला अब खलनायक की तरफ बढ़ता है और अपना मुख द्वार खोलता है - - 'क्यों भई इतनी बड्डी गाड्डी दिखाई ना दी तन्ने ? इब हरजाना ते देना पड़ेगा।'

इतने में खलनायक महोदय समझदारी का परिचय दिखा किसी का जादुई नंबर लगाता है और सफेदी की झलकार से उसके तार जोड़ता है। जादू का असर होने लगता है। और हरजाना दिलवाने वाले यह मियाँ अभी-अभी जो फरमा रहे थे वह सब 'जी मेडम, जी मेडम' के स्वर में काफ़ूर हो जाता है।

'चाल भाई इब तू तो चाल।'

'पर आप इसे जाने के लिए कैसे कह रहे हैं ?' हमने जानना चाहा।

'क्यों तूने छोरी ब्याहनी इसके साथ ?'

'अरे ये चला गया तो मुआवजा कौन देगा ? हम दोनों की हालत छोड़िए हमारी गाड़ियों को तो देखिए। अस्थि पंजर निकाल चुके हैं इनके।' आई टेन वाला तपाक से बोला।

'तो किरयाकरम कराओ न इसका। हस्पताल का केस तो लागे न मन्ने। चाल भाई इब तू तो चाल। बाराती कट्ठा कर के जावेगा के ?'

'रुकिए हमें एफ आई आर दर्ज करानी है।'

'कूँ भई ?'

'नियम यही कहता है। आप भी नियम से चलिए। ये मुआवजा नहीं देगा तो एफ आई आर तो दर्ज कराएँगे ही।' हम दोनों ने एक साथ कहा।

'अच्छा तन्ने मुआवजा चहिए। नियम का बोत ज्ञान लागे साँ तुम दोनों को। चलो भैया नियम से चलो। ओय राम पाल तीनों गाड़ियों को ठाणे में ले जा। इब ठीक है न भई। जाओ जी जाओ ठाणे जाओ, एफ आई आर दर्ज कराओ। मुआवजा चहिए इनको, भई जल्दी ले जा दोनाँ को। चाल भाई इब तू तो चाल।' और हमारी इस कथा का खलनायक गाड़ी छोड़ वहीं से नौ दो ग्यारह हो जाता है।

हम दो भोगी 'खाकी बाबा की जय' कह अपनी एफ आई आर दर्ज़ करवाने रामपाल बाबा के पीछे चल पड़े। हमारे ड्रामे का अगला सीन अब 'साउथ एवेन्यू' थाने में स्थानांतरित होने जा रहा था।

'भाई साहब और अब कितना?'

'मेडम थोडी देर तो ओर लागेगी। गाड़ी के मालक आ जावें फेर बात होगी जी। ऐसा साब ने संदेसा भेजा है।'

थोड़ी देर थोड़ी देर करते-करते हमें दो घंटा हो चला था पर वाह रे पुलिस तंत्र, काहे कोई अपना काम निपटाए। हमने बैठे-बैठे प्रभु को पुलिस चौकी से अनेक संदेश भेजे। सोचा कोई एक संदेश तो सिग्नल पकड़ ही लेगा और प्रभु 'इन रिटर्न' खाकी वर्दी को

अपने सिग्नल के द्वारा कोई संदेश देंगे पर हम तो यह सत्य भूल ही बैठे थे कि पुलिस स्टेशन के सिग्नल के 'रिसीविंग टावर' पिछले सत्तर सालों में बहुत 'वीक' हो चुके हैं। हमने अपने मन को समझाया कि प्रभु के घर में देर हो सकती है पर अँधेर इतनी भी न हो सकती है।

कुछ घंटे बाद प्रभु का सिग्नल आ गया और फलस्वरूप हमारे सामने उत्पल दत्त का हरियाणवी संस्करण आ खड़ा हुआ। ऐसी स्थिति में हम अपने-आप को रोक न सके और मुँह से अपने आप ही निकल गया - 'ईश'।

'ठाणे की हिफाजत करन के साथ-साथ मेडम सपनों की हिफाजत भी तें करनी सूँ और सपनों की हिफाजत खातिर कुछ देर सोना भी पड़े है। खुलि आखाँ से सपने किते गिर जावे फेर ?' थानेदार ने नींद से उठ अपनी आँखों को मलते हुए कहा।

'जी अब कार्यवाही शुरू करें।'

' हाँ जी ज़रूर। पर मेडम मन्ने ई बता कि तू कोच बन वर्ल्ड कप जीतेगी के ? तू राहुल द्रविड़ बान गई ! हाँ ! खिलाड़ी किदर भैया।'

'खिलाड़ी ! कौन खिलाड़ी ?'

'अरे जिस को कोचिंग दे ठाणे ले कर तू आई। आई टेन वाला छोरा ओर कौण।'

'देखिए जनाब पहला तो यह कि मै किसी को यहाँ नहीं लाई हूँ और दूसरा हम सब उस ड्राईवर के कारण अपना-अपना नुकसान क्यों उठाएँ जब हमारी कोई ग़लती ही नहीं।'

'जे दिल्ली है, लागे कि तू जाणे न। 'एल टी सी' पर हो के ? सरकार बारे के समझ के राखा है तन्ने ?''

हमने सोचा लो अब कर लो बात। अब इस में 'एल टी सी' की बात कहाँ से आ गई। हम तो फर्यादी बन आए थे पर अब महसूस होने लगा था कि यहाँ तो चाहे बाप मरे या फिर खाप मरे, इन का बस चले तो हर सूरत में आप ही मरे।

'जनाब आपको क्या कष्ट है ? हमारी गाड़ियों का एक्सीडेंट हुआ है, मुझे चोट लगी है और मारने वाली गाड़ी के ड्राईवर के पास लाईसेंस भी नहीं है और उसे आपके आदमियों ने कहीं ऊपर से फ़ोन आने के बाद भगा दिया। आप हमारी 'एफ आई आर' दर्ज क्यों नहीं कर रहे हैं ?' 'आई टेन' वाले लड़के ने अपने संयम से कुछ बाहर होते हुए कहा था।

के दोना गाडियों का बीमा है ?' पुलिस वाले ने तब पूछा था।

'जी जनाब।' हम दोनों ने जवाब दिया।

'क्या गाडी का बीमा के साथ-साथ तन्ने प्रेम का भी बीमा करा डाला है।'हँसते हुए पुलिस वाले ने तंज़ कसा था।

'क्या मतलब ?' गुस्से में हमने पूछा।

'लो जी जे बात भी मेडम समझे न ? इस छोरे के गेल ऐसे ही घूम रही है तू ?' मन तो हुआ कि अपने चप्पल से इन जनाब के मुँह का 'जुगराफिया' बिगाड़ दें पर इससे पहले कि हम कुछ कर पाते उत्पल दत्त के उस हरियाणवी अवतार ने कमरे से बाहर देखते हुए उस लड़के से पूछा---

'जे गाड़ी तेरी है ?'

'जी।' आई टेन वाले लड़के ने कहा।

'इब जे बता कि तू आपणे को की समजे है ?'

'क्या?'

'ओ, तेरी गाड़ी सन्नी लीओनी है के ओर तन्ने पुलिस चोकी दिल्ली के 'सीपी' का 'टूसाड म्यूजियम' लागे है ?' पुलिसवाले ने यकायक कहा।

'आप क्या बोल रहे हैं मै आपका मतलब नहीं समझा।'

'भैया तू मेरा मतलब क्यूँ समजे। मतलब तो तन्ने सारे मेडम के समज आवे हैं। क्यूँ ठीक केह्या, नहीं ? कितने की सेटिंग की है दोनों मतलब के यारों ने ? फिफ्टी-फिफ्टी!!! हैं ? भई जमाना भी ते बेटी पढ़ाए, बेटी बढ़ाए का है। भारत की जे बेटी तन्ने क्या-क्या पढ़ा के लाई है ?'

पुलिसवाला हँस रहा था। और इधर हमारा भेजा भन्ना रहा था। पुलिस का तिलिस्म शायद इसी को कहते हैं। घर से निकलते समय हमें ही कहाँ पता था कि आज इस धाम आना पड़ेगा। सत्तर साल हो गए पर हमारा यह स्वतंत्र युवा पुलिसतन्त्र अपने हर धाम में एक ही रंग और एक ही चोले में देखा जा सकता है। अंग्रेज़ों के ज़माने का वही थानेदार आजतक बिना 'अपडेटेड सॉफ्टवेयर' के देश के तमाम केसों को उसी पुरानी पद्धति से हाँक रहा है और जब ग़लती से हमने बिना 'अपडेटेड सॉफ्टवेयर'के विषय में पूछ डाला तो दाँत निपोड़ कह दिया --- 'बग' आक्रमण का नाम न सुना आपने।'

'भाई साहब हम लोगों को आगे भी जाना है आप दूसरी पार्टी को जल्दी क्यों नहीं बुलाते हैं ? नियम नाम की भी कुछ चीज़ होती है कि नहीं।' आई टेन वाले ने अधीर होते हुए कहा।

'मन्ने नियम न समझा। पच्चीस साल का तजुर्बा भी कुछ होवे है कि नहि।' उत्पल दत्त के हरियाणवी संस्करण ने आई टेन वाले को डाँटते हुए कहा।

इतने में पहली आवाज़ के साथ एक और आवाज़ पीछे से आती सुनाई दी ------ 'भाई ये तो तब देखना था न आपको जब आप अपने रास्ते को छोड़ तीन किलोमीटर पीछे के पुलीसस्टेशन के लिए हड़बड़ा कर आ गए। अरे टक्कर ही तो लगा था यदि एक ठो पेड़वा टूट कर गिर जाता आप लोगन की गाड़ी पर तो कौनों मुआवजा की बात करता ? नाही न ?'

'अरे बच्चा ठाकुर तन्ने किसी ने बोलिया की जुबान खोल ?' उत्पल दत्त के हरियाणवी संस्करण ने उस व्यक्ति को डाँटते हुए कहा।

'आप काम करने का क्या लेंगे ?' मैने झल्लाते हुए कहा।

'साहिब यही मौका है दबाई लियो। अब आया है ऊँट पहड़वा के नीचे। इनकी पीली गाड़ी है और पीली गाड़ी से खाने की बहुते स्वादिष्ट सुगंध आ रही है। होली, दिवाली दोनों में हम लोगो की ससुरा ड्यूटी लगा दी थी। अब की बार घर भी नाहीं जा सके। घर का खाना खुदे चल कर हम लोगन के पास यदि आ गया है तो भोग लगाने में साहिब कौनों हर्जा नाही।'बच्चा ठाकुर नाम के उस सिपाही ने थानेदार के कान में अपनी तरफ से तो धीरे से बोला पर फिर भी हमें सुनाई पड़ गया। दोनों में खोमोशी का आदान-प्रदान हुआ। और कुछ सोच हरियाणवी थानेदार बोला- ' किशन जी के भक्त जन भूखे बैठे हों ते काम कोने कर साके है। थोड़ा खाणे का इंतेजाम आप लोगाँ की तरफ से होणा चाहिए जी। बच्चा ठाकुर कै रिहा है कि पीली गाड़ी में कुछ स्वादिष्ट खाणा राखिया लागे और ....'

इससे पहले कि वह कुछ आगे और

बोलता मैने उसकी बात बीच में ही काटते हुए कहा – 'आप लोगों को शर्म नहीं आती जो आप लोग इस तरह की बातें कर रहे हैं।'

'ओ मेडम, तूने कौन सा हमें शादी – ब्याह का न्योता देना है। ऐसे मौकों पर ही ते हमारी दावात होवे है।' हरियाणवी थानेदार आवाज़ ऊँची करते हुए बोला।

हमने आई टेन वाले की निरीहता देखी। क्या कर सकते थे हम। विवश हो हमने गाड़ी की चाबी बच्चा ठाकुर नाम के महानुभाव को अंततः दे ही दिया।

बच्चा ठाकुर ज़ोर से किसी की तरफ चिल्लाता हुआ बोला –'अरे हरि, दौड़ कर हियाँ आ।'

हरि नाम का एक बूढ़ा व्यक्ति जो शायद थाने में माली का काम करता था दौड़ा-दौड़ा आ गया। अब की बारी बच्चा ठाकुर उसे समझाते हुए कह रहा था –'ये चाबी ले जा। ओ पीली गाड़ी की है। समझा ? और अंदर खाने का जाऊन सा भी समान है सब साहिब की टेबुल पर धर देना। ठीक-ठीक। बूझा की नहीं ?' वह बूढ़ा व्यक्ति सिर हिला गाड़ी की चाबी ले वहाँ से चला गया।

'लो दूसरी पार्टी भी आ गई।' बच्चा ठाकुर ने तभी इशारे से हमें अंदर आती गाड़ी को दिखाते हुए कहा।

पर इससे पहले कि हम इस लगने वाले कोर्ट में बैठते हमारे फ़ोन की घंटी बजती है और हम कमरे से निकल थाने के अहाते में आ जाते हैं। दूसरी तरफ हमारा मित्र अबतक न पहुँच पाने के कारण जानने में अपनी उत्सुकता ज़ाहिर कर रहे थे और हमें उन्हे समझाना पड़ रहा था कि वह हमारी चिंता न करें हम अभी एक सुरक्षित स्थान पर हैं और जल्दी ही उनके निवास पहुँच जाएँगे। बस यही समझाते-समझाते पूरे दस मिनट लगे। जब फ़ोन बंद कर वापस लौटने को हुए तो देखा कि ड्रामे में अब यू टर्न आ चुका था और आई टेन वाला गाड़ी स्टार्ट कर वापस जा रहा था।

'क्या हुआ ? मुआवजा मिला ?'

'मैंने अपनी ग़लती मान ली। पूरे पंद्रह हज़ार हरजाना दिया है।'

'क्या पंद्रह हज़ार ?'

इससे पहले कि हम कुछ बोल पाते 'आई टेन' गाड़ी खूब सारी धूल पीछे छोड़ पुलिस स्टेशन से बाहर जा चुकी थी और हम अवाक् खड़े थे। ड्रामा का पर्दा अब गिर चुका था और ट्रेजिडी का सायरन बज उठा।

हरि हमारे पास आया और एक ही साँस में उसने अंदर घटित हुए उन दस मिनटों के घटना-क्रम की रील घूमा दी..... कि कैसे उन्होंने अपनी कार्रवाई पूरी कर दी, कैसे कानून के चेहरे के सभी खौफ़नाक शेड्स से उसका साक्षात्कार कराया और कैसे उसको धमकी, गाली और थप्पड़ के 'काकटेल' का नीट पंच पिलाया।

इसके आगे की कहानी स्पष्ट हो चुकी थी। पुलिस तंत्र के इस 'इंस्टेंट काफी' रूपी फैसले ने हमारी गिल्लियाँ उड़ा दी थीं। हमने खिड़की से अंदर झाँका.......उत्पल दत्त का हरियाणवी संस्करण दही-भल्ले खा रहा था, बच्चा ठाकुर मटन रोगन जोश और दूसरी पार्टी मालपूए खा रही थी। बीच-बीच में उनके बातों और ज़ोर-ज़ोर से हँसने की आवाज़ें बाहर आ रही थीं पर हमारे कानों में एक ही आवाज़ गूँज रही थी........'मन्ने नियम न समझा। पच्चीस साल का तजुर्बा भी कुछ होवे है कि नहि।'

बोलने को तो बहुत कुछ था हमारे पास पर भावनाओं के आए सैलाब में शब्द साथ छोड़ गए थे। अंततः भाप बन उड़ते जा रहे अपने भावों को हमने शब्द दे ही दिया.....

'इनको मतलब समझा सके,
ज़माने में वह दम नहीं
इनके रहमोकरम पर ज़माना खुद है,
ज़माने के रहमोकरम पर यह नहीं।'

हमने हरि से अपनी गाड़ी की चाबी ले गाड़ी स्टार्ट की। पुलिस स्टेशन पीछे छूट चुका था और गाड़ी में रेडियो की आवाज़ गूँज रही थी.......

'नाइंटी थ्री पाइंट फाइव रेड एफ एम में आप सब का स्वागत है। आज है 'पुलिस दिवस' और यदि इससे संबंधित आपको भी कुछ कहना हो तो हमें 9898767600 पर फोन कर अपना किस्सा 'आपकी बात' में सुनाएँ। पसंद किए गए पहले दो किस्सों को ब्युटी एंड ब्यूटी का तीन हज़ार का गिफ्ट हैम्पर दिया जाएगा। देर मत कीजिए और तुरंत फोन लगाएँ। मै हूँ पायल और आप सुन रहे नाइंटी थ्री पाइंट फाइव रेड एफ एम बजाते रहो।'

***

ग़ज़लें

अनिरुद्ध सिन्हा

आदमी यूँ भी खताओं की सज़ा देता है
दिल में रखता है तो नज़रों से गिरा देता है

बन के दुश्मन ही कोई घर में है छुपकर बैठा
जो दहकते हुए शोलों को हवा देता है

उम्र -भर है वो तरसता है गले मिलने को
घर के आँगन में जो दीवार उठा देता है

कल जिसे राह में ही छोड़ दिया था मैंने
आज भी दूर से वो मुझको सदा देता है

एक अफ़वाह बुझा देती है किरदार की लौ
जैसे तूफ़ान चिराग़ों को बुझा देता है

***

आसमाँ यूँ तो है सभी के लिए
मेहरबाँ है किसी-किसी के लिए

आज मैं ख़ुद को छू के कहता हूँ
मैं अधूरा हूँ इस सदी के लिए

इतना गहरा है घर में सन्नाटा
लफ़्ज़ रोते हैं बाँसुरी के लिए

रोज़ सुनते हैं चुट्कुले उनके
एक बीमार सी हँसी के लिए

आसमाँ पर नज़र जमाए है
ये ज़मीं कम है आदमी के लिए

***

संपर्क: गुलज़ार पोखर,मुंगेर (बिहार)811201
ईमेल:anirudhsinhamunger@gmail.com
मोबाइल:09430450098 /7488542351

चिन्तन के पल

शशि पाधा

बाज़ारवाद और सोशल मिडिया से आक्रान्त इस युग में 'ऑरगैनिक' शब्द ने इस प्रकार अपना झंडा फहराया है कि मन और मस्तिष्क प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका और हम ढूँढ़ने निकले इसका गूढ़ अर्थ। शब्दकोश खंगालने के बाद अर्थ मिला --- जैविक, मूलभूत, प्राकृतिक। मुझे लगा यह तो पारम्पारिक शब्द हैं, आज की भाषा में इनका क्या अर्थ लगाया जाए। तो हमें सूझा... बिना मिलावट के, बिना आधुनिक खाद के उपजा -और न जाने कितने अर्थ। यानि वह खाद्य पदार्थ, फल, वस्तुएँ जो मिलावट के बिना हों। बात तो बहुत अच्छी है। भई! मिलावटी वस्तुओं के सेवन से कई प्रकार की बीमारियाँ होती हैं। और फिर जान बूझ के क्यूँ रोग को निमन्त्रण देना। अब चाहे ऑरगैनिक वस्तुएँ दुगुने-तिगुने दाम दे कर खरीदी जा रही हैं लेकिन उपभोक्ता निश्चिन्त तो है।स्वास्थ्य भी बढ़िया और दीर्घ आयु का नुस्ख़ा भी आप के हाथ में है।

मुझे ऑरगैनिक शब्द के ऑरगैनिक अर्थ से कोई गिला-शिकवा नहीं है। अच्छी बात अच्छी ही रहेगी। किन्तु क्या करूँ चिन्तक हूँ। अपने आगे-पीछे जो भी देखती-सुनती हूँ, उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। इस शब्द ने मुझे इतना उद्वेलित किया कि सोचती हूँ कि आज हर किसी को भोग्य पदार्थ तो प्राकृतिक चाहिए। उन्हें ढूँढ़-ढूँढ़ कर खरीदा और प्रयोग में लाया जा रहा है। किन्तु हम अपनी संस्कृति,जीवन मूल्यों और रिश्तों की मर्यादा को निभाने में ऑरगैनिक यानि बरसों से चले आ रहे मर्यादा रूपी मूल तत्व क्यूँ खोते जा रहे हैं? उन्हें क्यूँ नहीं ढूँढ़ा, बचाया, सहेजा और प्रयोग में लाया जा रहा? जीवन के मूलभूत सिद्धांतों में हम क्यूँ अन- ऑरगैनिक (कृत्रिम) तत्वों की मिलावट कर रहे हैं?

देखा जाए तो संस्कृति किसी भी समाज, प्राणी या देश के आन्तरिक सौन्दर्य को ही प्रतिबिंबित करती है। मर्यादाओं का पालन इस सौन्दर्य को और बढ़ाता है और मनुष्य के स्वभाव में त्याग, सहिष्णुता, सेवा, विनम्रता दूसरों के प्रति सम्मान के भाव स्वत: ही आ जाते हैं। इन सब गुणों के बीज उगते/ पनपते हैं संयुक्त परिवार की परम्परा में। संयुक्त परिवार में

संपर्क:
10804, Sunset hills Rd, Reston
Virginia 20190 USA
ईमेल: shashipadha@gmail.com

पलने वाले बच्चे और युवा इन संस्कारों को घर के बड़े सदस्यों के आचरण को देखते-देखते सीख जाते हैं।उन्हें इसके लिए किसी विशेष संस्था में नहीं जाना पड़ता। अगर हमें अपनी संस्कृति को बचाना है तो इन मूल्यों को भी 'आर्गेनिक ही रहने दें तो भावी समाज के लिए बहुत अच्छा होगा। इन पर किसी और संस्कृति या आधुनिकता का लेप लगा कर इन्हें दूषित करना भावी पीढ़ी के लिए हानिकारक ही होगा।

ऑर्गेनिक का एक और व्यवहारिक अर्थ है ---संगठित और चेतन। मेरे विचार से यह संगठन होता है व्यक्ति और समष्टि का, प्रकृति के प्रति मानवीय संवेदना का और समाज में मानवीय रिश्तों का। जैसे किसी घर की खुशी और शान्ति के लिए घर के सदस्यों का संगठित होना वांछनीय है वैसे ही समाज और फिर देश के लिए वहाँ के नागरिकों में परस्पर संबंधों में संगठन और अटूट विश्वास का होना कल्याणकारी है। लेकिन ज़्यादा तेज़ रफ़्तार की ज़िन्दगी के होड़ में हमने खो दिए हैं विश्वास की सुगंध के साथ जिए जाने वाले रिश्ते। बहुत पीछे छूट गए हैं घर और समाज तथा प्रकृति के प्रति मानवीय संवेदना के 'ऑर्गेनिक' भाव। जैसे पर्यावरण दूषित हो रहा है वैसे ही हमारे संस्कारों एवं परम्पराओं में भी विकृतियाँ आ रही हैं। उनका मूल तत्व परिवर्तित होता जा रहा है।

आज संयुक्त परिवार टूट रहे हैं, कारण कुछ भी हो सकता है।जीविका उपार्जन के लिए युवा सदस्यों को अपने वृद्ध माता-पिता को अकेले निस्सहाय छोड़ के दूसरे शहरों में जाना पड़ता है। इसमें कोई बुरी बात नहीं है। बुरी बात केवल यही देखने में आई है कि युवा वर्ग माता- पिता को साथ ले जाने, रखने के लिए तैयार नहीं है। भई, उनकी आदतें पुरानी हैं, शायद पहनावा भी आधुनिक नहीं है। जल्दी उठते हैं तो रसोई वयस्त हो जाती है। ऊँची आवाज़ में बात करते हैं क्यूँकि ऊँचा ही सुनते हैं। यह तो हुई कुछ सामन्य बातें। और फिर यही बातें परिवार के टूटने के लिए विशेष बन जाती हैं। रिश्तों की मर्यादा रखना, बड़ों का आदर- मान करना, यह भी तो हमारी संस्कृति के 'ऑर्गेनिक' तत्व हैं। फिर खान-पान के साथ इन्हें बचाने के लिए प्रयत्न क्यूँ नहीं किया जा रहा है। ऑर्गेनिक शब्द के एक अर्थ 'मूलभूत' पर विचार करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि रिश्तों में, परिवार में, समाज में और सर्वोपरि देश में मर्यादा और जीवन मूल्यों का पालन हो तो सद्भावना, एकता और सौहार्द जैसे पारम्परिक मूल्य स्वयं ही आ जाते हैं।

प्रकृति के साथ साहचर्य की भावना भी हमारी संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण गुण है। वृक्ष हमारे लिए उतने ही पूजनीय हैं जितने हमारे बुज़ुर्ग। हमारे तीज त्योहारों में वृक्ष पूजा का विधान है। भारतीय संस्कृति में जैविक संतुलन, और अपने आस-पास के जीवन के प्रति भी बड़ी उदार दृष्टि है। सामान्य व्यवहार में यही सिखाया जाता है कि प्रकृति से जितना लो उतना उसे वापस भी दो। शायद यह बहुत पुरानी बात नहीं है कि जब भी किसी स्थान से एक वृक्ष काटा जाता था तो उस स्थान पर एक और वृक्ष रोपा भी जाता था। किन्तु अब तो पेड़ काटना एक साधारण सी बात हो गई है। सड़कें बननी हैं, गगनचुम्भी इमारतें बनानी हैं, पहाड़ों पर यात्रियों के लिए होटल बनने हैं तो सब से पहले पेड़ की हत्या ही होती है। बिना किसी संकोच के यांत्रिक कुल्हाड़ी की सहायता से उनके टुकड़े-टुकड़े कर दिए जाते हैं। यहाँ लहलहाते खेत थे वहाँ पर्यावरण को दूषित करने वाली फैक्ट्रियाँ आ कर बस गई हैं। फल और सब्जी का आकार बढ़ाने के लिए उसे न जाने किन कृत्रिम पदार्थों से पोषित किया जाता है। मानव द्वारा जब वायु, पहाड़, पेड़, नदी और धरती से ही उनका ऑर्गेनिक रूप -आकार छीना जा रहा है, उनके निर्मल और स्वच्छ रूप को दूषित किया जा रहा है तो उसी स्वार्थी मानव को केवल ऑर्गेनिक चीज़ों के सेवन का क्या अधिकार है। जब पेड़ न होंगे तो कम ज़मीन में ज़्यादा की इच्छा तर्क संगत ही नहीं। 'ऑर्गेनिक' शब्द के प्रयोग की अति ने मेरे चिन्तन की ग्रंथियों में उथल-पुथल मचा दी थी। अपनी प्रकृति,सांस्कृतिक धरोहर एवं जीवन मूल्यों की निधि से अतुल्य स्नेह रखने के कारण मैंने इनके संरक्षण एवं संवर्धन की दिशा में कुछ ठोस कदम उठाने का निर्णय लिया है। आशा है आप सब भी मेरे साथ हैं।

***

ग़ज़लें

शिज्जु शकूर

तेरे वास्ते महके गुलशन मुसलसल
तेरा मुंतज़िर है ये आँगन मुसलसल

मुहब्बत की सीली सी गलियों में देखा
चरागों के जोड़े को रौशन मुसलसल

मेरे दिल में इक सुब्ह भर जाए हर दिन
जगाता है उम्मीद रौज़न मुसलसल

निसाबों के फंदे में जैसे उलझकर
कहीं खो रहा है ये बचपन मुसलसल

पसरता हूँ जब रेत की चादरों पर
करे रक्स तब तेरा दामन मुसलसल

***

ख़मोशी तेरी फितरत है? नहीं तो
या दिल में कोई दहशत है? नहीं तो

तुम्हारे क़त्ल की बातें हुई थी
किसी दुश्मन की हरकत है? नहीं तो

फ़क़त बातों के दम पर राज करना
ये अपनी-अपनी किस्मत है? नहीं तो

बराबर सबको शीशे में उतारा
तो क्या ये भी तिजारत है? नहीं तो

हवा के रुख से घबराना या डरना
यही क्या तेरी हिम्मत है? नहीं तो

किसी पे अब भरोसा ही नहीं है
तुम्हारी भी ये हालत है? नहीं तो

किसी झूठी खबर पर कान देना
तुम्हें क्या इतनी फुर्सत है? नहीं तो

***

संपर्क: shijju.1977@gmail.com

हिन्दी भाषा के लिए समर्पित सवा सौ वर्ष पूर्व के गुमनाम साहित्यकार मुंशी हीरालाल जी जालोरी

मंजु 'महिमा'

आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास और स्वतंत्रता प्राप्ति का संघर्ष दोनों साथ-साथ ही चले हैं...इस यज्ञ में न जाने कितनी अनाम समिधाएँ और आहुतियाँ समाहित हुई हैं...जिनका लेखा-जोखा आज भी अप्राप्य है। कभी कभी हम लाख चाहकर भी अपनी पुरानी धरोहर को संभाल नहीं पाते हैं, इसके दो मुख्य कारण होते हैं-एक- उस सम्पदा की उपादेयता से अनभिज्ञता दूसरे-उनको संभाल कर रख पाने की असमर्थता। साहित्यकार जालोरी जी के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। उनका कम उम्र में ही निधन और पीछे उनकी हस्तलिखित पेन्सिल से लिखी पांडुलिपियों का दीमकों का स्वादिष्ट भोजन बन जाना, उन्हें गुमनामी के अन्धकार में ले गया।

उन्नीसवीं सदी में जन्मे जिस साहित्यकार के पत्र-लेखन के पेड पर बाईं ओर उनकी स्वरचित 4 पंक्तियाँ सदैव अंकित रहती थीं, उनके हिंदी प्रेम पर तो कोई संदेह हो ही नहीं सकता। वे पंक्तियाँ थीं-

'हिन्दी हो सर्वस्व हमारी,
हिन्दी ही का ध्यान रहे,
हिन्दी हित में लगा हुआ,
तन-मन जीवन प्राण रहे।''
-हीरालाल जालोरी

ये पंक्तियाँ बताती हैं कि वे हिन्दी के प्रबल समर्थक ही नहीं वरन् हिंदी के प्रसार के लिए पूर्णत: समर्पित भी थे।

हाड़ौती की पावन धरती की माटी में रचे-बसे, भटनागर कायस्थ परिवार में सन 1892 में जन्मे मुंशी हीरालालजी जालोरी अपने समय के जाने-माने व्यक्तित्व रहे थे। आज भी यदि कोटा के किसी बुज़ुर्ग से उनके बारे में पूछा जाए तो उनके सुकार्यों की किताब खुल जाएगी। उनकी आयु की अवधि यद्यपि बहुत कम रही लेकिन उनके सुकार्यों की सूची बहुत लम्बी है।

साहित्यिक गतिविधियाँ-

बी.ए.; एल.एल.बी. करने के बावजूद जालोरी जी एक अच्छे साहित्य प्रेमी और साहित्यकार थे। वे अपने लेखन में बाल-विवाह और सती-प्रथा विरोध, रक्तदान का महत्त्व, स्त्री-शिक्षा, धर्म निरपेक्षता आदि विषय को लेते रहे और नाटक, लघु कथाएँ लिखते रहते थे। स्वतंत्रता की लड़ाई में योगदान हेतु मिले जेल-प्रवास में भी उन्होंने कई लेख लिखे, कई महत्त्वपूर्ण लेखों का अन्य भाषा जैसे गुज़राती, उर्दू, सिंधी आदि से अनुवाद भी

काव्यसंग्रह : बोनसाई संवेदनाओं के सूरजमुखी
शोध प्रबंध : संतकवि आनंदधन एवं उनकी पदावली हूमड़ जैन समाज का सांस्कृतिक इतिहास
अन्य काव्य संग्रहों में प्रकाशित रचनाएँ : नई धरती - नया आकाश, पछुआ के हस्ताक्षर, गवाक्ष, एकता का संकल्प
सम्पर्क : के- 1002 आर्चिड गोदरेज गार्डन सिटी, जगतपुर, निरमा यूनिवर्सिटी के पीछे, अहमदाबाद, गुजरात 382470
ईमेल : manjumahimab8@gmail.com

किया था। उनकी दो पुस्तक बहुत चर्चित रहीं थीं। -1- प्राणी संतति शास्त्र 2- राजसत्ता। इसके अतिरिक्त उनकी कई हस्तलिखित पेन्सिल से लिखी हुई पांडुलिपियाँ थीं, जो दुर्भाग्यवश काल-कवलित होगई हैं। उन्हें 6 भाषाओं का पूर्ण ज्ञान था, वे थीं- अंग्रेज़ी, हिन्दी, सिंधी, गुजराती, उर्दू और फारसी। सी.बी.आई में इन्स्पेक्टर पद पर रहते हुए उन्होंने पुलिस विभाग के कानूनों का अंग्रेज़ी से उर्दू-हिन्दी में अनुवाद भी किया था, इसके अतिरिक्त कुछ अनुवाद उन्होंने गुजराती भाषा से हिन्दी में भी किए।

आर्थिक संकट के चलते भी वे अपनी सिमटी आमदनी का 10 प्रतिशत साहित्य-क्षुधा को शांत करने के लिए उपयोग करते थे, उस समय के 10 रुपये की किताबें वे हर महीने मँगवाया करते थे, जिसमें सभी तत्कालीन साहित्यकारों की किताबें, राजनितिज्ञों के विचार, दर्शन शास्त्रियों के चिंतन, धर्म से संबंधित कई पुस्तकें होती थीं। दूसरे भी इसका लाभ ले सकें इस विचार को लेकर उन्होंने धीरे धीरे इसे एक पुस्तकालय का रूप दे दिया और जालोरी-पुस्तकालय के नाम से अपने घर के कमरे में ही छोटा सा पुस्तकालय शुरू कर दिया जहाँ से सभी निशुल्क पुस्तकें पढ़ने के लिए ले जा सकते थे और एक निश्चित अवधि के बाद लौटा सकते थे। इसके लिए रजिस्टर आदि सभी की व्यवस्था उन्होंने की हुई थी, एक विशेष बात यह थी कि हर पुस्तक पर खाकी रंग का कवर चढ़ा होता था और हर पुस्तक पर नम्बर और जालोरी-पुस्तकालय की मोहर लगी होती थी। उनका पुस्तकालय मुंशी प्रेमचंदजी, जयशंकर प्रसाद, शरदचंद्र, बंकिमचंद्र, महादेवी, सुमित्रानंदन पन्त, निराला, सुभद्राकुमारी चौहान,मैथिलीशरण गुप्त, धूमिल, बच्चन, राजेन्द्र प्रसाद, गाँधी जी और नेहरू जी आदि सभी सुप्रसिद्ध कवियों और लेखकों के हिन्दी साहित्य से तो सजा हुआ ही था, अन्य भाषाओं जैसे सिन्धी, फ़ारसी, अंग्रेज़ी, उर्दू आदि भाषा की पुस्तकों का रंग उन्हें द्विगुणित कर रहा था। यहाँ तक कि बड़े-बड़े एटलस, विभिन्न भाषाओं के शब्दकोश से शोभायमान था। मुझे याद है 13314 के छोटे से कमरे की दीवारें जैसे किताबों से ही

बनी हुई थी। ऊपर से नीचे पत्थर के शेल्फ में रखी खाकी पोशाक में सजी सँवरी पुस्तकें अपने प्रिय पाठकों का इंतज़ार करती रहती थीं। कहा जाता है कि एक अच्छे सेल्समेन की भाँति जालोरी जी अपने मित्रों को हर किताब के बारे में बताकर उन्हें पढ़ने के लिए प्रेरित करते थे और घर ले जाने के लिए उकसाते थे। फीस के नाम पर केवल समय से किताब पढ़कर लौटाने का वादा होता था।

उस समय की किताबों पर लिखी कीमतों को यदि आप देखेंगे तो आँखों पर शायद विश्वास न हो, जैसे-मैथिलीशरण गुप्त की 'पंचवटी' की कीमत किताब पर चार आने (25पैसे), जयशंकर प्रसाद के नाटक 'अजातशत्रु' की कीमत 8आने (50 पैसे) और डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद के संस्मरण की कीमत 2 पैसे अंकित होती थी। कुछ छोटी-छोटी किताबें एक-एक पैसे की भी होती थीं। शायद अब वह एक पैसा अब 100 रुपये के बराबर मूल्य का हो गया होगा।

निजी जीवन में वे पूर्ण रुपेण नियमित दिनचर्या और अनुशासन का पालन करते थे। अपनी पुत्री से समाचारपत्र, हिन्दी पुस्तकें,पत्रिकाएँ पढवाना और उन पर उससे चर्चा करना, उनका स्त्री-शिक्षा के महत्त्व को जताता था।

जालोरी जी, पूर्णरुपेण देशभक्त और स्वतंत्रता सेनानी थे। स्वतंत्रता के संघर्ष में उन्होंने तन-मन-धन से पूरा योगदान दिया था। पहले वे क्रांतिकारी दल के सदस्य बने और कोटा के क्रांतिकारियों केसरी सिंह जी बारहठ, मानिक वर्मा आदि के साथ संलग्न रहे, एक केस में बारहठ के (जो उस समय उनके नेता थे) पकड़े जाने का भय था, पर उन्होंने उनका इलज़ाम अपने ऊपर लेकर 12 वर्ष के कारावास का दंड नव-विवाहित होते हुए भी हँसते-हँसते स्वीकार कर लिया। इसी कारण उनके पुरखों की जागीरी भी उन्हें छोड़नी पड़ी। कारावास के दौरान उन्होंने देशभक्ति से सम्बंधित लेख और गीत लिखे, पर उन्हें चेतावनी देते हुए ज़ब्त कर लिया गया। उन्होंने फिर कई पुस्तकों का अध्ययन शुरू किया, कुछ पुस्तकों का अनुवाद भी किया। उनके शिष्ठ आचरण के कारण उनकी सज़ा कम कर दी गई...जेल में विद्वानों और गाँधी जी के विचारों का अध्ययन करने के पश्चात् उनका ह्रदय परिवर्तन हुआ और उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए गाँधी जी के अहिंसावाद को श्रेष्ठ माना। जेल से बाहर आने की खबर मिलने पर कोटा महाराजा ने उन्हें बुलाया और अपना सेक्रेटरी बनाने का प्रस्ताव रखा, जिसे उन्होंने कुछ समय के लिए स्वीकार किया पर बाद में वे पुलिस के खुफिया विभाग में इन्स्पेक्टर बन गए, उसका कारण अप्रत्यक्ष रूप से स्वतंत्रता सेनानियों की मदद करना था।

वे बहुत उदार-ह्रदयी और संवेदनशील थे, जब कभी उन्हें पता लगता कि किसी आर्थिक संकट के कारण कोई पढ़ नहीं पा रहा है तो वे चुपचाप उसकी फीस का भार वहन कर लेते थे, चाहे उन्हें घर के खर्चों में कटौती क्यों न करनी पड़े। कई लोग पढ़-लिखकर उच्च पदासीन हुए हैं और उन्होंने उनके प्रति अपना आभार व्यक्त भी किया है।

निजी जीवन बहुत संघर्ष पूर्ण रहा, उनके परिवार की वृद्धि विशेष नहीं हो पाई, एक लड़का हुआ जो होते ही ईश को प्यारा होगया, बाद में कन्या हुई, जिसका उन्होंने बड़े प्यार से 'महिमामयी' नाम रखा और पूरी उदारता और पूरे स्नेह से उनका पालन-पोषण किया। उस जमाने में उनका कहना था कि लड़की और लड़के में कोई अंतर नहीं होता, लड़कियों को उच्च-शिक्षा देना बहुत आवश्यक है। उन्होंने अपनी पत्नी श्रीमती कमला बाई को भी हिन्दी और अंग्रेज़ी भाषा का ज्ञान करवाया तथा यही नहीं कल्याण, रामायण, गीता आदि सभी

धार्मिक ग्रन्थों की व्याख्या करके सुनाया करते थे। ये सब पुस्तकें नियमित रूप से आया करती थीं। पुत्री ने जब मेट्रिक पास किया तो मिठाई बंटवाई, क्योंकि उस समय की वे कोटा कायस्थ-कुल की पहली कन्या थीं, लेकिन इससे अधिक साथ वे अपने परिवार का नहीं दे पाए और मात्र 42 वर्ष की आयु में वे भगवान् को प्यारे हो गए। उनके विचारों की परम्परा को उनकी पत्नी श्रीमती कमलादेवी जी ने कायम रखा। लड़कियों की पढ़ाई में आने वाली अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए भी उन्होंने अपनी इकलौती संतान को एम्.ए. करवाया। पर्दाप्रथा के कारण परदे वाले टाँगे(घोड़ागाड़ी) में वे अपनी पुत्री को कॉलेज भेजती थीं। उस समय पूरे कॉलेज में सिर्फ 5 ही लड़कियाँ थीं। बाद में विवाहोपरांत उन्होंने बी.एड कर सेकंडरी स्कूल की प्रधानाध्यापिका का पद संभाल कर अपने सुसंस्कृत और संस्कारी पालन-पोषण का परिचय दिया और उस समय की महिलाओं के लिए वे एक मिसाल बनी।.

संक्षेप में कहें तो मुंशी हीरालाल जी जालोरी का व्यक्तित्व और कृतित्व 'यथानाम तथागुण' वाला था। निसंदेह वे हाड़ौती (कोटा राज्य के) और सभी समाज के लोगों के लिए केवल आदरणीय ही नहीं अनुकरणीय व्यक्ति थे और रहेंगे और अपने हिंदी प्रेम, साहित्य-प्रेमी के रूप में उनका व्यक्तित्व हमारे लिए अनुकरणीय है, यद्यपि उनके लिखे साहित्य से हम दुर्भाग्यवश वंचित रह गए, पर एक कुशल अनुवादक के रूप में उनका कार्य पुलिस महकमे की नियमावली में मौजूद है।

हिन्दी दिवस के अवसर पर हिन्दी भाषा के ऐसे समर्पित कई गुमनाम साहित्यकारों को नमन और हार्दिक भावांजलि तो बनती ही है। इन्हीं से प्रेरित होकर मैंने भी हिन्दी-प्रसार का बीड़ा उठाया है और इसी के लिए मैंने भी सच्चे हृदय से समर्पित होकर यह पंक्तियाँ लिखी हैं और इन्हें साकार करने में बाल-साहित्य और शिक्षण के माध्यम से प्रयत्नशील भी हूँ....

'तुलसी क्यारे सी हिन्दी को, हर आँगन में रोपना है. यह वह पौधा है, जिसे हमें नई पीढ़ी को सौंपना है.'

***

लघु कथा

और वह लौट गया

मुरलीधर वैश्णव

इकलौते बेटे की दुर्घटना में हुई अचानक मृत्यु से वह इतना दुखी हुआ कि उसने आत्महत्या करने की ठान ली। शाम गहराते ही वह नदी पर बने पुल पर जा पहुँचा। ठंड थी। फिर भी पुल पर लोगों का आना-जाना लगा था। उसे लगा कि नदी में छलाँग लगाते देख उसे कोई बचा लेगा। वह अपने बचने की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ना चाहता था। उसने सोचा कि कुछ समय इधर-उधर बिताकर यहाँ सुनसान होने का इंतज़ार करना ठीक होगा।

वह नदी के किनारे जाकर टहलने लगा। वहाँ पास ही एक झोंपड़ी के बाहर एक बुज़ुर्ग अलाव तापते हुए कोई भजन गा रहा था। वहाँ पास ही कच्ची बस्ती के कुछ बच्चे भी बुज़ुर्ग के साथ भजन गा रहे थे। उसकी मन:स्थिति उस समय किसी से मिलने या बतियाने की नहीं थी। लेकिन अलाव की रोशनी में एक बड़ी-सी फ़ोटो-फ्रेम देखकर उसके पैर अनायास उधर ही बढ़ गए। झोंपड़ी के बाहर लटके एक बोर्ड पर कबीर पाठशाला लिखा हुआ था। बुज़ुर्ग ने उसे बैठने का इशारा किया।

'यह बड़ी-सी ग्रुप-फ़ोटो . . . और फिर अलाव के पास ?' उसने वहाँ बैठते हुए बुज़ुर्ग से पूछा।

''यहाँ बीच में कुर्सी पर बैठा हुआ मैं हूँ। पास वाली कुर्सी पर बैठी मेरी पत्नी फूलवती है। हमारे पीछे हमारे बेटे सन्नी और जय खड़े हैं। इनके पास खड़ी ज्योति और पम्मी मेरी बहुएँ हैं। आगे बैठे बंटी और बबलू मेरे पोते हैं। इन्हें भी सर्दी लग रही है न, इसीलिए इन्हें भी अलाव के पास बैठा रखा है।'' बुज़ुर्ग के ताम्रवर्णी चेहरे पर हल्की-सी एक दिव्य मुस्कान तैर गई थी।

'बाबा, मैं कुछ समझा नहीं।' उसने कहा।

'कुछ नहीं पुत्तर, कोई पाँच साल पहले मैं बाहर गया हुआ था। पीछे से आतंकवादियों ने घर में घुसकर इन सभी की हत्या कर दी थी। बस, अब ये इसी तरह मेरे साथ हैं।' कहकर वह फिर कबीर का भजन गाने में मस्त हो गया।

वह स्तब्ध था। कुछ क्षण बाद उसने बुज़ुर्ग के चरण स्पर्श किए और मुस्कराते हुए अपने घर की ओर लौट पड़ा।

***

संपर्क: 'गोकुल', ए-77, रामेवर नगर,बासनी,प्रथम फेज, जोधपुर-342005
मोबाइल: 9460776100

चिनार ने कहा था

मुरारी गुप्ता

चिनार जब आपको आमंत्रित करता है तो वह आपको ईरान नहीं बुलाएगा, क्योंकि उसका वंश ईरान से समाप्त हो चुका है। वह आपको कश्मीर की वादियों में आमंत्रित करेगा। सदियों पहले कश्मीर आए चिनार ने अब यहीं की आबो-हवा में अपना डेरा जमा लिया है। यूँ मूल रूप से चिनार ईरान का वाशिंदा था। अपने अस्तित्व की हिफाज़त के लिए जिस तरह अन्य सभ्यताओं से लोगों ने हिंदुस्तान में पनाह ली, फले, फूले और यहाँ का हिस्सा बने, उसी तरह सैकड़ो मीलों दूर ईरान से आकर चिनार कश्मीर की वादियों का सरताज, साक्षी और शोभा बन गया। उसकी कई पीढ़ियाँ इन घाटियों की जड़ों में रच-बस गई हैं। वह भी कश्मीरीयत की पहचान बन गया है। प्राकृतिक रूप से देखें तो, वादियों की पहचान अब उसी से है। उसकी विशाल देह। कद काठी। उसके खूबसूरत झरते पत्ते। उसकी लंबी उम्र। उसके झरते पके पत्ते जब घाटी की धरती पर बिछ जाते हैं तो लगता है मानों घाटी अग्नि सिंदूर से नहा ली हो। हमने भी हवाओं में चिनार के संदेशों को महसूसा और एक ढलती शाम को वादी के आकाश का इस्तकबाल किया।

सैकड़ों सालों की उम्र लिए चिनार महसूसते हैं घाटी की साँसों को। उसकी कई पीढ़ियों ने कश्मीरियत को महसूस किया है। पंडितों, डोगरों, सिखों, सूफियों, अब्दुल्लाओं, मुफ्तियों, गिलानियों की सैकड़ों पीढ़ियों के बचपन से लेकर बुढ़ापे का वह गवाह रहा है। दहशत के साए में भी चिनार हवाओं के जरिए दूर-दूर बैठे सैलानियों को संदेश भेजता है 'इस दहशतगर्दी से खौफ खाने की ज़रूरत नहीं है, बंदूकों की गोलियाँ कभी इतनी ताकतवर नहीं होती कि वह इंसानों के जज़्बे को छील भर सके। आइए, इन वादियों के साक्षी बनिये, जिनमें तुम्हारे आदि पुरुषों और महादेव ने अपनी आध्यात्मिक शक्तियों को निखारा है। और इनमें एक शांति कायम की है। दहशतगर्दीवादी की नियत नहीं है। इसकी नियत शांति और अमन है। इसका शिव है। यहाँ का शैव है। यहाँ सूफी मत है। विश्वास कीजिए, यह शिव फिर स्थापित होगा। और धीरे धीरे हो रहा है।'

तेरहवीं सदी में कश्मीर में शैव परंपरा को नई ऊँचाइयों पर ले जाने वाली गुरू लल्लेश्वरी या लाल देद की वाखें अभी भी वादियों में गूँजती हैं- हम ही थे, हम ही होंगे/हम ही ने चिरकाल से दौर किए/सूर्योदय और अस्त का कभी अन्त नहीं होगा/ शिव की उपासना कभी समाप्त नहीं होगी।

यह सच है कि कश्मीर में शिव की उपासना सदियों से हैं। घाटी शिव की तपस्या स्थली महाभारत के काल से भी पहले की है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, राजतरंगिणी, आईए-ए-अकबरी, नीलमत पुराण समेत कई ऐतिहासिक स्रोत इसकी पुष्टि करते हैं। मगर शिव की खोज में पंथनिरपेक्षता का तत्व डालने के मकसद से कुछ अलंबरदार इतिहासकारों ने रच दिया, अमरनाथ की गुफा की खोज कुछ भेड़ चराने वाले गुज्जर बकरवालों ने की। तब से यही इतिहास बार बार पढ़ाया जा रहा है। मानों, असल इतिहास बता दिया, तो कोई मजहबी तनाव हो जाएगा। यूँ इतिहास कभी छिपा नहीं रह सकता। वक्त और पुर्वाग्रहों की खुरचन हटाते ही वह खुद ब खुद प्रकट हो जाता है।

छठी सदी में मीलों दूर समंदर किनारे केरल से आद्यगुरू शंकराचार्य भी यहाँ शिव की खोज में ही आए होंगे। शंकराचार्य ने यहाँ आकर धूनी रमाई थी। इसी विशाल देह को समेटे डल के किनारे। डल के किनारे से सैकड़ों फीट ऊपर एक रमणीय पहाड़ी पर उनकी वह

संपर्क: ई-37 ए, शंकर विहार, एयरपोर्ट के सामने, जयपुर-302017(राजस्थान)
ईमेल: murli4you@gmail.com
मोबाइल:9414061219

छोटी सी गुफा अभी भी मौजूद है, जहाँ वे शिवमय हुए थे। उसके पास ही मौजूद है भव्य और ऐतिहासिक शिवलिंग मंदिर। नीचे से ऊपर तक पूरा परिसर सुरक्षा बलों के आत्मबल से सुरक्षित है। पहाड़ी पर चढ़कर गाड़ी रुकने के बाद लगभग डेढ़-दो सौ सीढ़ियाँ चढ़कर मंदिर पहुँचते हैं। मंदिर के घंट निनाद की ध्वनी तरंगे सैलानियों के साथ साथ डल के जिस्म को तरंगित करती हैं। यहाँ से पूरे श्रीनगर और वादी को महसूस कर सकते हैं, जिसे कुछ शायरों ने जन्नत का दर्जा दिया है। घंट निनाद को महसूस कर चिनार के पत्ते शिवोअहं बुदबुदाते हुए मुस्कराते हैं। उसे याद आता है अपना पैतृक घर ईरान यानी ऐतिहासिक पारस। पारस पर अरब, सिकंदर का आक्रमण। अरब आक्रमण के बाद तो जैसे ईरान की संस्कृति ही खत्म हो गई। उस संस्कृति के बचे खुचे अंश ईरान की इस्लामिक क्रांति ने समाप्त कर दिए अपने प्राचीन मंदिर, स्मारक और मूर्तियों को तोड़कर। चिनार को अफसोस होता है, कोई अपनी संस्कृति को खुद अपने ही हाथों कैसे खुरच खुरच कर खत्म कर सकता है। उसे हँसी आती है, देखिए, फिर भी अरब जगत् उन्हें इस्लाम में शामिल करने के लिए तैयार नहीं है। और हर वक्त लड़ने के लिए तैयार रहते हैं। इससे तो अच्छा था, अपनी बची खुची संस्कृति को फिर से ज़िंदा करते। उस पर गर्व करते। जैसे इजराइलियों ने किया। चिनार हिंदुस्तान का ऐहसानमंद है, जिन्होंने उस वक्त जान बचाकर भागकर आए पारसियों को अपने पश्चिमी समंदर किनारे आसरा दिया। पाला-पोसा-बड़ा किया। अब तो चिनार की पीढ़ियों का भी ईरान में कोई अस्तित्व नहीं रहा। अपनी धरती छूटने का दुख तो है, मगर वादियों की आवो-हवा उसे रास आ गई है।

वह आमंत्रित करता है हर साल श्रद्धालुओं को। महादेव की इस पवित्र तपस्थली में। हज़ारों फीट ऊँचे पर्वतों पर। महादेव ने भी इसी धरा को अपनी तपस्थली के लिए चुना। कोई तो उद्देश्य रहा होगा महादेव का। सैकड़ों हज़ारों वर्षों से देश के हर हिस्से से श्रद्धालु महादेव की तपस्थली का पवित्र दर्शन करने आते रहे हैं। और चिनार की शाखाएँ, पत्ता-पत्ता उनका इस्तकबाल करता रहा है, सदियों से। चाहे वह बालटाल का रास्ता हो या फिर पहलगाम का। कितनी खुशकिस्मत है चिनार की पीढ़ियाँ। सैकड़ों सालों से श्रद्धालुओं को अपने साये में सुस्ताने का सौभाग्य उन्हें मिलता रहा है।

इस बार यह सौभाग्य हमें भी मिला। श्रीनगर पहुँचने के बाद मित्र श्री सुनील कौल के सानिध्य से आकाशवाणी परिसर में मौजूद संन्यासी से विशाल चिनार के पेड़ तले कुछ पल रहने का सुख मिला। इससे पहले चिनार को सिर्फ फिल्मों से पहचाना करते थे। वह भी उनके झरते लाल पत्तों में घुले कथित इश्क से, जो फिल्म वालों ने घोल रखा है, फिल्म स्क्रीन को खूबसूरत दिखाने के लिए। खैर, खयाल आता है, इस चिनार ने भी वे भयानक, डरावनी, अलगावग्रस्त और रूह काँपने वाली आवाजें सुनीं होंगी। अब्दुल्ला और वीपी सिंह सरकार के नाक तले। घाटी से कश्मीरीयत तब ही पलायन कर चुकी थी। तब इबादत के पवित्र स्थलों से निकली उन भयानक आवाजों ने कश्मीरीयत का गला घोंट डाला था। कश्मीरीयत ने उन्हीं दिनों वहाँ से रुखसत करना शुरू कर दिया। अब कुछेक टुकड़ों में कश्मीरीयत को घाटी में महसूस किया जा सकता है। मगर इसकी असल तस्वीर देशभर में बिखरी पड़ी है। कश्मीरीयत सियासत के नारों से ज़्यादा कुछ नहीं बची है घाटी में। राष्ट्रवाद से प्रेरित सियासत भी कश्मीरीयत के घाव को भरने में नाकाबिल साबित हुई है, अगर स्थानीय अल्पसंख्यकों (कश्मीरी पंडित) की मानें तो। दिखावा ज़्यादा हुआ, काम बहुत कम। काम के लिए इच्छाशक्ति की ज़रूरत होती है।

महान वैज्ञानिक जगदीश चंद्र वसु ने पेड़ों की जीवंतता मापने के लिए अगर चिनारों पर प्रयोग किए होते तो यकीनन, उन्हें अलग तरह के नतीजे प्राप्त होते। अगर उन्होंने चिनारों की धड़कनों पर अपना क्रेस्कोग्राफ* लगाया होता, तो उन्हें घाटी के इतिहास की ऊँची-नीची-पथरीली-रपटीली घाटियों के ग्राफ बने नज़र आते। घाटियाँ दिखने में खूबसूरत हैं। इतनी कि किसी भी सैलानी का दिल इन पर आ जाए। अखरोट, बादाम, केसर, धान की खेती किसी भी सैलानी को लुभा सकती है। चिनाब, सिंधु, लीथर जैसी नदियाँ, जीरो प्वाइंट पर बर्फ में बर्फ के खेलों का आनंद, ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ, सड़कों के दोनों ओर घने हरे भरे पेड़, धान के खेत, झरने और नदियाँ घाटी को प्राकृतिक सौंदर्य से संवारती हैं। मगर, इन वादियों में उतना ही दर्द भी पसरा है। चिनार की टहनियों के पास ज़ुबान होती तो, वे बताती।

जून महीने के आख़िर में घाटी में पर्यटन उतार पर होता है। इसलिए होटल, रेस्तराँ, शिकारा की बहुत मारा मारी नहीं होती। आप इत्मीनान से श्रीनगर में इनका लुत्फ ले सकते हैं। 23 जून की शाम को लाल चौक पार करते हुए अपने पूर्व नियोजित रहवास में पहुँचे। डल हमें अपने नज़दीक पाकर मचल रही थी, या हम उसे अपने करीब पाकर खुश थे। ये या तो वह जानती है या हम। हाँ, लाल चौक एकदम सफेद था उस दिन। किसी जिलानी ने कोई कॉल नहीं किया था उस दिन। लोगों का जीवन बड़ी शांति और अमन से गुज़र रहा था। देर रात तक दुकानें खुली थी। सड़क पर ट्रैफिक किसी आम महानगर की तरह सरक-सरक कर रेंग रहा था। झेलम श्रीनगर के बीचों बीच से गुज़रती है। उसके ऊपर बने पुल पर सैंकड़ों वाहन अक्सर निकलने की जद्दोजहद में एक दूसरे से आगे निकलने की कोशिश करते हैं। खैर, इस पुल से कई बार गुज़रने का मौका मिला और हर बार जाम में अटकना पड़ा।

पहले दिन मुगलई बगीचों निशात बाग, शालीमार बाग, चश्मेशाही बगीचे से रूबरू हुए। तीनों में एक बात जो कॉमन थी वह वे झरने जो घाटियों से निकलते हुए, बाग को गुलज़ार करते हुए डल में अपना अस्तित्व खो देते हैं। मुगलई अंदाज़ में बने ये बगीचे मुगलकाल में दिल्ली की तपती मुगालफत और सुलगते आक्रोश से छुटकारा पाने के लिए मुगल बादशाहों की ऐशगाह हुआ करते थे। हालाँकि दूसरी किस्म के कई पेड़, पौधे और घास यहाँ लगी है, मगर इन बगीचों की खूबसूरती चिनार से है, जैसे घर में बुजुर्ग के होने से। अगर चिनार इन बगीचों से हटा दिए जाएँ, तो बगीचे विधवा हो जाएँगे। मुग़लो ने भले अपनी अय्याशियों को आरामदेह बनाने के लिए इन बगीचों का निर्माण करवाया हो, मगर फिलहाल बच्चों के लिए ये किसी खुशनुमा पार्क से कम नहीं

है। बच्चे इनमें बहने वाले झरनों में अपना बचपन जीते हैं।

जितना रोज़गार सरकारों ने यहाँ के लोगों को नहीं दिया, उससे कई गुना रोजगार श्रीनगर में शांत भाव से पसरी खूबसूरत डल झील ने लोगों को दिया है। शांत झील कितना रोजगार पैदा करती है, और दहाड़ते समंदर दो वक्त की रोटी भी नहीं दे सकते। कितने वर्षों से ये खोखले समंदर वादियों में महज खोखले चिंघाड़ रहे हैं। जिनमें अक्सर सरहद पार के खारे समंदर भी मिल जाते हैं। कभी कभी इनकी आवाज़े दिल्ली दरबार और हैदराबाद हाउस तक सुनाई देती थी। और उनके इस्तक़बाल में सियासत बिछ जाती थी। अब हालात बदल रहे हैं। महादेव करें ये और तेजी से बदले।

हमारे शिकारा के केवट मंजूर अहमद भी इससे सहमत दिखे। उनके मुताबिक डल उनकी ज़िंदगी है। पाँच साल का बच्चा भी सबसे पहले दोस्ती चप्पुओं से करता है। क्योंकि उनकी ज़िंदगी के ताउम्र दोस्त ये चप्पू ही होते हैं। मंजूर अहमद बताते हैं कि सियासत की सारी ताक़त तो कश्मीर में अलगाव के मुद्दे को ज़िंदा रखने में लग जाती है। यहाँ के नागरिकों को रोज़गार और घाटी के विकास के बारे में चिंतन करने को किसको फुर्सत है। आम नागरिकों से उनका ज़्यादा वास्ता नहीं है। वे कहते हैं, बेटे ने ग्रेजुएशन किया है। तीन लाख रुपये देने के वादे पर भी नौकरी नहीं मिली। अब डल में ही शिकारा चला कर अपनी ज़िंदगी गुज़ार रहा है।

टैक्सी के ड्राइवर बिलाल ने सियासत को अपने तरीके से समझाया। उसने कहा, घाटी में कोई पार्टी नहीं चाहती अमन हो। अगर एक पार्टी हार गई तो वह अलगाववाद को अपने तरीके से ज़िंदा रखती है। अलगाववादियों को सहलाती है। पत्थरों को इकट्ठा करके रखती है। यहीं चीज़ें उन्हें घाटी में ज़िंदा रखती है। सियासत का यही दुर्भाग्य है। जिन बातों से उन्हें ज़िंदा नहीं रहना चाहिए, वे ही उनके जीवन स्रोत हैं।

फिर से शिकारा के केवट की बात। डल में शहर की एक पूरी अर्थव्यवस्था चलती है। जैसे ही शिकारा झील में सौ डेढ़ सौ मीटर आगे बढ़ता है, मक्का वाला अपनी नाव लेकर आपके शिकारे से सटा देता है। आगे एक फल वाला आता है। एक प्लेट में पेश है-तरबूज, आम, लीची, केला, सेव के कटे टुकड़े। फिर आपकी डल यादों को अमर करने के लिए कुछ कश्मीरी पोशाकों के साथ एक नाव आती है। वह आपके शिकारा में ही आपको उन पोशाकों को पहनाकार आपकी तस्वीर ले लेगा। थोड़ा आगे बढ़िएगा तो नगीनशीं आपके मन मुताबिक अँगूठी तैयार कर देगा।

अगर श्रीनगर बन्द है और आपको शॉपिंग करनी है तो डल आपके लिए बेहतरीन मॉल है। झील के भीतर टापुओं पर हर तरह की दुकान बंद के दौरान भी खुली मिलेगी। यहाँ आप काश्मीर के शॉल और दूसरी चीज़ें खरीद सकते हैं। झील के भीतर कई टापू हैं जहाँ जीवन भरपूर ज़िंदगी के साथ चलता है। यह झील अपने भीतर उगे कई टापुओं को ज़िंदा रखती हैं।

जून के आख़िरी दिनों में अमरनाथ की यात्रा शुरू होने वाली थी। लिहाजा हर जगह फौज अनजाने खतरों के बीच श्रद्धालुओं की हिफाज़त के लिए मुस्तैद थी। सोनमर्ग के रास्ते में चढ़ते ही एक बोर्ड आपका स्वागत करता है-फ़ौज आपकी सेवा में- सचमुच कितनी तसल्ली मिलती है इसे देखकर, पढ़कर और महसूस कर। जवान स्थितप्रज्ञ की तरह अपने हथियारों के साथ मुस्तैद रहते हैं। अगर चलती गाड़ी में उनको सलाम किया तो मुस्कुराते हुए सिर हिला देते हैं। हर डेढ़ सौ दो सौ मीटर की दूरी पर एक या दो जवान तैनात थे। अमरनाथ यात्रा का एक रास्ता बालटाल के रास्ते सोनमर्ग होते हुए जाता है। ये कम दूरी का है, मगर अनंतनाग से थोड़ा मुश्किल है। सोनमर्ग के रास्ते मे सिंधु नदी पूरे उफान से बहती हुई चलती है। इसके किनारे कई रेस्टोरेंट हैं। सोनमर्ग के रास्ते मे ज़्यादातर रेस्तराँ पंजाब के नाम पर है। खास बात यह कि सामिष खाने वाले प्रदेश में शुद्ध शाकाहारी खाने वालों के लिए

सोनमर्ग से बेहतर कुछ नहीं है। उत्तर भारतीय, दक्षिण भारतीय, पंजाबी, पहाड़ी हर तरह का शाकाहारी भोजन इस रास्ते मे है।

सोनमर्ग से तीस किलोमीटर आगे है जीरो पॉइंट। यानी लाइन ऑफ कंट्रोल से थोड़ा पहले। यहाँ पहाड़ के जिस्म से चिपकी बर्फ पर सैलानी बर्फ के खेलों का आनंद लेते दिख जाते हैं। इसी बर्फ के निचली तहों से बहता पानी आगे सिंधु नदी में घुलकर पाकिस्तान के रास्ते समंदर में विलीन हो जाता है। पानी भी कितना सफर करता है। ज़ीरो पॉइंट से पहले बालटाल में अमरनाथ यात्रियों ने अपने डेरे जमा लिए थे। उनके रंग बिरंगे टैंटों को पहाड़ों से देखते हैं तो लगता है घाटी किसी दुल्हन सी सजी बैठी है।

पहलगाम यानि बैल गाँव अनंतनाग जिले का हिस्सा है। अमरनाथ यात्रा का यह मुख्य रास्ता है। यह रास्ता आगरा-बीकानेर राजमार्ग जैसा आरामदेह है। एकदम सपाट और चौड़ी सड़क। आधारभूत ढाँचे के स्तर पर हुए काम का यह बेहतरीन प्रतीक है। अनंतनाग श्रीनगर से लगभग 60-65 किलोमीटर दूर है। इसी रास्ते से जम्मू का रास्ता निकलता है। वैसे अमरनाथ यात्रा के लिहाज से देखें तो यह ऐतिहासिक और पौराणिक महत्त्व का रास्ता है, जहाँ से पाँच हज़ार वर्ष पहले पांडवों ने महाप्रयाण किया था।

इसी से शोपियाँ का रास्ता निकलता है। अलगाव की चिंगारियाँ इस इलाके में ज़्यादा सुलगाई जाती हैं, लिहाज़ा सेना के जवान और स्थानीय पुलिस के जवान हर सौ मीटर पर मौजूद है। इन जवानों पर हर वक़्त किसी अनजाने खतरे का साया रहता है। मगर मौत को ये अपनी मुट्ठी में रखते है। सैलानियों को सेना के जवान बायपास रास्तों से नहीं जाने देते। सुरक्षा कारणों से। हमारे

साथ हमारे मित्र और स्थानीय रहवासी सुनील कौल साब थे। उन्होंने कश्मीरी में उनसे बात की, मगर जब उन्होंने हमारे चेहरे देखे तो बाईपास रास्ते से जाने से एकदम मना कर दिया। इस रास्ते के दोनों और अखरोट के पेड़ और लीथर नाला साथ साथ चलते हैं।

पहलगाम की यात्रा के दौरान बीच में पड़ता है पंपोर इलाका। यह दक्षिण कश्मीर के आतंक सक्रिय जिला पुलवामा का हिस्सा है। पुलवामा जिला केसर की खेती के लिए प्रसिद्ध है। कश्मीर में सबसे ज़्यादा केसर पुलवामा के पंपोर क्षेत्र में होती है। और दुर्भाग्य से पंपोर में अलगाव के बीज भी खूब पनपते हैं। कैसा विरोधाभास है। पूरी घाटी में आम लोगों में सियासी पार्टियाँ केसरिया के प्रति दुर्भावना भरने में कोई कसर नहीं छोड़ती। घाटी में सियासी दलों और अलगाववादी संगठनों को सबसे ज़्यादा खौफ या नफरत केसरिया रंग से है। इतना फोकस अगर केसर पर किया होता तो इस इलाके की आर्थिक हालात और भी ज़्यादा मजबूत होती। खैर।

कश्मीर में आपने कहवा नहीं पिया, तो समझिए आपसे कुछ न कुछ छूट गया। स्थानीय कहवा तरोताज़ा करने के लिए काफी है। पहलगाम से लौटते वक्त सूखे मेवों की एक दुकान पर कुछ सूखे मेवे खरीदने के बाद दुकानवाले अब्दुल डार ने कहवा आफर किया। स्थानीय चाय और सूखे मेवे मिश्रित कहवा एक अलग तरह का बेहतर स्वाद जुबाँ पर चिपका देता है। यूँ तो कश्मीर में वाजवान यानि बकरे के गोश्त से बना खास व्यंजन यहाँ की खासियत है, मगर निरामिष का संस्कार उस ओर जाने से रोकता है।

पहलगाम के रास्ते में मट्टन से आगे निकलने पर रास्ते में उजड्ड से खड़े कश्मीरी पंडितों के घर, जो अब भी खौफ, नफरत, अलगाव के इतिहास को समेटे है, मन को छिन्न भिन्न कर देते हैं। सड़क किनारे अभी भी बेखौफ खड़े विशाल घरों के खोखले पिंजर, टूटी खिड़कियाँ और दरवाज़े, आँगनों में उग आए जंगली पौधे घरों की तात्कालिक बिवशता, असहाय, बेसहारापन जैसी हालत बयाँ करते हैं। कितने मट्टू, कौल, सप्रुओं की यादें इन टूटी खिड़कियों और दरवाज़ों से चिपकी हैं। दुर्भाग्य से, जिस पीढ़ी की इन घरों में पैदाइश हुई, उन्हें इनमें मरना तक नसीब नहीं हुआ। नई पीढ़ी जो दिल्ली, जम्मू और दूसरी जगहों पर जन्मी, पली और बढ़ी हुई है, वक्त की धार के साथ-साथ उनका भावनात्मक लगाव इन टूटे घरों से कितना रहा है, कहना मुश्किल है। मगर, दिल्ली और श्रीनगर की सियासत के चेहरों पर ये बिखरे घर कई बदनुमा दाग छोड़ देते हैं। हमारे साथ, हमारे मार्गदर्शक के रूप में चल रहे श्री सुनील कौल के परिवार को भी 90 के दशक में घाटी में अपने विशाल घर को छोड़कर जम्मू का रुख करना पड़ा। तब उनकी उम्र 16-17 की थी। उन्हें वो मंज़र अब भी हूबहू याद है। मगर मैंने उन्हें कुरेदा नहीं। उन ज़ख्मों को कुरेदने से बेहतर है उनकी साफ सफाई कर उनमे मलहम भरा जाए। अपने ही घर के आँगन में टैंट लगाकर रहना किसी भी सभ्य समाज के माथे पर कलंक है। विकसित लोकतंत्र में यह अस्वीकार्य है। कुछ आवाज़ें उठ रही हैं। मगर एक बात तय है बिना शक्ति भक्ति संभव नहीं है। पंडितों को सिर्फ सियासत के बल पर ही नहीं, बल्कि अपने भुजबल और आत्मबल से अपने खोए अतीत को हासिल करना होगा। बिल्कुल इज़राइल के यहूदियों की तरह। बिना ज़मीन के अस्तित्व के भी यहुदियो ने दो हज़ार साल तक अपने भीतर बिना ज़मीन और आसमान वाले राष्ट्र को ज़िंदा रखा। जब भी मिलते तो कहते अगली बार यरुसलम मिलेंगे। क्या पंडित भी श्रीनगर में मिलने, आशियाना संवारने, और शक्ति का नया केंद्र बनाने के वादे के साथ मिलने की हिम्मत करेंगे। संभव है आने वाले दिनों में उनके उजड़े घरों में फिर से गृह प्रवेश की शहनाई बजे। चार दिन बाद एक अलसाई सुबह में भीगी वादियों को छोड़ हम वापस लौट आए। लौटते-लौटते भीगते चिनारों ने हमसे वापस आने का वादा लिया। उसके मौन शब्दों ने कहा, देखिएगा, जल्द ही घाटी में गृहप्रवेश की शहनाइयाँ गूँजेगी। तुम फिर लौटकर आना सैलानी।

उम्मीद है कश्मीर की अगली यात्रा किसी कश्मीरी पंडित मित्र के गृह प्रवेश के निमंत्रण पर होगी।

***

दोहे

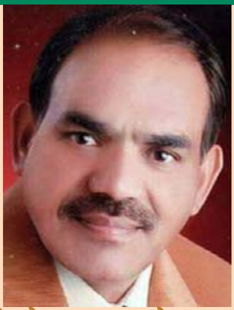

डॉ. गोपाल राजगोपाल के दोहे पिता पर

बरसों बीते पर मुझे,ऐसा लगता तात।
साया एक अदृश्य सा,चलता मेरे साथ॥
***

बिना मजूरी लौटते,बापू जब थक-हार।
लेकर आते पाँव में,सौ-सौ मन का भार॥
***

जीवन भर पीते रहे,बापू मन की पीर।
ना होठों पर शब्द थे,ना नैनों में नीर॥
***

माता सुन्दर दृश्य है,जो मंचित हर ओर।
बापू हैं नेपथ्य में,जिनके हाथों डोर॥
***

बापू ने समझा दिया,था जितना सामर्थ्य।
फिर बोले खुद ढूँढ़ना,इस जीवन के अर्थ॥
***

देते थे हर बात पर,बापू ताना मार।
मेरे ही हक में रहा,उनका ये व्यवहार॥
***

बापू बच्चों के लिए,होते हैं कुछ खास।
उनके काँधे बैठकर,दिखता है आकाश॥
***

ज़िन्दा थे जब तक पिता,सोच रही बेमेल।
दर्पण कहता हू-ब-हू,शक्लें खाती मेल॥
***

मुझे उठा कर गोद में,पिता गए उस धाम।
जिनके आशीर्वाद से,मिला पिता का नाम॥
***

चढ़ती भौंहें तात की,बतला देती राज़।
वो कितने प्रसन्न हैं,वो कितने नाराज़॥
***

आँख पिता के मूँदते,यूँ बदले हालात।
भाई भी करते नहीं,अब आपस में बात॥
***

संपर्क:225-सरदारपुरा,पेट्रोल पंप के पीछे,
उदयपुर-313001 (राज.)
ईमेल: rajgopar1@gmail.com

ग़ज़लें

नुसरत मेहदी

कुछ रास्तों ने यूँ भी रखा है भरम मिरा
कम कर दिया है दूरी ए मंज़िल का ग़म मिरा

राहे फ़रार ढूँढ़ रही हूँ मैं आजकल
दिल लग रहा है इन दिनों बस्ती में कम मिरा

फिर आ गए सराब से मंज़र निगाह में
लो फिर जुनून होने लगा ताज़ादम मिरा

मंज़िल की जुस्तुजू कभी ख़ाना बदोशियाँ
अपना जवाज़ ढूँढ़ रहा है जनम मिरा

मुद्दत से कोई मुझ में मिरा मुंतज़िर सा है
अब ख़ुद सुपुर्दगी की तरफ़ है क़दम मिरा

नुसरत हमेशा रखना है किरदार मोतबर
अब वक़्त कर रहा है फ़साना रक़म मिरा

***

चश्मे उम्मीद अपनी वा रक्खो
वक़्त बदलेगा हौसला रक्खो

जिस्म मंज़िल है और न रस्ता है
रूह को रूह पर खुला रक्खो

तश्नगी इश्क़ की अलामत है
अपनी आँखों में कर्बला रक्खो

इतनी तनहाइयाँ भी ठीक नहीं
कुछ ज़माने से राब्ता रक्खो

मानता ही नहीं मनाने से
यूँ करो अब उसे ख़फ़ा रक्खो

***

इश्क़ रक़्साँ हुआ हम दोनों में ख़ुशबू की तरह
मैं कि अब मैं न रही तू भी नहीं तू की तरह

छा गया रूह प एहसास तिलिस्मी तेरा
मैं भी तारी तेरे आसाब पे जादू की तरह

ख़ाक उड़ाता है अगर दश्ते जुनूँ ख़ेज़ में तू
मैं भटकती हूँ तेरी ज़ात में आहू की तरह

मेरी तन्हाई में है नग़मा सरा तेरी याद
तेरी धड़कन में मेरी गूँज है घुँघरू की तरह

ये तेरे दीद की ख़्वाहिश है धनक की सूरत
खिंच गई है जो फ़लक़ पर मेरे अबरू की तरह

रतजगे सब तेरे मंसूब हैं मुझसे और मैं
तुझ में रौशन हूँ शबे हिज्र में जुगनू की तरह

मरहला ज़ब्त का है इश्क़ में सम्भलो नुसरत
चश्मे एहसास में ठहरे हुए आँसू की तरह

***

फ़ज़ा में फैली हुई तीरगी में शामिल हूँ
सुकूते शब, मैं तेरी ख़ामशी में शामिल हूँ

है बुज़दिली की अलामत ये ख़ामशी लेकिन
मैं अपने अहद की इस बुज़दिली में शामिल हूँ

अयाँ ज़माने में तू भी नही है और मैं भी
बहुत सी बातों की पोशीदगी में शामिल हूँ

सुना तो ख़ूब गया है मुझे मगर फिर भी
ये लग रहा है किसी अनकही में शामिल हूँ

यही नही कि ज़बानें हुई हैं ज़हरीली
मैं इनके ज़ेहन की आलूदगी में शामिल हूँ

अगर ये सच है तो महसूस क्यों नहीं होता
ए वक़्त मैं तेरी मौजूदगी में शामिल हूँ

क़फ़स में जो ये परिंदा है ताक में नुसरत
मैं इसके जज़्बये आमादगी में शामिल हूँ

***

संपर्क: एफ़ 9/4, चार इमली, भोपाल,
मप्र 462016
मोबाइल: 9425012227

क्यों खिज़ाँ में में हरी भरी हुई है
शाख़ ए गुल तू तो बावरी हुई है।

क्या उड़ानों को हौसला देगी
ऐ हवा, तू तो ख़ुद डरी हुई है।

ज़िन्दगी मिल कभी तो फ़ुरसत से
बात अभी तुझसे सरसरी हुई है।

कोई मंज़र नहीं है आँखों में
रतजगों की थकन भरी हुई है।

क़ुरबतें करवटें बदलती हुई
और अना बीच में धरी हुई है।

ये जो बैठे हैं सर झुकाये हुए
आज इनसे खरी खरी हुई है

ख़ुद कलामी है ये तेरी नुसरत
मत अभी सोच शायरी हुई है

***

अमल का रद्दे अमल वक़्त का जवाब हूँ मैं
क़ुबूल कीजिए क़ुदरत का इंतेख़ाब हूँ मैं।

न इक़्तेबास फ़क़त और न एक बाब हूँ मैं
मेरी हयात, मुकम्मल तेरा निसाब हूँ मैं।

नहीं है ज़िक्र मेरा बस यहाँ ज़बानों पर
दिलो दमाग़ के अंदर भी बे हिसाब हूँ मैं।

अज़ीयतों का सफ़र, सब्र और ख़ामोशी
अभी तो सारे महाज़ों पे कामयाब हूँ मैं।

अज़ल अबद पे कोई तब्सिरा नहीं मेरा
बस अपने लमहये मौजूद का हिसाब हूँ मैं।

तुम्हारे शौक़ में शामिल नहीं जुनून अभी
तुम्हारी तिश्नालबी के लिए सराब हूँ मैं।

अना पे आई तो टकरा गई हूँ दरिया से
बिसात वैसे मेरी कुछ नही, हुबाब हूँ मैं।

भरम ये है कि बज़ाहिर हूँ पुरसुकूँ 'नुसरत'
किसे ख़बर है कि इक मौजे इज़्तेराब हूँ मैं।

***

कविताएँ

जालाराम चौधरी की कविताएँ

सियासत

वो आए थे और ले गए
बिना पूछे...बिना जाने
हाँ सफेदी में आए थे
और कहा था 'हम तुम्हारे साथ हैं'
ज़रूरत पड़ने पर कहना?
क्या उन्होंने तुम्हारे धूप में बहते पसीने
जो लहू के साथ आता है बाहर
उनके बारे में कुछ कहा-क्या???
क्या उन पगथलियों के गहरे निशाँ देखे थे
घिसे कंधो को देखा था
उत्तर?? केवल एक ही था- 'नहीं' !
जैसे कोई अपराधी कहता हैं अपने बचाव में
बड़े इत्मिनान से.....ऐसे लगता हैं
जैसे गला रेत रही है वो
बेरहम सियासत....
फसल लेकर जा रही थी उनकी गाड़ी
जैसे सूखे तालाब से लेकर जा रहा
कोई भरकर पूरा टैंकर
पीछे उड़ती धूल में
वो महसूस कर रहा था
जैसे उनका अनाज उन धूल के कणों में
तब्दील हो गया हो
देखता रहा बहुत देर तक
जब तक उड़ी हुई धूल विश्राम न कर लेती
फिर से धरा पर।
***

ज़िन्दगी

ज़िन्दगी ज़िन्दों से ही
माँगती हैं उनका हिसाब
मृत्युपरांत तो खुद
हो जाता हैं बेहिसाब
लेकिन ज़िन्दगी
वसूलती हैं
मुआवजे के तौर पर
ज़िन्दगी का हिसाब
रहती हैं बेताब..हरपल-हरदम
रखती हैं सम्भालकर
पूरे हिसाब की
कई सलवटें वाली लहरदार
पन्नों की किताब
अवतरण से हँसाती हैं
अपनों को.....
तो बाद देती हैं
पारिश्रम सम्पूर्ण ज़िन्दगी का
तोहफ़े में....क्या????
वही ज़िन्दगी....देगी मुझे
बिना आवाज़ लगाए
एक्सपायर प्रतिभागी के रूप में
विदाई के बंधन से बाँध कर
एक दिन मौत का ख़िताब....!
***

कवि हूँ!

मैं लिखता हूँ कविताएँ
मानवीय सहानुभूति पर
अत्याचारों पर,अपराधों पर
कभी लिखता हूँ दिल को पिघलाकर तो
कभी यमदूत सरीखे विचित्र प्राणी बनकर
निर्जीव-सजीव स्मृतियों में खोकर
धुँधली एवं स्पष्ट चित्रों को देखकर
कल्पना के विमानों में उड़कर
ठण्डे जल एवं वायु में तैरकर,
स्पृश कर काव्यत्मकता लाकर
उसमें मेरी कोई औकात नहीं,
खींचता हैं मुझे लिखने को मेरे मन को
अंतदृष्टि सहयोग देती हैं बढ़-चढ़कर
पृष्ठभूमि भी
और बन जाती हैं कविताएँ
लोगों को पढ़ते,घूमते,परखते आदि में ही
गति....प्रतिबिंबो में.....
नि:सन्देह कविताओं में कवि हूँ मैं
आजकल एलबम,तस्वीरों की छवि हूँ मैं
संवेदना के धरातल पर लगता हैं
तूलिका में....सृजन सफल हैं!
स्मृतियों को उनकी भावानुभूति से अंकित
करना चाहता हूँ...
ज़िन्दगी भर काल के गहनता में
और खुद....तल्लीनता में !
***

संपर्क: हनुमानजी के मंदिर के पास (आम चौहटा),गाँव -डाबली,पोस्ट-खंडप,वाया-मोकलसर,तह.-सिवाना,जिला-बाड़मेर,
राजस्थान(भारत) पिनकोड-344043
ईमेल- jalaramjor@gmail.com
मोबाइल नं.9166993382

गीता घिलोरिया की कविताएँ

जब तुम बड़े बनते हो

मेरे जन में,
मेरे मन में,
खुशियाँ और बढ़ती है...जब तुम बड़े बनते हो!

मेरे नैन,
उस रैन,
तेज़ चमकते है,...जब अनकही ज़बाँ पे धरते हो!

ये डर,
ये खौफ,
और खनकते है,....जब तुम शंका बिन लपकते हो!

ये छोटे-छोटे
हाथ तेरे ...
मुझे अब भी छोटे लगते है....जब अपनी मनमानी करते हो!

और छोटा-सा
ये घर मेरा,
कुछ और बड़ा हो जाता है.....जब तुम बड़े बनते हो !
***

मन

कभी अधबुनी हसरतों से तराशा,
कभी अनछुए ख़्वाबों ने जगाया,
दूर होने की दलीलें भी बहुत दी मगर,
ये न थमा था, ना फिर किसी ने थमाया... !!

कई दिन खोए, कई रात खोईं,
कई जीत खोई, कई रीत खोई,
तीज-ताज, ठाठ-बाट, बोल-चाल तज दी मगर
ये न माना था, ना फिर किसी ने मनाया... !!

आड़ में छुपी थी जो कभी,
वो छाया तक बिसर चुकी,
कई रातें - कई रातों में कतरा-कतरा सिमट चुकी,
ये ना बिखरा था, ना फिर अपनों ने बिखेरा !

मन ने, ठान ली बस,
मन ही में, मान ली बस,
मन आधा था, और आधे में ही साँस ली बस,
मन ही ने, मन को, कुछ यूँ आज़माया,
मन के, मन में, हार न बसी फिर,
ये ना हारा था, ना फिर किसी ने हराया.... !!

***

संपर्क:10034 Paxton Run Rd, Charlotte 28277, USA
ईमेल: fine.art.gita@gmail.com

रोहित ठाकुर की कविताएँ

नदी-1

चाँद घुल रहा है नदी में
समय अपना पाप
नदी में धोता है
यही नदी का सौंदर्य है
नदी गतिमान है उस समय
जब जड़ हो चुकी है संभावनाएँ
जब सभी आत्माएँ आकाशगंगा
की ओर ताक रही है

नदी पलायन के खिलाफ
अपनी देह को अधिक
धंसा रही है इसी धरती में॥

***

नदी -2

वह शहर
जिसने नदी की हत्या की है
हताश है
उसकी नींद पत्थर में बदल गई है
एक मरी हुई नदी को जलाया नहीं जाता
वह शहर अभिशप्त है
जो मरी हुई नदी के साथ जीता है
नदी की हत्या करने के बाद
वह शहर
मनुष्यों की हत्या करता है।

***

नदी- 3

नदी पानी की एक चादर है
जिसे ओढ़ लिया करती है असंख्य मछलियाँ
नदी कभी लौटती नहीं है
नदी के पाँव किसी ने देखा नहीं है
मेरे मुहल्ले की एक लड़की
नदी में पाँव डाल कर घंटों बैठती थी
उसके पैर कमल के फूल हो गए
बारिश से भींगी नदी
इस धरती की पहली लड़की है
जिसके हाथ बहुत ठंडे थे
नदी का बचना
उस ठंडे हाथ वाली लड़की का बचना
मुश्किल है इन दिनों।

***

जीवन

एक साईकिल पर सवार आदमी का सिर
आकाश से टकराता है
और बारिश होती है
उसकी बेटी ऐसा ही सोचती है

वह आदमी सोचता है की उसकी बेटी के
नीले रंग की स्कूल - ड्रेस की
परछाई से
आकाश नीला दिखता है

बरतन माँजती औरत सोचती है
मजे हुए बरतन की तरह
साफ हो हर
मनुष्य का हृदय

एक चिड़िया पेड़ को अपना मानकर
सुनाती है दुख
एक सूखा पत्ता हवा में चक्कर लगाता है
इसी तरह चलता है जीवन का व्यापार॥

***

बसें

कितनी बसें हैं जो छूटती है
इस देश में
कितने लोग इन बसों में चढ़ कर
अपने स्थान को छोड़ जाते हैं
हवा भी इन बसों के अंदर पसीने में बदल जाती है
इन बसों में चढ़ कर जाते लोग
जेल से रिहा हुए लोगों की तरह भाग्यशाली नहीं होते
ये लोग मनुष्य की तरह नहीं सामान की तरह यात्रा में हैं
ये लोग एक जैसे होते हैं
मामूली से चेहरे / कपड़े / उम्मीद के साथ
जिस शहर में ये लोग जाते हैं
वह शहर इनका नाम नहीं पुकारता
भरी हुई बसों में सफर करता सर्वहारा
नाम के लिए नहीं मामूली सी नौकरी के लिए शहर आता है
ये बसें यंत्रवत चलती है
जिसके अंदर बैठे हुए लोगों के भीतर कुछ भींगता रहता है
कुछ दरकता सा रहता है ॥

***

चाँद पर गुरुत्वाकर्षण बल कम है

चाँद पर गुरुत्वाकर्षण बल कम है

इस धरती पर देखो
कितना गुरुत्वाकर्षण बल है
इसे तुम विज्ञान की भाषा में
नहीं समझ सकते
कितने लोग हैं जिनकी चप्पलें
इस धरती पर घिसती है
कितने लोग हैं जो पछाड़ खा कर
इसी घरती पर गिरते हैं
कितने लोग हैं जिनके बदन से छीजता
पसीना इस धरती का नमक है
कितने लोग हैं जो थक कर चूर हैं
और इस धरती पर लेटे हुए हैं
कितने लोग हैं जो इस धरती
पर गहरी चिंता में डूबे हैं
वे जो प्रेम में हैं
और वे जो घृणा में हैं
इसी धरती पर हैं
कितने लोग हैं जो
आशाओं से बंधे हैं
कितने लोग हैं जो
किसी की प्रतीक्षा में हैं
इस धरती का जो
गुरुत्वाकर्षण बल है
यह इन सबका ही
सम्मिलित प्रभाव है॥

***

संपर्क:जयंती- प्रकाश बिल्डिंग, काली मंदिर रोड, संजय गाँधी नगर, कंकड़बाग, पटना-800020, बिहार
ईमेल: rrtpatna1@gmail.com
मोबाइल:7549191

पंखुरी सिन्हा की कविताएँ

सज्जा

सज्जा,
सिर्फ सज्जा,
जिसे त्याग देने को जी करता था,
जोगन बन जाने को जी करता था,
बन जाने को सन्यासी,
साधू व्रत ले लेने को,
इतनी खुँखार लड़ाई थी,
इतनी वहशी दहशत,
ऐसे क्षत विक्षत शरीर आ रहे थे,
अस्पताल में,
जहाँ नई- नई नर्स की नियुक्ति हुई थी उसकी,
लैंडमाइंस से ध्वस्त शरीर,
बर्बर आक्रमण पैरों पर,
फिर कभी न चल पाने की सज़ा देता,
एक आयातित हथियार,
प्रेषित हथियार,
जिसके इस्तेमाल में निपुण बनाए जा रहे थे बच्चे,
हथियार नहीं वह यहाँ का,
भाषा नहीं वह यहाँ की,
ज़बान नहीं वह यहाँ की,
फैक्ट्रियाँ नहीं यहाँ उसकी,
क्या बनाईं जाएँ फैक्ट्रियाँ, प्रत्युत्तर में,
केवल प्रत्युत्तर में,
कैसे क्रूर सवाल,
जबकि स्याह पड़ गए होठों पर,
पीली पड़ गईं आँखों में,
सूखते अधरों पर,
काँपती हो ख्वाइश कोई,
थामने को उसका हाथ,
उस सैनिक का जो लड़ता हो बंदूकों से,
आमने-सामने,
जब डाक से आ रही हों पत्रिकाएँ विदेशी,
रानियों की तस्वीरों वाली,
शांतिदूतों की, राजदूतों की,
और सिर्फ टिंचर,
आयोडीन की महक हो हवा में,
और घर में डेटोल की शीशी,
हाथ धोने के बाद के लिए,
पूरी तरह डेटोल से हाथ धोने के लिए,
मेल नहीं खाए तस्वीरों से हवा की गंध,
और भयाक्रांत हो सारे शब्द,
सारे सपने, आवाज़ें सारी,
पत्तों का खड़कना तक,
और सिर्फ जन्म देने की आतुरता,
पंख फैलाती हो, उसकी नारी देह में,
और ये तय करना मुश्किल हो,
कि ज़्यादा पाक तस्वीर कौन सी है?
सन्यास की, या गृहस्थ की?

***

नए हवन कुंड

बिल्कुल नई पूजा की विधि थी,
नए किस्म के पाक धुँए,
क्रॉस को थामने और चूमने के अंदाज़ नए थे,
उस विदेशी पादरी के,
आवाज़ नई थी उसकी,
उच्चारण नया,
लम्बी प्रार्थना थी,
बड़ी माँगें,
फूलों से लदा था कमरा,
सज्जा जैसी एक नैसर्गिक इच्छा प्रबल हो रही थी,
फूल तोड़ने की भी,
अर्पित करने की भी,
अर्पित होने की भी,
सन्यास का रुमान मंच पर बोल रहा था,
माइक से बोल रहा था,
कान्वेंट के फाटक के बाहर,
लड़के ऐन छुट्टी के वक़्त नज़र आ रहे थे,
अपने सत्रहवें जन्मदिन के लिए,
उसने पहली बार चूड़ियाँ पहनी थीं।

***

सिंधु सभ्यता की स्मृतियाँ, प्रेम और विघटन का दायरा

तुम्हें छोड़ देने के बाद ही
क्या मैं आज़ाद होकर बोल पाऊँगी
स्मृतियों पर
जो कि केवल सिंधु सभ्यता की स्मृतियाँ हो सकती हैं
पर ज़्यादा मुमकिन है
ये विदेश में रह आने की स्मृतियाँ हों
जो बिल्कुल ही न समझ पातीं हों
कि आख़िर क्या दिक्कतें हैं
कुछ एक पेड़ तक लगा पाने में?
शहर की सड़क के किनारे
फूलों के पेड़ लगा पाने में?
पर तुम्हे छोड़ देने के बाद ही
क्या इस खुली हुई छत की हवा
सचमुच, खुली होगी
अबाध होगी
मेरी मुस्कुराहट
निर्बाध मेरी बातें
तुम जो मुझे इतने प्रिय हो
कैसे सम्प्रेषित हो रहा है

जाने क्या
हमारे बीच बात के हर मोड़ पर
लगता है तुम मुझे छोड़ ही दोगे?
कि जैसे बहस ही नहीं हो मुमकिन
न कोई बात मतभेद की
ये लगातार छोड़ने, पकड़ने
छूट ही जाने की
औरों की लाई हुई
क्या परिणति सी है
प्रेम की
हमपर किसी न्यूक्लियर घटा सी छाई हुई?
सब बातें अब इस दायरे में हैं?
***

नौकर, दाई और घरवालों की राजनीति

तुम्हारा नौकर
तुम्हारी हर बात का
टेढ़ा जवाब न दे
इसके लिए ये भी ज़रूरी है
कि तुम पड़ोसी के साथ बैठकर
कुछ कम करो
पति निंदा
अपनी बेटी, पुत्रवधु के खिलाफ
राजनीति भी कुछ कम.....
***

पुरानी इमारतों के रोशनदानों में रहने वाली भाषा

वो लोग जो रख देते हैं
भाषा को ताक पर
बुद्धि की ही तरह
कि यहीं रहेगी भाषा
किसी बहुत पुरानी
लगभग जर्जर इमारत के रोशनदान में
जहाँ मुमकिन है
ढ़ेर सारे पर्दों से होकर
आती हो रौशनी केवल
सूरज की सीधी किरण से
जिसका कोई वास्ता न हो
सूर्योदय और सूर्यास्त के समय की
खबर तो हो
पर परिणामों का पूरा एहसास नहीं
कोई सम्पर्क नहीं हो जिसका
दुनिया भर में होने वाली
तकनीकी और विद्युत क्रांतियों से
अगर हो तो बेहद सतही
उनकी समझ उथली, ऊपरी बाहरी
भीतरी हो
केवल एक शाश्वत गंवई दृष्टि
जिसमे अगर आ भी रहा हो परिवर्तन
तो इतना धीरे
कि उम्र बीत जाए
बहु बेटियों की
अपने अधिकारों की ज़मीन तलाशते......
***

विरासत में बहस

विरासत में देना किसी को
एक ऐसी बहस
कि समस्याएँ खड़ी हों केवल उससे
दाम्पत्य में
विरासत में देना किसी को एक बहस
फिजूल की, और वह भी खामखाह
तुम्हारे पास वक़्त है
अपनी कौड़ियाँ, सीपियाँ सजाने का
सजा लेने के बाद
उन्हें शीशों के चारों ओर
मढ़ भी देने का
कहते हैं वो
और कि तुम दिखाती हो प्रतिबिम्ब एक समय का
ये भी कहते हैं वो
गनीमत है
वर्ना कला इन दिनों
कैसी तो एक फजीहत है
जिनके पास वक़्त नहीं
चुनने का सीप
बजाने का शंख
गिनने का समुद्र की लहर
वो जानते हैं रातों की एक एक पहर
सुन लेते हैं
समुद्री गर्जन घनघोर
शांत दिनों में दूर से
जिनके पास दृष्टि नहीं
भेदने को
समुद्र की प्लावित समतल सतह
उनकी बहस कहीं और उलझी है
संभवत: किनारों की भीड़ में....
***

संपर्क: nilirag18@gmail.com

प्रीती पांडे की कविताएँ

मैं और तुम

जेठ की तपती धारा मैं
बूँद तुम आषाढ़ की
राम के स्पर्श से
पावन शिला पाषाण की ...
और जो मैं हूँ निशा तो
भोर हो तुम आस की
आस्था के दीप तुम
तो लौ हूँ मैं विश्वास की ...
मित्र तुम शैशव के
तो मैं प्रीत यौवन काल की
संग जीवन-यात्रा में
सहचरी चिर-काल की ...
***

बेटियाँ

सर्दी की धूप-सी
कोयल की कूक-सी
होती हैं बेटियाँ........

अमराई की छाँव-सी
बाबुल के गाँव-सी
होती हैं बेटियाँ.......

नखरे में गुड़िया-सी
जादू की पुड़िया-सी
होती हैं बेटियाँ.......

अल्हड़ इक छोरी-सी
मीठी इक लोरी-सी
होती है बेटियाँ.........

शोखी में हिरनी-सी
ममता में जननी-सी
होती हैं बेटियाँ.......

मीत की मनुहार-सी
सावनी फुहार-सी
होती हैं बेटियाँ.......

बंसी-सी होठ पर
मलहम-सी चोट पर
होती हैं बेटियाँ........

सतरंगे चित्र-सी
अंतरंग मित्र-सी
होती हैं बेटियाँ......

होली की उमंग,
कभी राखी की सौगंध-सी
होती हैं बेटियाँ......

आज जो बचकानी,
तो कल वही सयानी-सी
होती हैं बेटियाँ.......

सृष्टि का आधार जब
फिर क्यूँ अभिशाप-सी
होती हैं बेटियाँ......???

***

प्रेरणा

हार माने क्यूँ है बैठा
तू पथिक है विजय-पथ का
चल रहा है समर
पहिया रोक ना अपने रथ का।

ठान ली है तूने गर
तो क्यूँ नहीं मंजिल मिलेगी
तू चलेगा आगे अगर
सफलता संग-संग चलेगी।

माना कि मुश्किल है डगर
शूल बिखरे हैं राह पर........
पर तेरे उद्धव से
सब शूल बन जाएँगे फूल
कल बनेगा ताज सिर का
आज है जो पग की धूल।

लक्ष्य है तेरा सुनिश्चित
कमी बस विश्वास की
अनवरत् तू चल पथिक
इक डोर थामे आस की।

कर भरोसा अपने कर का
अंसभव कुछ है नहीं
जो हैं कर्मठ धुन के पक्के
स्वर्ग उनका बस है यहीं।

कर्म ही है धर्म तेरा
मान गीता के कथन को
चला-चल तू कर्म पथ पर
पूर्ण कर जीवन-सपन को।

***

बन गए देखो फसाने

थी ज़रा सी बात
लेकिन बन गए देखो फसाने
थे वजह आँसू की जो
आए हैं वो हमको हँसाने...

कत्ल करने में हो माहिर
हो शिकारी तुम बड़े
हम भी पर शातिर नहीं कम
दिल तेरा मेरे निशाने ...

था उन्हें मालूम कि
इक चोर उनको तक रहा है
आ गए झट से वो
छज्जे पर धुली जुल्फें सुखानें ...

गुम ख़यालों में कभी
लगते कभी हो गुनगुनाने
क्यों चले हो यार
अपना इश्क यूँ हमसे छुपाने ...

नासमझ थे ..
राज दिल के
सब बयाँ करते थे जब
आ गए हैं अब मगर
हमको भी इक सौ इक बहाने ...

क्या हुआ जो आज हैं
गर्दिश में यूँ अपने सितारे
कह रही उम्मीद ...
इक दिन
आएँगे फिर दिन सुहाने ...
आए हैं वो हमको हँसाने...

***

रहने दो

कुछ पलकें भीगी-सी
कुछ अलकें उलझी-सी
कुछ बातें झूठी-सी
प्रीत जरा रूठी-सी
रहने दो ..

कुछ सपने आँखों मे
चंदन-सा साँसों में
कुछ प्यास पीने में
कुछ राज सीने में
रहने दो ....

कुछ रातें जागी-सी
कुछ भीगी-भागी सी
कुछ दिन दोपहरी के
कुछ शामें तन्हा-सी
रहने दो ....
कुछ काजल नैनों मे
कुछ फैला अम्बर पर
कुछ टुकड़े चूड़ी के
कुछ सिलवट चादर पर
रहने दो ...

सूने सन्नाटों में
फूल कुछ किताबों में
बिसरे से वादों में
कुछ यादें यादों में
रहने दो ....

बेशक.. अनजाने हम
बन जाएँ फिर से
कुछ तुम में मुझ जैसा
कुछ मुझमें तुम जैसा
बाकी रहने दो..

कुछ दिन मधुमास,
कुछ बिरहा की पीर से
सदियाँ कुछ लम्हों-सी
कुछ लम्हे सदियों से
रहने दो ...

***

संपर्क: रो हाउस क्रमांक 36, ड्रीम सिटी,
तलावाली चन्दा, इंदौर
ईमेल: preeti42pandey@rediffmail.com
मोबाइल:8085370900

केशव शरण की कविताएँ

मेरा प्यार

मेरा प्यार
बिना रुसवाइयों के था
बिना तकरार के
और अपने घर-आँगन में
चल रहा था झारके

रुसवाइयों वाला भी
अगर रहता तो भी मुझे स्वीकार था
तब भी
अब भी
कहीं भी
अपने घर में
या बिग बॉस के घर में

मेरे कर में
ख़ूबसूरत महकता गुलाब है
मगर मेरा मुक़द्दर ख़राब है
***

आँख खुल गई

बैकुंठ में बैठे
प्रभु के बारे में
प्रवचन सुनते-सुनते
मुँदते गए मेरे नयन
मुझे कभी भी बैकुंठ दिख सकता था
कभी भी प्रभु
कि तभी मेरी आँख खुल गई
निरंकुश सम्राट की प्रशंसा से

मेरी आँख खुल गई
और फिर मैंने
नहीं सुना
प्रवचन
***

जन्मदिन का उपहार

छोटे बच्चे हों तो
खिलौने दो
कपड़े दो

बड़े बच्चे हों तो
पुस्तकें दो
पौधे दो

यही नहीं
जवान बच्चों को भी
प्रौढ़ बच्चों को भी
वृद्ध बच्चों को भी
जिनका भी जन्मदिन
मनाओ
पुस्तकें दो
पौधे दो
दो चाहे और जो!
***

बुराई यही है

इस पहाड़ की
कम ऊँचाई नहीं है
कम बड़ाई नहीं है
ताँता लगा है
प्रकृति-प्रेमियों का
गाइड की भी
कम कमाई नहीं है
बुराई यही है कि
सफ़ाई नहीं है
निर्झर के निकट
***

और क्या कर रहे हैं वे

कभी ये कुआँ
झंकाते हैं
मुझे
कभी वो कुआँ
और
क्या कर रहे हैं वे
जबकि मेरी प्यास
देने लगी है
धुआँ
***

राजनीति

जो कहते हैं
मैं अपने दर्द में
घूमता हूँ
वे मुझे पहुँचने ही नहीं देते हैं
अपने दिल तक
या किसी भी दिल तक

लोग
किस क़दर
राजनीति करते हैं
***

मेले और अकेले

दुनिया में
एक दिन के मेले से लेकर
चालीस दिन तक के मेले होते हैं
लेकिन यह भी सच है कि
मेलों के बावजूद
लोग अकेले होते हैं
और अकेले रोते हैं
सब दिन
***

अतीत, वर्तमान, भविष्य

मैं अपने भविष्य के लिए
दौड़ रहा हूँ
जो अपने में
कई लक्ष्य लिए है,
हर लक्ष्य की दिशा अलग है

यह मेरी दौड़ की गति
स्थाई स्थिति है
मेरे वर्तमान की

जिन लक्ष्यों को
प्राप्त करने में
मैंने सफलता प्राप्त की
वे अतीत में विलीन हो गए हैं
***

संपर्क: एस 2/564 सिकरौल, वाराणसी
221002
ईमेल: keshavsharan564@gmail.com
मोबाइल:9415295137

नवगीत

शिवानन्द सिंह 'सहयोगी' के नवगीत

यदि शहर जीने दे

हर पलक जीना चाहती
मैत्री भरी यह ज़िन्दगी
यदि शहर जीने दे

छींटाकशी का आवरण
अभिज्ञान से बाहर
हैं नामधारी हो गए
संज्ञान से बाहर
यह समझ भी कुछ बन सके
देवत्व का अमरित
यश अमरता को पकड़ ले
यदि जहर जीने दे

हर शब्द की परछाइयाँ
हैं दर्द का नीरज
सहला रहा है घाव को
हर धैर्य का धीरज
स्वर सिन्धु-मंथन भी करे
हो अंतरा भावुक
उस फट चुके शववस्त्र को
यदि हहर जीने दे

हम दुर्ग से अमरावती
पैदल गए थे कल
थे राह में जो भी मिले
सब रो रहे थे पल
संभावनाओं को अभी
हल, छू नहीं पाए
अवसर बिछा दें राह में
यदि डहर जीने दे
***

अपने कष्ट सचेत किए कुछ

अपने कष्ट सचेत किए कुछ
उनकी व्यथा रुलाई अक्सर

अनुभव-किरण चढ़ी जब छत पर
फुटपाथों की भूख निहारे
सामाजिकता की पुआल पर
अपने दु:ख की धूप पसारे
नीरज नयन रहे मुसकाते
आँसू कुछ समझाई अक्सर

अपनेपन की धर्म-ध्वजाएँ
नहीं निकट थीं दूर खड़ी थीं
सरसों कुछ हरियाई सी थी
आशाएँ मजबूर खड़ी थीं
पीड़ा ही बस पास पड़ी थी
चूम-चूम सहलाई अक्सर

अनहोनी से लड़ते-लड़ते
औरों के सुख-दु:ख को जाने
तलवे तवा बने थे जिस दिन
सूरज की क्षमता को माने
कविता माई-बाप भूमिका
अँगुरी पकड़ चलाई अक्सर

आँख नहीं है दूरबीन जो
स्वयं बुराई को परहेज़े
नहीं लेखनी पैनी ही कुछ
अन्तस् उमड़े भाव सहेजे
गोलमेज पर करा गोष्ठियाँ
गुन-धुन कुछ सिखलाई अक्सर
***

शब्दों की चकबंदी

पंखनुचे पंछी की पीड़ा
शब्दों की चकबंदी गीत

भावभूमि का शिला-लेख चिर
अर्थ-गगन का श्याम-विवर
भावपक्ष की गझिन पहाड़ी
स्वर-संगम का विरल शिखर
धीरे-धीरे स्वयं निखरता
अन्तस् की तुकबन्दी गीत

छन्दबद्ध मृदुलाई का क्रम
लय-यति-गति का पंख जमा
आँतों का अंगार सुलगता
एक क्रांति का शंख रमा
भूख-प्यास-श्रमजल का सागर
वादों की हदबंदी गीत

अक्षरमाला का आलिंगन
कहन-कला का शित संक्षेप
भाषा शैली शिल्प बिम्ब की
एक कहानी का आलेप
संयम का अनुराग-क्षितिज नम
पीड़न की नसबंदी गीत
***

मूँगफली के दाने

ठिठुर रहे हैं कड़ी ठण्ड में
मूँगफली के दाने

चढ़े कड़ाहों को आँचों ने
तेज़ लपट से दागा
गीले बालू के शरीर से
शीत-युद्ध है भागा
कौड़ तापती टंच कँपकँपी
सुनती फिलिमी गाने

बच्चे खेल रहे हैं चड्ढी-
भाग-भगौवल-गुच्ची
फटी रजाई देती लुक-छिप
दुधपिल्ली की पुच्ची
कीच मार्ग पर धूम मचाते
खेल-कूद के माने

गुल्लीडंडा मारा डंडा
छत पर पहुँची गुल्ली
छपक-छपक पानी में छपकी
छोटी चिड़िया चुल्ली
कुहरे की चौखट पर ठहरे
कोट-कचहरी-थाने

ठिठुर रहे हैं कड़ी ठण्ड में
मूँगफली के दाने
***

संपर्क:'शिवाभा', ए-233, गंगानगर,
मेरठ-250001 (उ.प्र.)
ईमेल: shivanandsahayogi@gmail.com
मोबाइल:09412212255

नवगीत

गरिमा सक्सेना के नवगीत

माँ बेटे की राह देखती

वृद्धाश्रम में माँ बेटे की
राह देखती
है सूनी आँखों में धुँधली-सी
अभिलाषा
पुत्र व्यस्त हैं, कहकर देती
रोज़ दिलासा
नहीं मानती बिसराएँगे
नहीं बिसरती
नहीं सीख पाई है मतलब
खुद से रखना
जिसे जना है, उसे समझती
केवल अपना
हुई अनुपयोगी ये बातें नहीं
समझती
अँगुल-अँगुल सींचा जिसने
दूध पिलाकर
उसे कहाँ माँ कहते हैं बेटे
अब आकर
कँपती हाथें, रोज़ पकाती, बरतन
मँजती।
***

इस सूखे में बीज न पनपे

इस सूखे में बीज न पनपे
फिर जीवन से ठना युद्ध है
पिछली बार मरा था रामू
हल्कू भी झूला फंदे पर
क्या करता इक तो भूखा था
दूजा कर्ज़ा भी था ऊपर
घायल कंधे, मन है व्याकुल
स्वप्न पराजित, समय क्रुद्ध है
सुता किसी की व्याह योग्य है
कहीं बीज का कर्ज़ा भारी
जुआ किसानी हुआ गाँव में
मदद नहीं कोई सरकारी
चिंताओं, विपदाओं का पथ
हुआ कभी भी नहीं रुद्ध है
भूखे बच्चे व्याकुल दिखते
आगे दिखता है अँधियारा
सोच न पाता ग़लत क्या सही
मिले कहीं जब नहीं सहारा
ऐसे में जीवन अपना ही
लगता जैसे की विरुद्ध है
***

प्रगति पंथ दस्तक दे कहता

खोलो काल किवाड़
जहाँ कभी सौभाग्य सदृश था
मौसम का बदलाव
वहीं आज बदलावों ने है
बोए नए अभाव
सभी जानते मगर न रुकता
प्रकृति संग खिलवाड़
कोयल की थी तान जहाँ पर
गौरैयों का वास
पशु-खग नर सब की ख़ातिर ही
था समुचित आवास
वहीं नीड़ को टॉवर चिमनी
नित हैं रहे उजाड़
स्वार्थ सिद्धि की परिभाषाएँ
बुनने लगीं तनाव
एक घाव को भरने को हम
दिए जा रहे घाव
पाकर के परमाणु शक्ति को
सदी रही चिंघाड़
***

क्षरित हुए संबंध नेह के

जीवन के बदलावों से
टीवी मोबाइल में खोए
कैसे समकालीन हुए हैं
चिट्ठी खोई, नुक्कड़ सूना
सुविधाओं में लीन हुए हैं
नकली मुखड़े मित्र हो गए
दूर हुए सद्भावों से
बूढ़ी आँखें अपनी हालत
किसे दिखाएँ किसे बताएँ
व्यस्त सभी बच्चे खुद में ही
कथा-कहानी किसे सुनाएँ
धन की कमी कहीं अच्छी थी
मन को मिले अभावों से
सब अपना ही राग अलापें
कोई मेल-मिलाप नहीं है
मैं-मैं की इस नई सदी में
दिखता 'पहले आप' नहीं है
सुख की परिभाषा को जोड़ा
है हमने अलगावों से
***

संपर्क : flat no . 212 A block, Century Saras Apartment, Anantapura road, yelahanka, Bangalore.
ईमेल: garimasaxena1990@gmail.com
मोबाइल:7694928448

सोनरूपा विशाल के दो गीत

एक सीधा सा सरल सा मन

एक सीधा सा सरल सा मन
साथ अपने ले गया बचपन!

फ़िक्र से अंजान रहते थे
पंछियों जैसे चहकते थे
इंद्रधनु जैसी लिए मुस्कान
चुलबुली नदिया सी बहते थे

मस्तियों से गूँजता आँगन
साथ अपने ले गया बचपन!

हम थे मौलिक गीत के गायक
रह गए अब सिर्फ़ अनुवादक
कहने को आज़ाद हैं लेकिन
ख़्वाहिशों के बन गए बंधक

तृप्ति का,संतुष्टि का हर क्षण
साथ अपने ले गया बचपन !

प्रेम को व्यापार कर बैठे
ज़िन्दगी रफ़्तार कर बैठे
जो नहीं था ज़िन्दगी का सच
झूठ वो स्वीकार कर बैठे

सच को सच कहता हुआ दर्पण
साथ अपने ले गया बचपन!

होके अपने आप तक सीमित
साधते हैं सिर्फ़ अपना हित
स्वार्थ की पगडंडियों पे चल
कर रहे हैं ख़ुद को संचालित

भोर की किरणों सा भोलापन
साथ अपने ले गया बचपन

एक सीधा सा सरल सा मन
साथ अपने ले गया बचपन!
***

गीत गाना है मुझे सद्भाव का

कालिमा के कंचनी बदलाव का
गीत गाना है मुझे सद्भाव का

चाँद से लेती किराया रात क्या ?
भेद करती है किसी से प्रात क्या ?
फूल देते हैं कभी आघात क्या ?
पेड़ के बैरी बने हैं पात क्या ?

प्रश्न जो समझा रहे उस भाव का
गीत गाना है मुझे सद्भाव का

सर्द से रिश्तों को गर्माहट मिले
सूनी गलियों को मधुर आहट मिले
गुमशुदा नावों को अपना तट मिले
हर रुदन को शीघ्र मुस्काहट मिले

इन क्षणों के सुखमई बदलाव का
गीत गाना है मुझे सद्भाव का

कालिमा के कंचनी बदलाव का
गीत गाना है मुझे सद्भाव का
***

संपर्क : 'नमन', प्रोफ़ेसर्ज़ कॉलोनी,बदायूँ, उत्तर प्रदेश 243601
ईमेल: sonroopa.vishal@gmail.com

भाषांतर

जे. तेकुरा मेसन

अनुवादक- डॉ. अमित सारवाल

पैसिफिक कवि जे. तेकुरा मेसन की पुस्तक टैटू (2001) से चुनी गई कविताओं का हिंदी अनुवाद।

पुराने आशिक़

पुराने आशिक़ों की उफ़ तुम्हारी बातें पकाती हैं,
रखो इनको अपने दिमाग़ के
अँधेरे कोनों में
मत करो अभिव्यक्त उसको जो मैं चाहती नहीं सुनना;
रहने दो उन्हें अतीत में जहाँ हैं उनका ठिकाना,
हम है अलग अब एक दुनिया और जीवन-काल।
मत समझो मुझे इतना भी सभ्य,
मैं बात कर सकती हूँ अंग्रेज़ी में, पहनती हूँ पाश्चात्य वस्त्र
परन्तु मेरे अंदर का जंगली चाहता है की मैं ले जाऊँ मेरे शूल उनके पास।
(जहाँ तक मेरा संबद्ध हैं, तुम थे अक्षतवीर्य जब मैं तुमसे मिली थी।)
***

(जे. तेकुरा मेसन, ''पुराने आशिक़'', टैटू, सुवा: माना पब्लिकेशन और इंस्टिट्यूट ऑफ़ पैसिफिक स्टडीज़, यूनिवर्सिटी ऑफ़ दी साउथ पैसिफिक, 2001, पृ. 36.)

शरद के पेड़

जब मैं यहाँ आई थी पहली बार
तुम लगे थोड़े अजब
तुम्हारी पत्तियों ने बदला रंग
हरे से हुई लाल
और फिर सुनहरी
अब मैं यहाँ हूँ कुछ समय से
जान गई हूँ तुम सबके नाम भी
और क़दर करने लगी हूँ
अंतर की
तुम्हारे
और उनके बीच जिन्हें आई हूँ मैं छोड़।

(जे. तेकुरा मेसन, ''शरद के पेड़'', टैटू, सुवा: माना पब्लिकेशन और इंस्टिट्यूट ऑफ़ पैसिफिक स्टडीज़, यूनिवर्सिटी ऑफ़ दी साउथ पैसिफिक, 2001, पृ. 98.)
***

संपर्क: Senior Lecturer, School of Language, Arts & Media, Faculty of Arts, Law & Education, The University of the South Pacific, Private Mail Bag, Laucala Campus, Suva, Fiji Islands
ईमेल : amit.sarwal@usp.ac.fj
sarwal.amit@gmail.com
मोबाइल: (+679) 3231648 / (+679) 7151007

समाचार-सार

बिलासपुर में राष्ट्रीय व्यंग्य महोत्सव व्यंग्य यात्रा एवं बिलासा कला मंच का आयोजन

दिल्ली, मुंबई, आगरा, उत्तराखंड, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, हरियाणा, छत्तीसगढ़ आदि प्रदेशों से व्यंग्यकार, कथाकार बिलासपुर पहुँचे। राष्ट्रीय व्यंग्य महोत्सव का उद्घाटन अटल बिहारी वाजपेयी विश्वविद्यालय बिलासपुर के कुलपति प्रोफ़ेसर डॉ. गौरीदत्त शर्मा और डॉ. प्रेम जनमेजय ने किया। विशिष्ट अतिथि हरीश पाठक, धीरेन्द अस्थाना, गिरीश पंकज, नीलकंठ पारटकर कार्यक्रम के शुभारंभ के समय उपस्थित थे। महोत्सव की प्रस्तावना एवं स्वागत उद्बोधन बिलासा कला मंच के संस्थापक डॉ. सोमनाथ यादव ने किया।

डॉ. प्रेम जनमेजय ने व्यंग्य विधा की बारीकियों पर चर्चा की. उन्होंने कहा कि व्यंग्य व्यक्ति को सचेत तो करे उसे अपमानित न करे। कुलपति शर्मा ने अपने जीवन से जुड़े अनुभवों से व्यंग्य की शैली में अपनी बात रखी।

उद्घाटन भाषण में हरीश पाठक ने कहा कि 'व्यंग्य लिखना सधे कदमों से एक बारीक तार पर चलना है।यह श्रम साध्य कार्य है जो करते है वे कभी हरिशंकर परसाई हो जाते है तो कभी,शरद जोशी, कभी प्रेम जनमेजय, तो कभी गिरीश पंकज हो जाते है।कथाकार धीरेंद्र अस्थाना ने कहा,व्यंग्य लिखना हरेक की वश की बात नही है। नीलकंठ पार टकर ने कहा,जीवन मे व्यंग्य ताजे हवा के झोंके की तरह है।

मुख्य अतिथि डॉ. विनय कुमार पाठक ने कहा कि हमारे यहाँ छत्तीसगढ़ में लोग अपनी बात को ताना के रूप में कह देते हैं, यही व्यंग्य है।

***

'चारों ओर कुहासा है', का लोकार्पण

श्री रघुवीर शर्मा की सद्य लोकार्पित प्रथम काव्य कृति 'चारों ओर कुहासा है', का लोकार्पण समारोह न केवल गौरी कुञ्ज सभागृह में, आद्यन्त सुधी-रसिक श्रोताओं की अभूतपूर्व उपस्थिति का आयोजन रहा है; अपितु कृति केन्द्रित कोटि की आत्मीय समीक्षा का आदर्श सारस्वत साहित्यिक अनुष्ठान सिद्ध हुआ है। विनय उपाध्याय ने रघुवीर संग सीता को आमंत्रित करने की अभिनव पहल कर, सौम्य नारी- शक्ति के आदर्श- सम्बल को बिसरने नही दिया। वाक् पटु यशस्वी विनय के भावप्रवण विचारों ने श्रोता वर्ग की मनोदशा को, समीक्षा तत्वों पर आधारित शुभाशंषाएँ सुनने का मनोयोग सौंपा।

सारगर्भित उद्गारों के साथ काव्य उध्दरणों से आबद्ध श्री शशिकांत गीते तथा श्री योगेन्द्र वर्मा 'व्योम' के आलेख काव्य कृति को समीक्षात्मक आयाम दे गए।

माहेश्वर तिवारी जी के उद्बोधन में तो आत्मीयता की सहज-सरल भावाभिव्यक्ति ने खंडवा-हरसूद-स्व.वीरेन्द्र मिश्र (नवगीत-पुरोधा)-सुदूर होकर भी डूबते हरसूद की सिहरन के अहसास ने,स्थानीय रूप में उनकी पहचान रघुवीर भाई के साथ हमारे-अपने हमदर्द की शक्ल में करवा दी।

शिवना प्रकाशन प्रतिनिधि स्वरूप शैलेन्द्र शरण ने श्री रघुवीर शर्मा का शॉल-श्रीफल तथा अतिथिवृंद को अपनी पुस्तकें भेंट कर सम्मानित किया।

रघुवीर भाई के नवगीत से निसृत रसधार ने, रसिक श्रोताओं को अतिथि नवगीतकारों के नवगीतों की पावन सलिलाओं से रससिक्त करते हुए; नवगीत के कैलाश-मानसरोवर दादा माहेश्वर तिवारी के नवगीत गंगधार में भावविभोर कर दिया।

***

रजनी गुप्त के उपन्यास 'नए समय का कोरस' पर चर्चा आयोजित

कैफ़ी आज़मी एकेडमी, लखनऊ में रजनी गुप्त के सद्यः प्रकाशित उपन्यास 'नए समय का कोरस' पर संगोष्ठी आयोजित की गई। इस उपन्यास में कॉरपोरेट जगत की अंदरूनी सच्चाइयों को लेखिका ने सफलतापूर्वक बेपर्दा किया है। कॉरपोरेट वर्ल्ड द्वारा हवा में उछाले गए एक शब्द 'पैकेज' ने देश की युवा पीढ़ी के मानस को इस प्रकार से झकझोरा है कि उसके सामने उनका बहुत कुछ नेपथ्य में चला गया।वहाँ सब कुछ मिलता है मगर नहीं मिलता है तो अपने लिए वक्त। वह दुनिया उन्हें सिर्फ एक मशीन बना कर छोड़ देती है। इन सबके बीच बनते-बिगड़ते रिश्ते, प्यार, डेटिंग, ब्रेकअप, पेरेंट्स का प्रेशर तथा सोशल मीडिया उन्हें धीरे-धीरे अकेलेपन की तरफ धकेलते चले जाते हैं। भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित इस उपन्यास पर वरिष्ठ आलोचक वीरेंद्र यादव, कथाक्रम के संपादक शैलेंद्र सागर, वरिष्ठ कथाकार शिवमूर्ति, वरिष्ठ कवि नरेश सक्सेना, समाजसेवी वंदना मिश्रा, कथाकार महेंद्र भीष्म, कथाकार शीला रोहेकर तथा तरुण निशांत ने अपने विचार रखे। कार्यक्रम की अध्यक्षता वरिष्ठ कथाकार रवींद्र वर्मा ने किया। इस अवसर पर लमही के प्रधान संपादक विजय राय, जनसंदेश टाइम्स के संपादक सुभाष राय, वरिष्ठ कथाकार वीरेंद्र सारंग, सुशीला पुरी, उषा राय, प्रताप दीक्षित सभागार में मौजूद थे। कार्यक्रम का संचालन लखनऊ यूनिवर्सिटी के असिस्टेंट प्रोफ़ेसर रविकांत ने किया। इस अवसर पर पाण्डुलिपि पब्लिकेशन प्रा .लि.से आए रजनी जी के उपन्यास 'किशोरी बिन्नू' का भी लोकार्पण किया गया।

***

मदारीपुर जंक्शन पर चर्चा आयोजित

जब आज के दौर में कथालेखन में तमाम ज़मीन से उखड़ी चीज़ें आ रही हैं, जिनका आज जनजीवन से कोई गहरा सरोकार नहीं है, ऐसे दौर में बालेन्दु द्विवेदी ने अपने पहले ही उपन्यास मदारीपुर जंक्शन में अपनी जमीन के परतदार यथार्थ को उदघाटित कर लेखक के सरोकारों को फिर से केंद्र में रखा है। ये बातें कार्यक्रम की मुख्य अतिथि एवं हिंदी की जानी मानी कथाकार उपन्यासकार नासिरा शर्मा ने उर्दू अकादमी लखनऊ के सभागार में मदारीपुर जंक्शन उपन्यास पर आयोजित चर्चा संगोष्ठी में बोलते हुए कहीं। अध्यक्ष पद से बोलते हुए प्रोफ़ेसर सूर्यप्रसाद दीक्षित ने उपन्यास के कथ्य, भाषा व चरित्रांकन सबकी तह में जाते हुए इसे बेहद रोचक उपन्यास बताया तथा कहा कि यह न तो आंचलिक उपन्यास है जिसमें कोई नायक नहीं, पूरा अंचल ही केंद्र में होता है। न शुद्ध पारंपरिक किस्सागोई वाला उपन्यास है। उर्दू अकादमी के सभागार में युवा उपन्यासकार बालेन्दु द्विवेदी लिखित उपन्यास मदारीपुर जंक्शन पर आयोजित इस विचार विमर्श की अध्यक्षता लखनऊ विश्वविद्यालय के पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो.सूर्यप्रसाद दीक्षित ने की। मुख्य अतिथि थी जानी मानी कथाकार उपन्यासकार नासिरा शर्मा। इस अवसर पर लमही पत्रिका के संपादक विजय राय, दिल्ली से पधारे कवि आलोचक डॉ. ओम निश्चल, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति ब्रिगेडियर अहमद अली, उर्दू अकादेमी की अध्यक्ष प्रो. आसिफा जमानी, उत्तर प्रदेश पत्रिका की संपादक हिमानी जोशी एवं अवधी कवि रामबहादुर मिसिर, मौजूद थे। कार्यक्रम का संचालन कवयित्री शीला पाण्डेय ने किया।

***

व्यंग्य की कलम से आयोजन

हल्द्वानी (उत्तराखंड): नेशनल बुक ट्रस्ट,नई दिल्ली के तत्वावधान में 24 जून 2018 को आयोजित साहित्यिक कार्यक्रमों का आगाज 'व्यंग्य की कलम से' आयोजन के साथ हुआ जो बहुत ही सफल रहा। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए जयपुर से आए व्यंग्यकार और कवि फारूक आफरीदी ने व्यंग्य के औचित्य, महत्त्व और उसकी दशा एवं दिशा पर विस्तार से चर्चा की। व्यंग्य की मूल अवधारणा और औचित्य की चर्चा करते हुए आफरीदी ने कहा कि व्यंग्य अब एक स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित हो चुकी है। प्रारम्भ में एनबीटी के दीपक कुमार ने सभी का स्वागत किया। मीना सदाना अरोड़ा ने कार्यक्रम संचालन दायित्व बखूबी संभाला।

***

मुंबई में साहित्य समारोह

मुंबई की संस्था वैश्विक साहित्यिक सांस्कृतिक वैज्ञानिक परिषद और जबलपुर की संस्था पाथेय साहित्य कला अकादमी के संयुक्त तत्वाधान में आयोजित समारोह में डॉ. राजकुमार 'सुमित्र', प्रोफ़ेसर दिलीप, व्यंग्यकार सुभाष चंदर, पत्रकार श्री चंद किशोर शर्मा, डॉ. नीलिमा सिन्हा तथा अभिषेक मिश्रा आदि ने अपने विचार व्यक्त किए।

***

अनिल शर्मा 'जोशी' की पुस्तक 'प्रवासी लेखन : नई ज़मीन, नया आकाश' का लोकार्पण

लंदन में भारतीय उच्चायोग के सांस्कृतिक केंद्र नेहरू सेंटर में ब्रिटेन के सांसद श्री वीरेन्द्र शर्मा व अन्य साहित्यकारों के साथ ऑक्सफर्ड विश्वविद्यालय में आयोजित हिंदी महोत्सव के उद्घाटन कार्यक्रम में अनिल शर्मा 'जोशी' की प्रवासी लेखन पर पुस्तक 'प्रवासी लेखन : नई जमीन, नया आसमान' का लोकार्पण देश – विदेश के प्रमुख साहित्यकारों के द्वारा किया गया।। कार्यक्रम में बोलते हुए विभिन्न वक्ताओं ने पुस्तक को प्रवासी लेखन के संबंध में महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ बताया। कार्यक्रम का आयोजन यू.के.हिंदी समिति, वातायन, कृति यू.के द्वारा वाणी फाऊडेशन के सहयोग से किया गया था। कार्यक्रम की अध्यक्षता हाल में ही प्रकाशित पुस्तक 'कस्तूरबा की रहस्यमय डायरी' की लेखिका नीलीना आधार डालमिया ने की। उन्होंने अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में पुस्तक के प्रारंभ में लिखे डॉ. सत्येंद्र श्रीवास्तव के उस वाक्य का रेखांकित किया जिसमें कहा गया है कि प्रवासी लेखक की दुगनी ज़िम्मेदारी होती है, अपनी ज़मीन को बचाए रखना और नई ज़मीन की तलाश। वरिष्ठ लेखका और कहानीकार व वातायन की अध्यक्ष दिव्या माथुर ने कहा कि अनिल इतनी रचनात्मकता के साथ प्रवासी लेखन पर इसलिए लिख पाए हैं क्योंकि वे स्वयं समर्थ लेखक हैं और कवि है, उन्होंने ब्रिटेन में हिंदी के विकास के प्रति उनके योगदान को देखते हुए उनके कार्यकाल को ब्रिटेन में हिंदी का स्वर्ण युग बताया। लेखिका शिखा वार्ष्णेय ने कहा की यह आजतक प्रवासी लेखन पर लिखी गई सबसे समग्र पुस्तक है।

***

चलो, रेत निचोड़ी जाए

कांस्टीट्यूशन क्लब, नई दिल्ली में प्रसिद्ध कवि श्री ओम प्रकाश कल्याणे और पत्रकार-लेखक प्रकाश हरि के प्रबंधन में दो पुस्तकों के लोकार्पण का एक व्यापक साहित्यिक कार्यक्रम आयोजित किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता लब्ध-प्रतिष्ठ राजनेता और केंद्रीय मंत्री श्री सत्यनारायण जटिया ने की जबकि मुख्य अतिथि वयोवृद्ध प्रतिष्ठित कवि श्री बाल स्वरूप राही थे। मंचासीन प्रतिष्ठित साहित्यकारों में श्री लक्ष्मी शंकर वाजपेयी, डॉ. कीर्ति काले, डॉ. मनोज मोक्षेंद्र, तथा श्री प्रेम बिहारी मिश्र के अतिरिक्त प्रसिद्ध मंचीय कवि श्री बी एल गौड़, विख्यात समाजसेवी श्री सूरजभान कटारिया भी उपस्थित थे।

***

'सृजन संवाद' की हीरक जयंति

'सृजन संवाद' की 75वीं गोष्ठी को संबोधित करने एस एन डी टी, महिला विद्यापीठ, मुंबई से सेवानिवृत नाट्य-सिने समीक्षक प्रोफ़ेसर सत्यदेव त्रिपाठी बनारस से आए। 'सृजन संवाद' के विशेष आमंत्रण पर आए डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी ने 'इसे खत मत समझना...' का कहानी पाठ किया। कार्यक्रम के दूसरे हिस्से में युवा कलाकार दिनकर शर्मा ने मुक्तिबोध की कहानी 'पक्षी और दीमक' की प्रभावकारी नाट्य प्रस्तुति दी। गोष्ठी का संचालन डॉ. विजय शर्मा ने किया। 'सृजन संवाद' की हीरक जयंति के सुअवसर पर प्रो. सत्यदेव त्रिपाठी जी से मिलने और उन्हें सुनने का लोभ ही था कि लोग बारिश के बावजूद उन्हें सुनने आए ।

***

हिंदी कार्यशाला

उच्च ऊर्जा पदार्थ अनुसंधान प्रयोगशाला, पुणे में 'राजभाषा हिंदी एवं उसका कार्यांवयन' विषय पर एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया। इस कार्यशाला का उदघाटन उत्कृष्ट वैज्ञानिक, डॉ. राज किशोर पाण्डेय, वैज्ञानिक एच, सह निदेशक ने किया। उन्होंने प्रतिभागियों को हिंदी में काम करने में गर्व महसूस करने की प्रेरणा दी। इस अवसर पर उन्हें हिंदी समिति के अध्यक्ष डॉ. हिमांशु शेखर, वैज्ञानिक जी, व्दारा रचित काव्यमय प्रशस्ति पत्र भी समर्पित किया गया। इस अवसर पर बोलते हुए अतिथि वक्ता श्रीमती रेखा सिंह, श्री महेंद्र कुमार मिश्र हिंदी के प्रयोग के लिए प्रोत्साहित किया।

***

भाषा शास्त्री आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा का जन्म शताब्दी समारोह

बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन में आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा का जन्म शताब्दी समारोह मनाया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता भाषा-भारती पत्रिका के संपादक नृपेन्द्र नाथ गुप्त ने की। इस मौके पर बैंक ऑफ बड़ौदा के राजभाषा प्रमुख डॉ. जवाहर कर्नावट को हिन्दी का वैश्विक स्तर पर प्रचार-प्रसार करने के लिए सम्मानित किया गया।

***

काव्य संग्रह 'नव अर्श के पांखी' का विमोचन

मध्य प्रदेश साहित्य उत्सव- 2018 में श्री कमल किशोर गोयनका, उपाध्यक्ष-केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा, श्री उमेश सिंह निदेशक, साहित्य अकादमी मध्य प्रदेश व वरिष्ठ साहित्यकार ओम निश्चल आदि गणमान्य अतिथियों की उपस्थिति में रविन्द्र भवन भोपाल में कवयित्री, एंकर अनुपमा श्रीवास्तव 'अनुश्री' के काव्य संग्रह 'नव अर्श के पांखी' का विमोचन किया गया।

***

लक्ष्मण दुबे के सम्मान में 'अभिनव प्रयास' काव्य समारोह

वरिष्ठ ग़ज़लकार /दोहाकार श्री लक्ष्मण दुबे के सम्मान में 'अभिनव प्रयास' पत्रिका के सौजन्य से काव्य संध्या का आयोजन किया गया। कार्यक्रम के प्रारंभ में डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ डॉ. सुनील बाजपेई सरल, डॉ. रक्षपाल सिंह, श्री विवेक बंसल, श्री अशोक अंजुम ने श्री लक्ष्मण को शाल तथा श्री विवेक बंसल ने राजस्थानी पगड़ी पहनाकर सम्मानित किया।

***

अर्चना नायडू सम्मानित

कवयित्री अर्चना नायडू को उनके कविता संग्रह 'आचमन प्रेमजल से' हेतु 'म .प्र. राष्ट्र भाषा प्रचार समिति' की ओर से 'अम्बिकाप्रसाद वर्मा दिव्य पुरस्कार' से सम्मानित किया गया । राज्यमंत्री उमाशंकर गुप्ता, कैलाश चंद्र पंत, सुखदेवप्रसाद दुबे, और रक्षा सिसोदिया ने सम्मान प्रदान किया।

अशोक मिज़ाज की चुनिंदा ग़ज़लें

भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली द्वारा प्रकाशित चयनिका 'अशोक मिज़ाज की चुनिंदा ग़ज़लें' का विमोचन सम्पन्न डॉक्टर हरि सिंह गौर विश्वविद्यालय सागर के राजभाषा प्रकोष्ठ द्वारा मनाए जा रहे हिंदी पखवाड़ा के अंतर्गत पुस्तक विमोचन एवं काव्यपाठ का आयोजन किया गया, जिसमें सुप्रसिद्ध शायर अशोक मिज़ाज की भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित ग़ज़ल संग्रह 'अशोक मिज़ाज की चुनिन्दा ग़ज़लें' का विमोचन राजभाषा अधिकारी डॉ. छबिल कुमार मेहेर और हिंदी अधिकारी प्रो. आनंदप्रकाश त्रिपाठी द्वारा किया गया। इस अवसर पर प्रसिद्ध आलोचक अनिरुद्ध सिन्हा(मुंगेर) द्वारा लिखित समीक्षा का वाचन किया गया।और उसकी प्रतिलिपियाँ श्रोताओं में वितरित की गईं। इस अवसर पर कवि सम्मेलन भी आयोजित हुआ। कार्यक्रम की अध्यक्षता महेश कटारे सुगमने की।

***

सुँदर काण्ड : भावनुवाद

अमेरिका के ओहायो प्रान्त के सीनसीनाटी शहर में लावण्या दीपक शाह लिखित सुँदर काण्ड : भावनुवाद का लोकार्पण सम्पन्न हुआ।

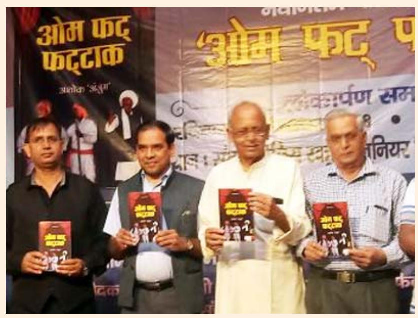

'ओम फट फटाक' का लोकार्पण

अलीगढ के संत फिदेलिस स्कूल के सभागार में चर्चित कवि, रचनाकार, श्री अशोक 'अंजुम' के नाटक-संग्रह 'ओम फट् फटाक' का लोकार्पण हुआ।

पूरन सिंह को दलित अस्मिता सम्मान

सेंटर फॉर दलित लिटरेचर एवं आर्ट के तत्वाधान में दलित अस्मिता पत्रिका के सौजन्य से डॉ. पूरन सिंह को 2018 का दलित अस्मिता सम्मान, यू.जी.सी. के पूर्व अध्यक्ष प्रो. सुखदेव थोरात और प्रो. विमल थोरात के करकमलों द्वारा प्रदान किया गया।

***

डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी को लमही सम्मान

प्रतिष्ठित पत्रिका लमही की ओर से दिया जाने वाला लमही सम्मान वर्ष 2017 के लिये सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी को दिया गया। पत्रिका के प्रधान सम्पादक विजय राय तथा निर्णायक समिति के सदस्य पंकज सुबीर ने यह सम्मान 14 अक्टूबर 2018 को भोपाल के हिन्दी भवन में आयोजित समारोह में प्रदान किया। इस अवसर पर लमही के ज्ञान चतुर्वेदी पर केंद्रित अंक का लोकार्पण भी किया गया। लमही सम्मान के अन्तर्गत पन्द्रह हज़ार की धनराशि, उत्तरीय, सम्मान पत्र और स्मृति चिह्न प्रदान किया गया। इस बार निर्णायक समिति में विजय राय , डॉ. ओम निश्चल , डॉ. अरुण होता और पंकज सुबीर थे। इस अवसर पर बड़ी संख्या में भोपाल तथा अन्य शहरों से आए व्यंग्यकार तथा साहित्यकार उपस्थित थे।

शांतिलाल जैन को सम्मान

व्यंग्यकार शांतिलाल जैन को वर्ष 2018 का 'ज्ञान चतुर्वेदी सम्मान' 14 अक्टूबर 2018 को भोपाल के हिन्दी भवन में आयोजित समारोह में डा. ज्ञान चतुर्वेदी, प्रभु जोशी, आलोक पुराणिक, अनूप शुक्ल तथा श्रीमती आशा सुशील सिद्धार्थ द्वारा प्रदान किया गया।

***

छोटी-छोटी मछलियाँ चारा बनाकर फेंक दी.... उर्फ़ लगे भूरा छू......

यह बहुत कठिन समय है हम सब के लिए। असल में हो क्या रहा है कि इन दिनों हम जहाँ भी, जिस भी जगह मानसिक सुकून पाने के लिए जाते हैं, वहाँ हमें और अशांत बना दिया जाता है। हमें पता ही नहीं चलता कब कोई पीछे से कहता है – 'लगे भूरा छू....' और हम छू लग जाते हैं। छू लगने की व्याख्या मैं यहाँ नहीं करना चाहता हूँ, हम सब उसे जानते हैं। इधर से छू लगाने वाला और उधर छू लगाने वाला, यह दोनों तो 'लगे भूरा छू....' कह कर मुक्त हो जाते हैं, मगर हम सब भूरा, मोती, कालू, टॉमी आदि... आदि आपस में भिड़ जाते हैं। पता यह चलता है कि जिन्होंने छू लगाया था, वह दोनों तो गलबहियाँ डाले कहीं मेज़-कुर्सी पर वार्ता जैसे आयोजनों का हिस्सा बन जाते हैं और हम इधर छू लगे एक-दूसरे को लहूलुहान करते रहते हैं। एक बिलकुल सच्चा क़िस्सा है, क़रीब दस साल पूर्व मेरा एक अधिकारी मित्र जो कॉलेज में मेरे साथ पढ़ा था, मेरे पास आया और कहने लगा कि अमुक पत्रकार ने मेरे ख़िलाफ़ एक झूठा समाचार लगाया है, मैं उस पर मानहानि का केस लगा रहा हूँ, तुझे मेरी तरफ़ से गवाही देनी है कि हाँ मेरी मानहानि हुई है। वह जो अमुक पत्रकार था, वह मेरा पेशेगत मित्र था, मैं भी पत्रकार और वह भी पत्रकार; मगर मैंने अपने कॉलेज के मित्र का साथ देना चुना और अदालत में जाकर उसके पक्ष में गवाही दी कि हाँ इनकी मानहानि हुई है। पत्रकार मित्र को ज़ाहिर सी बात है बुरा लगना था सो लगा। मेरी और उसकी बातचीत बंद हो गई। कुछ दिनों बाद एक दिन मैं बाज़ार में क्या देखता हूँ कि दोनों एक ही मोटर साइकिल पर सवार होकर चले आ रहे हैं। मोटर साइकिल पास आकर रुकी और कॉलेज के मित्र ने हँसते हुए बताया कि उसने अदालत के बाहर समझौता कर लिया है। मैं सन्नाटे में आ गया, मैंने मित्र से कहा कि तुमने मेरे संबंध तो मेरे इस दूसरे मित्र से ख़राब करवा दिए, समझौता करने से पूर्व तो मुझसे एक बार भी नहीं पूछा या बताया। उस दिन के बाद दोनों से ही मेरे संबंध समाप्त हो गए। मुझे ऐसा लगा कि मेरे अधिकारी मित्र ने कॉलेज मित्रता का जो पट्टा मेरे गले में डाल रखा था, उसके बहाने मुझे 'लगे भूरा छू....' कह दिया और मैं बिना सोचे समझे छू लग गया। इन दिनों फेसबुक पर, व्हाट्सएप पर तथा अन्य दूसरे सोशल मीडिया प्लेटफार्म पर इसी प्रकार हमें 'लगे भूरा छू....' कहा जा रहा है। हम बिना सोचे समझे छू लग जाते हैं। कई बार तो हमें पता ही नहीं होता कि हम छू क्यों लगे हैं, हम तो बस अपनी सुविधा वाला पाला तलाश कर उसमें खड़े हो जाते हैं और बस दूसरे पाले वालों को गरियाने, लतियाने, धमकाने जैसे पारंपरिक कामों में लग जाते हैं। हमें पता ही नहीं होता है कि हम तो दुष्यंत कुमार की प्रसिद्ध ग़ज़ल के शेर 'तुमने इस तालाब में रोहू पकड़ने के लिए, छोटी-छोटी मछलियाँ चारा बनाकर फेंक दी' में उल्लेखित 'छोटी-छोटी मछलियाँ' बन गए हैं। जाने किसको कौन से अवार्ड, सम्मान, अध्यक्षता, फेलोशिप की 'रोहू' पकड़नी थी और हम उनके द्वारा हमारे लिए तय की गई भूमिका का निर्वाह करने लगे मंच पर आकर। कितनी कटुता, कितना ज़हर हम उगलते हैं वहाँ आकर, उन मामलों में जिनसे हमारा, हमारे साहित्य समाज का, हमारे समय का किसी का कोई सरोकार ही नहीं है। अंत में दुष्यंत की उसी ग़ज़ल के दो शेर छू लगाने वालों के नाम...

जाने कैसी उँगलियाँ हैं, जाने क्या अँदाज़ हैं
तुमने पत्तों को छुआ था जड़ हिला कर फेंक दी
इस अहाते के अँधेरे में धुआँ-सा भर गया
तुमने जलती लकड़ियाँ शायद बुझा कर फेंक दी।

सादर आपका ही,

पंकज सुबीर

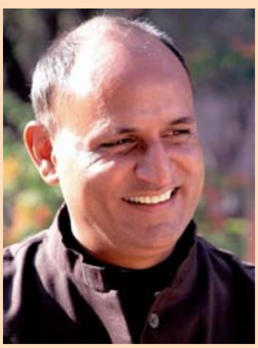

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल : 9977855399
ईमेल : subeerin@gmail.com

शिवना प्रकाशन - नई पुस्तकें

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart http://www.flipkart.com
Paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

Vibhom Swar • Quarterly • October-December 2018 • RNI No. MPHIN/2016/70609 • ISSN2455-9814

शिवना प्रकाशन - नई पुस्तकें

शोध दृष्टि - सुधा ओम ढींगरा का साहित्य
(शोध-आलेख संग्रह)
बलबीर सिंह, प्रकाश चंद बैरवा

रेखाएँ बोलती हैं
(रेखाचित्र-संस्मरण)
संपादक गीताश्री

सच, समय और साक्ष्य
(कविता संग्रह)
शैलेन्द्र शरण

ख़ामोश आवाज़ें
(उर्दू कहानी संग्रह)
सैयद असद मेहदी

चारों ओर कुहासा है
(कविता संग्रह)
रघुवीर शर्मा

संकल्प और सपने
(लघुकथा संग्रह)
सदाशिव कौतुक

जीवन दृष्टि
(आलेख संग्रह)
ज्योति जैन

मुंतज़िर
(ग़ज़ल संग्रह)
राजकुमार कोरी राज़

बात फूलों की
(ग़ज़ल संग्रह)
सर्वजीत सर्व

अभी तुम इश्क़ में हो...(पेपरबैक)
(ग़ज़ल संग्रह)
पंकज सुबीर

थोड़ी यादें, थोड़ी बातें, थोड़ा डर
(ग़ज़ल संग्रह)
शैलेन्द्र शरण

नील गगन की ओर
(कविता संग्रह)
कुंजीलाल सोनी कंचन

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।